कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा

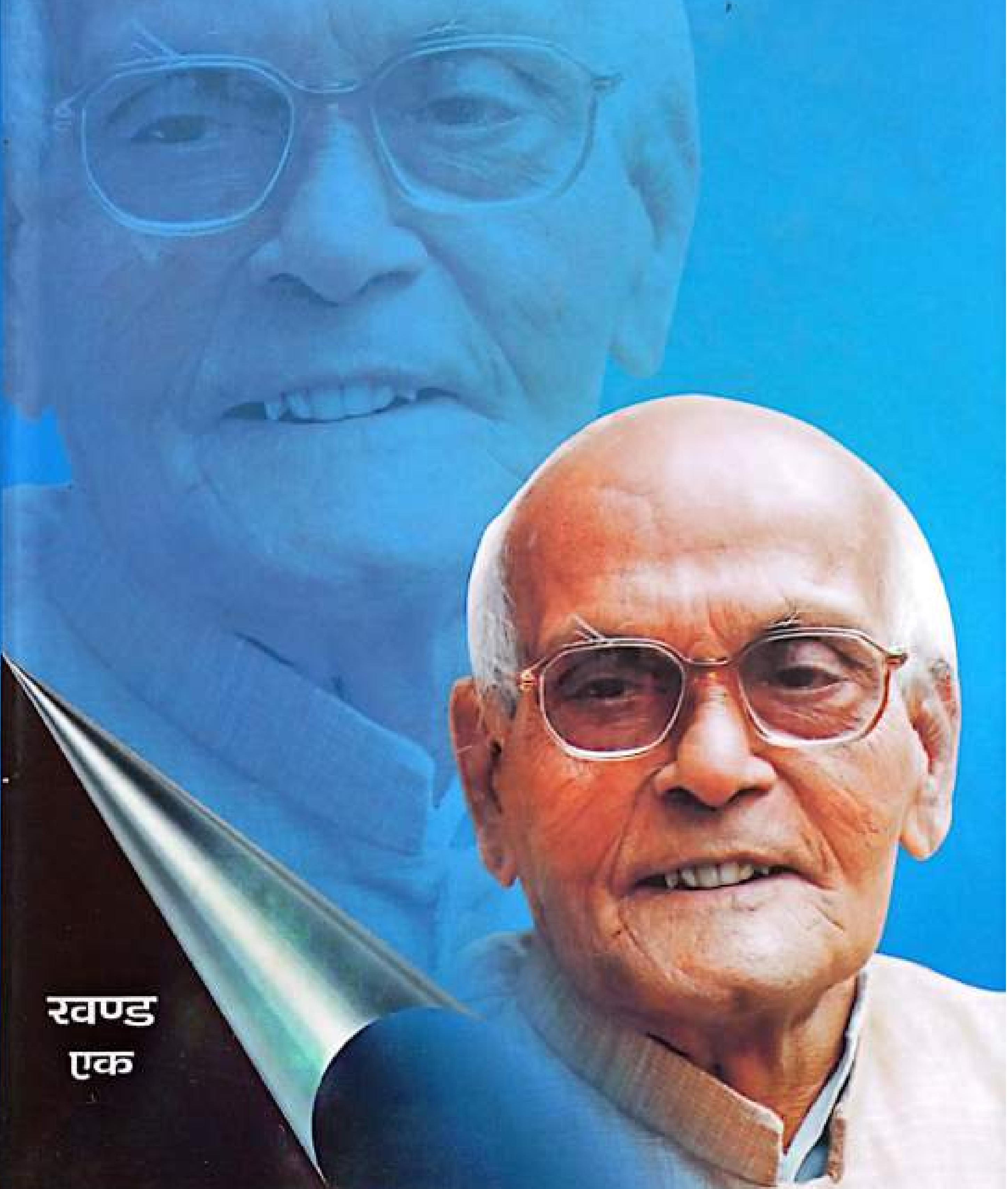

खण्ड
एक

अतीत की पुरा-सम्पदा से रस ग्रहण कर एवं वर्तमान की भित्ति पर उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्षशील प्रचेष्टा भारतीय कविता का मूलाधार है । जिन हिन्दी कवियों में यह चेतना है, उनमें **कविश्री छविनाथ मिश्र** एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं । वैदिक ऋचाओं के अनुपम गीतान्तरण द्वारा उन्होंने इसका साक्ष्य भी प्रस्तुत किया है ।

आधुनिक कविता और नवगीत धारा को समान रूप से समृद्ध करने वाले **कविश्री छविनाथ मिश्र** की **कविता यात्रा** दो खण्डों में प्रस्तुत है । कालावधि को लाँघती अन्तश्चेतना की उनकी रचनाएँ अपने यथार्थ से जुड़कर बृहत्तर मानवीय मूल्यों की पक्षधरता को गरिमा प्रदान करती हैं ।

प्रतिध्वनि 2002

प्रतिध्वनि 2002

खण्ड

एक

कविश्री छविनाथ मिश्र

के

पुस्तकाकार प्रकाशित काव्य-संग्रहों

के गीत, नवगीत

ग़ज़ल,

अतुकान्त कविताएँ

एवं

अप्रकाशित काव्य संग्रह

की रचनाएँ

प्रकाशन सहयोगी

प्रकाशक :

प्रतिध्वनि^{2002}

31, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट

कोलकाता - 700 007

मुद्रक :

संजय नोपानी

'एस्केज़'

8, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट

कोलकाता - 700 007

आवरण चित्र :

प्रशान्त अरोड़ा

आवरण एवं सज्जा :

संजय कुमार गुप्ता

सम्पर्क सहयोग :

चन्दन श्रीवास्तव

परिकल्पना, सम्पर्क एवं सम्पादन :

डॉ. इन्दु जोशी

मूल्य :

सात सौ पचास रुपए

नव्यं नव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः
कवयः सुदीतयः ।

—ऋक् संहिता : 1/159/4

सुदीप्त कवि, समुद्र या अन्तश्चेतना की गहराई से द्युलोक तक अथवा विश्व-चेतना की भूमि पर नये-नये रेशे तानते हैं ।

कविश्री छविनाथ मिश्र का परिचय

जन्म :

पौष शुक्ल सप्तमी सम्वत् 1985
तदनुसार 6 जनवरी 1927
ऊँचडीह, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशित काव्य कृतियाँ :

अँगना फूले कचनार (1962), समय दंश (1971)
ऋचागीत (वैदिक ऋचाओं का गीतान्तरण) (1986)
टुकड़ों में बँटा आकाश (1986), कविता में जीने का सुख (1987)
क़लम का दर्द (1993), ऋतुरंग (1995)
सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है (1995)
श्रुति-सुगन्ध (वैदिक ऋचाओं का गीतान्तरण) (2007)

सम्पादन :

काव्याञ्जलि (1986)

बांग्ला से अनुवाद :

पुराण पुरुष (जीवन-चरित्र), योगीराज श्यामाचरण लाहिड़ी
तारापीठ भैरव, वेद-मीमांसा (तीन खण्ड)

सम्मान :

मदनमोहन अग्रवाल स्मृति सम्मान, पूनमचंद भूतोड़िया पुरस्कार
विवेक संस्थान पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार (प. बं. हिन्दी अकादमी)
वरिष्ठ साहित्यकार सम्मान, योगिराज श्यामाचरण
सनातन मिशन सम्मान (अनुवाद)
साहित्य भूषण (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
हावड़ा राइटर्स एसोसियेशन द्वारा वरिष्ठ नागरिक सम्मान

सम्पर्क :

'तुलसी धाम' 2, कुन्दन बाई लेन, लिलुआ, हावड़ा - 711 204
दूरभाष : (033) 6513 6180, मोबाइल : 92302 24373

निवेदन

कलकत्ता महानगर में 'दादा' कहने मात्र से कवि छविनाथ मिश्र का स्मरण हो आता है । दादा स्वभाव से संत, कंधे पर किताबों भरा झोला लटकाए आज चौरासी वर्ष की आयु में भी नौजवानों से अधिक फुर्ती, आनन्दमयी मुस्कान बिखेरते, आत्मीय छुअन की स्पर्श देते आपको मिल जाते हैं । मुझे स्मरण है कि **प्रतिध्वनि** ने **वरिष्ठ साहित्यकार सम्मान** श्रृंखला के अन्तर्गत सबसे पहले गुरुवर **कल्याणमल लोढ़ा** की तीन पुस्तकें- 'वाग्मिता', 'वाक् तत्व' एवं 'इतस्ततः' प्रकाशित करके उन्हें सम्मानित किया गया था । श्रृंखला की दूसरी कड़ी के अन्तर्गत **श्री मनमोहन ठाकौर** की तीन पुस्तकें- 'अन्तरंग', 'काले पानी का गहराव' और 'अग्नि' (सम्पादन) को प्रकाशित करके उनको भी सम्मानित किया गया । इसके पश्चात् अगली कड़ी के रूप में ऋचागीत के रचयिता कविश्री **छविनाथ मिश्र** के सम्मान में उनकी दो काव्य पुस्तकें– 'ऋतुरंग' और 'सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है' और 'कवि छविनाथ मिश्र : सृजन एवं संघर्ष' को प्रकाशित करके उन्हें भी समादृत किया गया ।

वर्ष 2010 में **कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा** का प्रकाशन कर उन्हें पुनः समादृत करने की योजना बनी है । रोमांटिक चेतना से जुड़कर नवगीत एवं ऋचाओं का गीतात्मक सृजन छविनाथजी के लिए ही संभव था । 'सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है' जैसी पंक्ति क्या एक साधारण कवि कह सकता है ? एक साधारण किन्तु समर्पित व्यक्ति की असाधारण ज्योति यात्रा से ही ऐसी पंक्तियाँ निसृत होती हैं !

कवि छविनाथ मिश्र की काव्य यात्रा ने आधुनिक कविता और नवगीत को समान रूप से समृद्ध किया है । कवि का कथन भी है कि 'अपनी समझ के हाशिए के बीच ही कविता की संस्कृति की खोज के साथ कविता में जीने का सुख मेरे होते रहने का मर्म भी है और मजबूरी भी है । लेकिन जीवन के विविध प्रसंगों में यह सुखानुभूति कविता की तलाश भर है जिसे मैंने जिया है ।' इस सुख में व्यापक हिस्सेदारी के साथ कविता की तलाश अब भी जारी है । छविनाथ मिश्र के अब तक सात कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, **अँगना फूले कचनार (1962), समय दंश (1971), टुकड़ों में बँटा आकाश (1986), कविता में जीने का सुख (1987), क़लम का दर्द (1989), सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है (1995)** और **ऋतुरंग** (1995) । **कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा** में प्रकाशित संग्रहों को प्रकाशन वर्ष के क्रम में ही यहाँ रखा गया है ताकि कविता की ऐतिहासिकता बनी रहे ।

कवि छविनाथजी का सम्बन्ध युयुत्सावाद से रहा है । उनका प्रमुख लक्ष्य प्रतिरोध और राष्ट्रीय चिन्तन और चेतना के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक रचनाधर्मिता के प्रश्न का उत्तर देना था । छविनाथजी का मत था कि "युयुत्सा हमारे रक्ताणुओं की मूल चेतना है, यह हमारी वाह्य और अन्तरंग नकारात्मकता और सकारात्मकता का नितान्त वैज्ञानिक और सामाजिक युगबोध है ।" परन्तु छविनाथजी ने बहुत जल्द ही अपने को इस प्रवृत्ति से भी परे कर लिया । कल्पना और भावना के आवेग में भी उनका कवि अपनी अतीत की सम्पदा से रस ग्रहण करता है । वर्तमान की भित्ति पर उज्ज्वल भविष्य के लिए उसकी चेष्टा जारी रहती है । आधुनिक हिन्दी कविता के वे एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं । किसी भी वाद से वे प्रभावित नहीं हैं किन्तु आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में उनका अवदान अतुलनीय है क्योंकि वाद से परे हटकर छविनाथजी ने हिन्दी कविता को समृद्ध किया है एवं नवगीत को नए सन्दर्भों से जोड़ा है ।

कलकत्ता मनीषियों और चिन्तकों की साधना भूमि है । सन् 1945 के

आस-पास छविनाथजी का कलकत्ता आगमन हुआ । 'समय दंश' से विह्वल होकर छविनाथ मिश्र ग्राम संस्कृति से महानगरीय संस्कृति की ओर मुड़े । समय का निर्मम साक्षात्कार अपने हिस्से के समय को आत्मीय नुमाइन्दों के द्वारा हड़प लिए जाने पर भी उनके कवि को किसी से शिकायत नहीं क्योंकि वह मानता है "होहिहैं सोइ जो राम रुचि राखा" । महानगरीय दंशों से छविनाथजी भले ही विचलित न हुए हों किन्तु उनके अन्तरंग मित्र उनके प्रति हुई साहित्यिक उदासीनता से ज़रूर मर्माहत हैं– "निराला, उग्र, भगवती चरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, शिवपूजन सहाय और दूसरे बड़े-बड़ों को कितना तपाया-सताया है कलकत्ता ने । इतिहास गवाह है और अज़ीज दोस्त गवाह हैं कि कलकत्ते के नंगे फुटपाथों पर छविनाथ जी को कई ठिठुरती रातें काटनी पड़ी हैं । छविनाथजी कहते हैं कि हँसते हुए "सभी घाट का पानी पी चुका हूँ" और नानाविध कष्ट देनेवाला कलकत्ता है जहाँ ऐरे-गैरे नत्थू खैरे की गाजे-बाजों के साथ आरती उतारी जाती है । अपात्र रंगीन मंचों पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और जहाँ छविनाथजी जैसी ऊँची प्रतिभा को कारखानों में सामान्य नौकरी कर और प्रूफ जाँच कर अपनी रोटी का इन्तजाम करना पड़ता है ।" (बृहत् ज्योति के प्यासे/डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र) । वास्तव में कवि जानता है कि रोटी का सवाल हल करने के लिए कविता में सोचते हुए, हर रोज़ दफ्तर तक पहुँचने का रास्ता तै करना कितना खतरनाक है । यह खतरा भयावह तब होता है जब कविता की ग़ैर मौजूदगी में ज़िन्दगी या कीमती चीज़ें कौड़ी के मोल बिक जाती हैं और सोचने के सिलसिले में पान की दूकान पर नया छाता छूट जाता है, कभी आख़िरी ट्रेन चीखती हुई भाग जाती है क्योंकि वह एकमात्र कविता में जीता है । जब कविता उसके भीतर उतरने लगती है, वह आकाश होने लगता है । कविता कवि के समय और इतिहास की चेतना है, बोध और विवेक की संस्कृति है । इस कविता में जब "अपनी पूरी शक्ल देखनी चाही, 'हाथ से गिरकर दर्पण टूट गया', और 'टुकड़ों में बँटा आकाश' बिखर गया । लेकिन 'मुट्ठी भर माटी' और 'अँजुरी भर आकाश की आवाज़ पर कविता की जो क़लम

रोपी थी, उसेक पृन्त पर 'ऋचागीत' जैसा पुष्प खिलकर आश्वस्त करता है कि रचनात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण प्रतिभा अपने हाड़-मांस को 'गला-जलाकर' अपने रक्त से सींचकर जो पल्लवित पृथ्वी हमें सौंपती है, उसी से उत्फुल्ल जीवन की सुगन्ध फैलती है ।" (ऋषि कल्प जीवन की अनुगूंज/गुलाब सिंह)

छन्द पुरुष छविनाथ मिश्र का निश्छल समर्पण समय का संकेत पहचानता है । वह निरन्तर संघर्षरत है । रोटी और रचना के बीच दबोची हुई अपनी रचना के इकलौते आकाश की सुरक्षा के लिए कवि युद्धरत है–

"जब पराजय ही पराजय मंज़िलों को छू रही हो
देखना है, तब विजय की कामना कितनी बड़ी है !
देखना है, कल्पना से साधना कितनी बड़ी है !

सन् 1945 से काव्य-यात्रा करनेवाले कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेम के गीत हैं, कल्पना के पंख हैं, भावुकता है, अनुभव की प्रौढ़ता का अभाव है । "वस्तुतः 1945 से 1950 तक का कवि का श्रम कवि होने की तैयारी का समय है और उस काव्य की भूमिका है जो भविष्य में नया रूप गढ़ने वाली थी ।" (आरम्भ : ज्योति यात्रा का 1945/1955/ **मृत्युंजय उपाध्याय)** । यह दौर प्रयोगवादी रचनाओं का था । प्रयोगवाद और नई कविता से प्रभाव न ग्रहण करके, अकविता से बचते हुए छविनाथ मिश्र ने नवगीत के रुझान को आत्मसात् किया । रोमांटिक भाव से अध्यात्म और तंत्र की ओर उन्मुख होकर भी कविता ही उनकी साधनाभूमि बनी रही ।

1960 से सक्रिय कवि चेतना 2010 तक पहुँचकर भी आज अवरुद्ध नहीं है । जिन पुस्तकों का प्रकाशन काफी पहले हो जाना चाहिए था, वे अबतक प्रकाशित थीं । उन्हें भी इस **कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा** के तहत अप्रकाशित रचनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है । उनके और संकलन प्रकाशित न हो सके, इसे कवि की असमर्थता

नहीं कहना चाहिए बल्कि हिन्दी प्रकाशकों की मनमानी मानना चाहिए कि अच्छी कृतियों और अच्छे रचनाकारों के चयन करने के विवेक का अभाव है उनमें । जबकि अप्रकाशित रचनाओं को सुनकर-देखकर अध्येता को यह बतलाना पड़ता है "छविनाथ मिश्र का काव्य जिजीविषा की ऊर्जा से सम्पन्न होकर जीवन की सत्वर गति का हेतु है और अतीत, वर्तमान और भविष्य का सेतु ।" (वाचो वा इदं सर्वं प्रभवति/**कल्याणमल लोढ़ा**) ।

चूँकि 'कविता में जीने का सुख' और उसकी खुशबू दोनों कवि के हिस्से के आकाश और ज़मीन से जुड़े हैं इसलिए कविता कवि के लिए न तो अर्थ का पर्याय बनी, न केवल वाग्विलास । कविता उनका अस्तित्व है, उनके अपने होने की सार्थकता, लेकिन जीवन के विवध प्रसंगों में यह सुखानुभूति कविता की तलाश भर है जिसे उन्होंने जिया है, इसलिए कविता छविनाथजी को ईश्वर से बड़ी परिलक्षित होती है । 'कविता न तो उनके लिए विलास है, न यश, न वैभव, न मान, न सरमाये की तलाश । कविता उनका अन्तरंग अस्तित्व है, इसीलिए अपनी समझ के हाशिए के बीच कविता की संस्कृति की खोज के साथ 'कविता में जीने का सुख' उनके होते रहने का मर्म भी है और मजबूरी भी ।" (साधारण किन्तु समर्पित व्यक्ति की असाधारण ज्योति यात्रा / **विष्णुकान्त शास्त्री**) ।

कविता की संस्कृति की तलाश कवि को किसी वाद के घेरे में नहीं बाँधती, न किसी विशेष प्रवृत्ति का अनुकरण करने की बाध्यता देती है । **युयुत्सावाद** का प्रवर्तक होने के बावजूद अध्यात्म की ओर कवि का झुकाव हुआ । पर यह प्रचार और प्रोपेगंडा नहीं है । गुणवत्ता के आधार पर उनकी कविता का उचित मूल्यांकन होना बाकी है । "इस कौशल से बचते रहने के कारण शमशेर को भी उनकी दाय दे पाने में हिन्दी आलोचना की चुप्पी बहुत देरी से टूटी और अभी तक छविनाथ मिश्र के मामले में वह अन्धी-गूँगी सिद्ध हो रही है । शायद यह स्थिति जीवन के बाद भी कवि ठहर पानेवाले आत्मतुष्ट कुछ नए कवियों का असमय ही

चुक जाना देखकर समर्थ कवियों का उपेक्षित रहकर लिखते रहना कहीं अधिक आश्वस्त करती है । (दायरों में क़ैद जीवन की मुक्ति चिंता के कवि/**ध्रुवदेव मिश्र पाषाण**) । असाधारण व्यक्तित्व की यात्रा समय के साथ चुक नहीं जाती, इतिहास उसका मूल्यांकन अवश्य करता है । विचारधारा की क़ैद कवि प्रतिभा को सीमाबद्ध कर देती है । अनुभव की गहन दृष्टि के कारण छविनाथजी देख पा रहे हैं कि हमारी संस्कृति, हमारा समाज, विज्ञान, दर्शन, कविता, कला-शिल्प और राजनीति दिशाहारा स्थिति में है । हमारी अन्न-चिन्ता और आध्यात्मिक चेतना दोनों ख़तरे में है । "छविनाथजी किसी वाद को वाद के लिए नहीं स्वीकारते । उनका विवेकी मन विचारधारा की क़ैद स्वीकार नहीं पाता । कवि स्व की लक्ष्मण रेखा को पार करने के लिए सदा से लाँघता रहा है । यही तो है उनके भीतर का असली कवि जो सभी प्रकार के विचारों और विचारधाराओं को नकार कर 'मनुष्य' तथा मानव हित को सर्वोपरि मानता है ।" (आस्था और सौन्दर्य के कवि/**श्रीनिवास शर्मा**) । नयी कविता के प्रख्यात कवि **जगदीश गुप्त** के शब्दों में "कविता को मनुष्यता की मातृभाषा कहना गलत नहीं है । छायावाद युग में मनुष्य को केन्द्र में रखकर मानव कल्याण की दृष्टि को प्रमुखता मिली । समकालीन कविता में मनुष्य जीवन से जुड़ी विसंगतियों, विडम्बनाओं की भर्त्सना हुई, राजनीतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आज का परिवेश उनकी कविता में व्यक्त है ।

हरी-हरी पत्तियाँ तिजोरी में बन्द/कौन गिने/कुर्ते में कितने पैबन्द ।

"कवि ने आज की स्थितियों से सीधा साक्षात्कार किया है । वह समय का आईना बन गया है ।" (कविता में मुक्ति की तलाश/**डॉ. सुकीर्ति गुप्ता**)

स्थिति से सीधा साक्षात्कार अपने युग के अद्वितीय संकट के प्रति भी कवि को जागरूक करता है और कवि चेतना अध्यात्म के धरातल पर पहुँचकर संकट मुक्ति के उपाय तलाशती है । क्योंकि वैदिक अवधारणाओं के आलोक में वेद और विज्ञान जिस बन्दु पर एकाकार हो जाते हैं कवि

मानता है कि "वहीं से अदृश्य आग का एक आदिम छन्द हिरण्यगर्भो (आकाश गंगाओं, मन्दाकिनियों या तारापुंजों) और असंख्य सौरमण्डलों के भीतर से विकास क्रम के अन्तिम विन्दु तक नित्य स्पन्दित है । काव्य शिल्प के माध्यम से उसकी थरथराहट की पकड़, आत्म संस्कृति के बिना संभव नहीं । आत्म संस्कृति ही शिल्प है । यह शिल्प जब कविता में खुलता है तब उसका ताप हमारी मानसिकता पर अँधेरे के परमाणुओं को तोड़कर हमारे सौन्दर्य-बोध और आनन्द-बोध को रचना की सार्थकता से जोड़ता है । "किन्तु यह सौन्दर्य-बोध और आनन्द-बोध उन्हें अध्यात्म और तंत्र की ओर अभिमुख करके भी कविता के साधना-आसन से उठने नहीं देता । अध्यात्म और तंत्र की ओर आकर्षित होकर भी उनकी मुख्य साधनाभूमि कविता ही है । कविता जीवन की चीज़ों से पुराने स्थापित रिश्ते से अलग एक नया रिश्ता पैदा करती है ।" (कविता में सोचते हुए/ **डॉ. शम्भुनाथ**) । क्योंकि कविता की तलाश कवि की अन्तःचर्चा है, रही है और रहेगी । कविता में जीना और चेतना की बारीक बुनावटों के बीच जीना कवि की यात्रा का लक्ष्य है । कवि स्वयं नहीं जानता कि कब कविता उससे जुड़ी । इसका उत्तर तलाश करते हुए उसके पास कोई प्रमाण भी नहीं है, न कोई गवाह है । कवि सिर्फ़ इतना जानता है कि जब कविता उसके भीतर उतरने लगती है वह आकाश होने लगता है । अपनी वाङ्मय नीरवता के केन्द्र में एक अनाहत लय की तरह वह कविता को महसूस करता है । कविता के स्पर्श की अनुभूति जब शिराओं में थिरकने लगती है, कविता के ताप के दबाव से कवि अदृश्य आग का छन्द बन जाता है । कविता की ईश्वरतमा प्रकृति कवि के प्राणों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की तरह फड़कने लगती है ।

अतएव कविता कवि के समय और इतिहास की इन्द्रतमा चेतना है, प्रतिकृति है, बोध और विवेक की अंगिरस्तमा संस्कृति है । यानी छविनाथजी का जीवन-संसार कविता के नगर में बसा है । तभी कभी उन्हें ऐसा प्रतीत होता है "कविता की संस्कृति की खोज के साथ कविता में जीने का सुख मेरे होते रहने का मर्म भी है और मजबूरी भी ।" तो

कभी "अपनी कवि-चेतना और आम आदमी के अहसास को मुक्त एवं सहज करने की दिशा में अपने लिए कविता को एकमात्र ऐसा सच मानता हूँ जिसे अपने परिवेश एवं समय की तमाम विसंगतियों तथा जीवन की अर्थहीन स्थितियों के विरुद्ध खड़ा करके मुझे एक मामूली और माकूल आदमी होने की लड़ाई लड़ते रहना बेहद ज़रूरी लगता है ।" तभी तो शब्दों ने छविनाथजी को बूढ़े बाप की तरह सहलाया है । अपने काँपते हाथों से भाषा ने ममतामयी माँ की तरह प्यार की दूधिया रोशनी में कवि को नहलाया है और कविता में जीने की संस्कृति का सबक पढ़ाया है । तभी वह कह सका—

"कविता न तो बन्दूक़ है
और न मशीनगन है
लेकिन तिलमिलाती है
तो अँधेरे के आततायी आदमख़ोर
मुखौटों को भून देती है
मेरे दोस्त, मेरे हमदम
तुम्हारी कसम—
कविता जब किसी के पक्ष में
या किसी के ख़िलाफ़
अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है
तब वह ईश्वर से भी बड़ी होती है ।"

अपनी ही धुन में कविता का एकतारा बजाता कवि आपादमस्तक कविता में सराबोर है । कम्प्यूटर युग में जब कविता के प्रति पूर्ण उपेक्षा और रूखापन मिलता है, छविनाथजी का उत्साह खण्डित नहीं होता कविता के अस्तित्व के विषय में । टुकड़ों में बँटा आकाश ख़ुशबू देता है, कविता में जीने का सुख कविता लोक में भ्रमण कराता है । क़लम का दर्द क़लम के बहाने रचनाकार के दर्द को मुखरित करता है । इन संग्रहों में गीतों की बहुलता है । कहीं बेला की टहनी पर सूनापन खिलता है, कहीं सिवान पार के पलाश वन की चीख़ है, कहीं चुपचाप समय का बीतना कवि को

अखरता है, कहीं सेमल के फूलों के खिलने भर से जीवन के पृष्ठ खुल जाते हैं, यादें उभर आती हैं, कहीं पीपल की टहनी से अँधियारा लटका है, कहीं जन्म भर के सँगाती को गीत मुँदरी, स्वर नगीना सँभलवाया जाता है, कहीं यादों का आना अखरता है, एक छुअन फागुनी यादों के नाम दिया बालती है किन्तु वियतनाम युद्ध का मर्मान्तक हश्र कवि के गीतों में दर्द को जन्म देता है–

"जहरीली गैसों ने मिट्टी की साँस चुगी
खेतों को सूँघ लिया बारूदी बोध ने
पौधों की जगह उर्वर विस्तारों में लाशों पर लाश उगी ।"

किन्तु ऋतुरंग में रंगों का मेला है, यहाँ अनागता सन्ध्याएँ रंग में नहाती हैं, मधु संचित कोष खुलने के साथ विश्वम्भरा गाना आरम्भ कर देती है, और प्यार का अबीरी स्वर उड़ने लगता है, वन में गमकते कमल संकेत देते हैं 'सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते ।' तो कहीं जेठी दुपहरिया आग उगलती है, बरसते बादल काजलरंगी ही नहीं – आषाढ़स्य प्रथम दिवसे और है एक ठंडी साँस की उपलब्धि ।

छविनाथजी की एक पुरानी फाइल में **श्री गुलाब सिंह** की एक चिट्ठी मुझे उपलब्ध हो गई । नवगीत के उपर्युक्त सन्दर्भ में उक्त पत्र का स्मरण हो आया । "नवगीत अर्द्धशती समारोह दिल्ली की विचारगोष्ठी महत्वपूर्ण रही । डॉ. नगेन्द्र की अध्यक्षता, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, गिरिजा कुमार माथुर आदि की उपस्थिति में **विजय किशोर मानव** ने प्रभावशाली शब्दों में कहा– "मैंने गम्भीर शोध के बाद पाया कि परम्परागत गीतों से नवगीत की ओर मुड़ने या दिशा देने में सबसे महत्त्वपूर्ण और अलग काम है– छविनाथ मिश्र का ।" एक शोधार्थी द्वारा दिया गया वक्तव्य निश्चय ही एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व के मूल्यांकन की ओर ध्यान खींचता है । इसी सन्दर्भ में **कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह** की पंक्तियाँ इसी क्रम के अन्तर्गत समीचीन होंगी । "परस्पर विरोधी खेमों में बँटा हुआ हमारा जनसंघर्ष सही नेतृत्व के अभाव में, शत्रु पक्ष को कोई गम्भीर चुनौती देने में अभी तक समर्थ

नहीं हो सका है, और जनसाधारण में बदलाव के प्रति उत्साह की जगह हताशा पैदा करता रहा है क्योंकि उसे पता है खेमों में बँटे हुए बहुत सारे लोग हमारे अपने नहीं हैं, उन्होंने अपने हिस्से का समय संत्रास के नाम लिख दिया है और अब वे अधिक से अधिक सिर्फ़ हवा में चाकू धँसाकर जीने का अभिनय करना चाहते हैं जिसके फलस्वरूप एक ओर अपने देश के मुर्गानुमा नक्शे के पूरे क्षेत्रफल पर गैरिजम्मेदार लोगों का जुलूस कई टुकड़ों में टूटकर फिसल गया है और यहाँ से वहाँ तक एक लावारिस सन्नाटा फनफनाता रहता है तो दूसरी ओर सार्वजनीन बोध की सलीब ढोती हुई एक लम्बी भीड़ दिशाहीन हो गई है ।" यानी रचनाकार जब समय से साक्षात्कार करके, समय संवेदना को ग्रहण कर रचनारत होता है तब रचनाकार की भाषा बतलाती है कि काल विशेष के प्रति उसकी दृष्टि कितनी सूक्ष्म है या वह रचना किसी विशेष उद्देश्य से संचालित है अथवा महज एक उच्छ्वास है ।

सबसे पहले **अँगना फूले कचनार** को ही लें । इस संग्रह की रचनाओं में कुछ अतुकान्त रचनाएँ हैं, किन्तु अधिकांश गीत हैं जिसमें नवीन उपमाएँ हैं, नवीन बिम्ब हैं । 'मुट्ठी भर माटी : अँजुरी भर आकाश' शीर्षक से कवि ने इसकी भूमिका में लिखा है– "मैं आपके समक्ष कोई नया प्रश्न या कविता की कोई नई परिभाषा उपस्थित करने नहीं जा रहा हूँ, यों तो इस तथ्य या मान्यता के प्रति असहमति नहीं होनी चाहिए कि कविता अथवा कला जीवन और जगत् के उन तमाम क्षणों का एक ऐसा आकलन है वस्तुतः जिसका मूल्य हमारे लिए आवेगात्मक है । इसलिए कवि के रसात्मक यथार्थ का काव्यात्मक मूल्यांकन करना आलोचकों, पाठकों और कवियों के बीच एक सेतु का निर्माण कार्य है जहाँ तीनों के अस्तित्व और अस्तित्व बोध में एकात्मकता का सन्तुलित और गतिशील सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है ।" जगत् और जीवन की उन तमाम संवेदनाओं और अनुभूतियों को कवि ने अपनी रचनात्मकता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव जागतिक सत्य ने उन पर डाला । कविता ही उसे एकमात्र अभिव्यक्ति का एक ऐसा सच समझ में

आया जिसने उसको तराशा । धर्मयुग के 09.12.1962 अंक में आलोचक **डॉ. प्रेमशंकर** ने इस संग्रह की समीक्षा करते हुए शब्दों की योजना को भाव वहन में सहायक माना है– 'अंगना फूले कचनार' के गीतों में नयी प्रतीक योजना, नए भाव-बोध को लेकर प्रस्तुत हुई है और उससे सर्वत्र अनुशासनगत स्वच्छता है । भावानुशासन के साथ गीतों के शिल्प में ये संग्रथन है यद्यपि कहीं-कहीं उनमें गहराव भी आ रहा है । अपनी छह पृष्ठीय भूमिका में छविनाथजी ने नए शब्द गढ़कर काव्य की नयी परिभाषा रखी है । कविता अथवा कला जीवन जगत् के उन तमाम पक्षों, सूक्ष्म संवेदनाओं और अनुभूतियों की एक ऐसी टटकी अभिव्यक्ति है और जीवन के उन तमाम क्षणों का एक ऐसा आकलन है वस्तुतः जिसका मूल्य हमारे लिए आवेगात्मक है :–

अंगना फूले कचनार
चाँद की किरण-किरण परसे, प्यार बरसे ।
जमुना गंगा रसधार
गीत के हिरण-हिरण प्यासे, प्यार बरसे ।

आलोचक **डॉ. गंगाप्रसाद विमल** ने **अँगना फूले कचनार** की समीक्षा **ज्ञानोदय** (कोलकाता - मासिकी) में करते हुए कवि की अभिव्यक्ति में समकालीन नवगीत की पूरी समावनाएँ देखी हैं । यानी नवगीतकारों की परम्परा के अन्तर्गत ही डॉ. विमल ने छविनाथजी को रखा है । किन्तु 1971 तक पहुँचते-पहुँचते कवि की सृष्टि का आयाम बदला है– वह क्रान्ति दृष्टि है । अपने ख़िलाफ़ युद्ध ही इसका प्रमाण है–

"मुझे लड़ना है
या तो जूझने के लिए
या टूटने के लिए
मैंने ख़ुद को तैयार कर लिया है कविता के लिए
और अपने ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए ।"

छूटना और जूझना उनकी गाँव से महानगर कलकत्ता की ओर आना है । ग्राम्य जीवन की सहजता और सरलता को महानगर के आत्मीय नुमाइन्दे हड़प लेते हैं । छविनाथजी के शब्दों में 'हमने पढ़ लिया है पूरा वसीयतनामा । हम किसी के हिस्से में नहीं है ।' उनका जागरूक विवेक उनकी प्रौढ़ दृष्टि का परिचायक है । अपने समय का दृष्टा कवि इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं कि 'लोकतंत्र सिर्फ़ एक नाम है/अँधेरे से अँधेरा काटने का/संसदीय आयाम है ।' क्रान्ति की परिभाषा कैसे बदल गई है– उसका कहना है 'क्रान्ति नये छन्द की तलाश में किसी आग की नदी में उतर गयी है ।' वास्तविकता को समझ उन्हें दंश देती है "दिशाहीन हो गई है/सार्वजनीन बोध की सलीब ढोती हुई/एक लम्बी भीड़/अपरिचित आवाज़ें/एक छोर से दूसरे छोर तक तैरती हैं/हम किसी के हिस्से में नहीं हैं/हम समयहीन होना चाहते हैं ।" परन्तु स्पष्ट है कि तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद कवि की कविता-यात्रा थमी नहीं अक्षुण्ण रही ।

टुकड़ों में बँटा आकाश अगला कविता संग्रह इसका प्रमाण है । इस संकलन में 1961 से 1986 तक की लिखी कविताएँ हैं । इसकी भूमिका में कवि के द्वारा लिखी एक पंक्ति है– **'कविता में ख़ुशबू लिखते हुए अपने आकाश की तलाश ।'** यह आकाश कवि का निजी टुकड़ों में बँटा आकाश है जो उसके बाहर भीतर और इर्द-गिर्द के वाङ्मय आकाश की पहचान और एक दरका चिटका आईना है "जिसके कई टुकड़ों में प्रतिबिम्बित है मेरे रचना-संसार का कुछ हिस्सा और अंकित है मेरी कविता यात्रा के कुछ परिदृश्य, कुछ पड़ाव ।" इस आकाश की कविताओं का मूल स्वर है प्रेम एवं ये कविताएँ सातवें दशक की कविताएँ हैं । सातवाँ दशक अकेलेपन के गहरे अहसास का समय रहा है । कवि द्वारा सृजित गीतों में कहीं, बेला की टहनी पर सूनापन खिलता है', कहीं 'गहराई तक उतर गया है/समय टूटकर' का वर्णन है, तो कहीं 'एक सन्नाटा/नसों को चीरता है' तो बिम्ब थरथराने लगते हैं एवं 'बरखा की शाम, लिखती सी खत कोई' का काम सम्पन्न कर जाती है, जिसे कवि के शब्दों में 'वर्ष भर जिया मैंने है' । वह इस सच को भी स्वीकरता है

गाँव-घर, सीवान, जंगल और रक्तपलाश, बहुत पीछे छूट गए हैं, तब भी 'दृष्टियों में एक सपना उबलता है, सीझता है एवं 'एक पंखुड़ी जवाकुसुम की तलाश में वह सन्नद्ध हो जाता है और उसका प्राप्तव्य होता है 'क्षण ढुलक कर आँख में बीते समय ने, दर्द गीला लिख दिया' । यह है छन्द-पुरुष की यंत्रणा । यंत्रणा छविनाथ मिश्र को सदैव एक आनन्द की स्थित में रखती है । कवि जानता है—

जीवन तो कहीं नहीं नीरस निस्पन्द है
अणु-अणु के भीतर गतिमान छन्द-छन्द है ।

सजगता और सतर्कता से कवि भौतिक जगत और आभ्यन्तर जगत में एक सामंजस्य स्थापित करता है । कवि की यंत्रणा ही उनकी कविता का प्रमुख अभिधेय है । "यही कुछ ऐसे विन्दु हैं जिसके साक्ष्य में मैं जिस काव्य-स्पन्द की घटनाओं, दृश्यों, परिदृश्यों और कुछ बातों-विचारों के भीतर से पकड़ने की कोशिश करता हूँ, उसे परिचित बिम्बों-प्रतीकों के माध्यम से सम्प्रेषित करते समय कविता के सीधे संवाद जैसी भूमिका में हुआ करता हूँ किन्तु तब भी लगता है कहीं कुछ छूट रहा है या कुछ छूट नहीं रहा है ।" जो छूट रहा है उसी की अगली कड़ी है **कविता में जीने का सुख** कविता संग्रह । इस संग्रह में पैंतीस कविताएँ हैं एवं ये कविताएँ 'कविता की संस्कृति की खोज के साथ कविता में जीने का सुख मेरे होते रहने का मर्म भी है और मजबूरी भी' है । कवि का सब कुछ भोगा हुआ यथार्थ है जिसका प्रमाण है **कविता में सोचते हुए दफ़्तर तक** नामक कविता जहाँ महानगरीय यांत्रिकता के बीच कवि सफर करता है ।

इसी साधक की अगली कृति है **क़लम का दर्द** । इस संग्रह में भी 50 गीत और ग़ज़लें हैं । ग़ज़लें आपातलकाल को लेकर लिखी गई हैं । तब भी इस सीमा के बाहर का जीवन-दर्शन भी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं है—

बिकती है ज़िन्दगी मुँह बन्द गुलाबों की तरह
हम टूट गये दोस्त दर्दमन्द खाबों की तरह ।

समय सापेक्ष रचनाओं में छविनाथजी की प्रतिबद्धता स्पष्ट दिखती है। बक़ौल **रविकांत नीरज** के शब्दों में "प्रगतिशीलता का दंभ भरने वाले कई ऐसे रचनाकार हैं और साथ ही साथ आलोचना दृष्टि फेंकनेवाले समालोचक भी– जो लूशुन की झींक पर मूल्यांकन करेंगे। फंतासी बनने और बनाने का चक्कर तो गुटबाजियों में रचना मूल्य का बौद्धिक उपहास! और लगता है कि दुष्यन्त के अलावे और कोई गजलिस्ट पैदा ही नहीं हुआ ? आम आदमी की बात करना आसान है, आम आदमी को भोगना दुष्कर। ईमानदारी से यह बात बता दूँ कि उन उनचासों झंडों को देखते और गुणते वक़्त ना तो लूशुन की याद ही आई, न ही बाबा नागार्जुन, दुष्यंत व मुक्तिबोध शैली में और भी लिखने वाले अन्य कवियों की। मिश्रजी ख़ुद ही सब कुछ हैं।"

देखा जाए तो छविनाथजी की कविता यात्रा जीवन के रचनाशील तत्वों को संघटित करती है और मनुष्य को विकासोन्मुख बनाने का आह्वान करती है। **क़लम का दर्द** काव्य-संग्रह में वे लिखते हैं– मैंने अपने समय के मिज़ाज़ और तेवर की पहचान करते हुए अपनी कवि चिन्ता को एक और यात्रा या आयाम के संकट बिन्दु तक लाने की कोशिश है। आयाम के इस संकट बिन्दु पर ही सृजन होता है **सुनो कविता! मेरा नाम ईश्वर है** काव्य-कृति का। इस संग्रह की रचनाओं में व्यंग्य है। वह कहता है-

सृष्टि जैसी है – है
जीवन जैसा है – है
और एक मन है
तर्क-तिकड़म से बुने
सवालों के फन्दे से फँसा है
ऐसा क्यों?
किसलिए ?
आदिम क्यों से अन्तिम क्यों तक
ये कविताएँ व्यंग्य क्यों ?

तकलीफ़देह घटनाओं का असर जब कवि चेतना पर पड़ता है तो एकमात्र व्यंग्य अभिव्यक्ति ही उसे सूझती है । सत्तर के बाद की राजनीतिक चेतना को अपने वैचारिक धरातल पर स्पष्ट करने के लिए एकमात्र व्यंग्यात्मक रुख को उसे अपनाना पड़ा क्योंकि राजनीतिक मूल्यहीनता एवं भ्रष्टाचार उसे आक्रान्त करता है । **सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है** इस संग्रह में एक कविता है जिसमें कवि ने बदलती संवेदना में कविता की स्थिति का संकेत दिया है एवं कहता है–

कविता!
शायद तुम्हें ही कुछ-कुछ खबर है
मेरा नाम ईश्वर है!

1995 में ही एक और कविता-संग्रह **ऋतुरंग** भी प्रकाशित हुआ जिसमें विविध ऋतुओं से सम्बन्धित गीत हैं । कवि ने इन गीतों को समकालीन काव्य-बोध के अनुकूल बदलने का प्रयास किया है । गीतों में सौन्दर्य है, व्यक्तिपरकता है, प्रेम है । उनके गीतों के सम्बन्ध में **ध्रुवदेव मिश्र पाषाण** का कथन है कि छविनाथ मिश्र की खूबी यह है कि वे अपने गा सकने की ताकत का इस्तेमाल कविता को भुना पाने के लिए कभी नहीं करते और न तो सस्ती मंचबाजी के लिए अपने गीतपाखी के पंख किसी को कतरने देते हैं । वास्तव में छविनाथजी एक मनस्वी कवि हैं । गुटबाजी और आन्दोलन की विचारधारा से उन्होंने कोई सम्पर्क नहीं रखा । विक्षिप्तता के प्रहार से भी कविता-यात्रा को विराम नहीं मिला क्योंकि मनुष्य कवि के लिए सर्वोपरि है । उनको हमेशा मैंने एक आनन्दमयी मुद्रा में देखा है । एक ऐसे लोक में विचरण करते उनको पाया है जहाँ उनका झोला नई-से-नई किताबों से भरा रहता है । कभी लिलुआ से कलकत्ता आने के बजाए कवि श्रीरामपुर पहुँच जाता है । उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बांग्ला और उड़िया का ज्ञान प्राप्त किया है । वह एक श्रेष्ठ अनुवादक भी हैं ।"

छविनाथजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा करते हुए हिन्दी के वरिष्ठ

कवि नवल छविनाथजी के तीन-तीन बार पागल होने का जिक्र करते हुए लिखा है "छविनाथ मिश्र की भावनात्मक उड़ान और बिम्ब विधान उसी विश्रृंखल संसार की देन है, जहाँ से वे तीन-तीन बार लौट चुके हैं। उनकी कविताओं में दुनियावी सोच और आध्यात्मिक एप्रोच उनके भावातीत अन्तरजगत का अव्याकुल प्रस्फुटन है। इसलिए वे कभी-कभी शब्द संयोजन और भाव-नियोजन में कुछ अटपटे से भी लगते हैं। लेकिन यह अटपटापन शायद इसलिए भी है कि उनके भीतर काव्य-गंगा का जो दुर्दम आवेग है, कभी-कभी हमारे जाने हुए शब्द उसे झेल नहीं पाते। अगर छविनाथ मिश्र के सौन्दर्यपरक गीतों को छोड़ दें, जहाँ वे अपनी सादगी की आत्मीय छाप छोड़ते हैं तो उनकी गद्य कविताओं में बावजूद तुकान्त प्रयोगों के, एक ऐसी जटिल शब्द शैली अभिव्यक्त होती है, जहाँ उसके भी भाष्य की ज़रूरत पड़ सकती है। लेकिन वहाँ भाव-संगुफन नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।" इसके आगे उन्होंने कहा है कि "बावजूद अपने ज्ञान-संज्ञान, अध्ययन-अध्यवसाय, काव्य-कला-सौष्ठव और शब्द-मर्म की अन्तरंगता के, छविनाथ मिश्र द्रष्टा कवि हैं जो लीलामय जगत का प्रणय आखेट और प्रलय-प्रवाह देखते तो हैं पर उनके प्रारब्ध में मनु होना नहीं लिखा कि वे मत्स्यावतार के सहारे नयी सृष्टि का प्रकल्प रच सकें!'

कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा दो खण्डों में प्रस्तुत है। प्रथम खण्ड में प्रकाशित कृतियों को ज्यों का त्यों रखा गया है। जिस काव्य-कृति में कवि ने भूमिका में अपनी कविता संबंधी अवधारणा को व्यक्त किया है, उसे भी सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक संग्रह को प्रकाशन वर्ष के क्रम के अनुसार ही रखा गया है। अंत में उनके अप्रकाशित काव्य संग्रह **मेरे आँगन में अनार का एक गाछ है** को सम्मिलित किया गया है, जिसमें हैं अतुकान्त कविताएँ, गीत और नवगीत। इनमें कुछ कविताएँ और गीत समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ के अंत में तारीखों का उल्लेख है किन्तु कुछ में तारीख नहीं हैं क्योंकि कविता या गीत में तारीख लिखी नहीं गई थी।

कोलकाता महानगर के हिन्दी रचनाकारों की यह विडम्बना रही कि श्रेष्ठ रचनाओं के रचयिता होने के बावजूद राष्ट्रीय स्तर पर उनकी चर्चा नहीं हुई । इसका एक कारण तो स्पष्ट है कि सर्जनारत कवियों में बाहर फैलने की छटपटाहट नहीं रही । यूँ कहें कि व्यावसायिक बुद्धि, व्यावसायिक कौशल का आकर्षण इन्हें नहीं भाया। पिछले कई वर्षों से कोलकाता महानगर में जिस निष्ठा से साहित्यिक अनुष्ठान विविध संस्थाओं के माध्यम से हो रहे हैं और उनकी प्रकाशित कृतियों की राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा हो रही है, उससे यह आशा बँधती है कि एक दिन निश्चय ही कोलकाता महानगर को हिन्दी का गढ़ कहलाने का गौरव पुनः हासिल होगा ।

–इन्दु जोशी

अनुक्रम

प्रकाशित काव्य-संग्रह

अँगना फूले कचनार	25-106
समय दंश	107-138
टुकड़ों में बँटा आकाश	139-214
कविता में जीने का सुख	215-282
क़लम का दर्द	283-336
सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है	337-396
ऋतुरंग	397-452

एवं अप्रकाशित कविता संग्रह :

मेरे आँगन में अनार का एक गाछ है	453-568

कविता-यात्रा

कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा

अँगना फूले कचनार

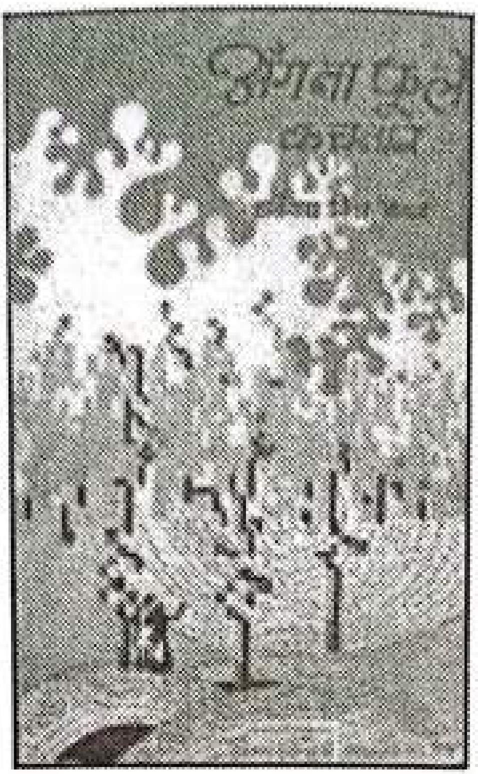

प्रकाशक :
मिलन मन्दिर प्रकाशन
20, अमरतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 001

मुद्रक :
विनोद प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी वर्क्स
12, लोअर चितपुर रोड
कलकत्ता - 700 001

आवरण :
वीरेश्वर बनर्जी

प्रथम संस्करण : 1962

मूल्य : तीन रुपए

पृष्ठ : 96

अनुक्रम

लौटा है किरणों की डोरी लपेट कर	37
फैली मादक गन्ध	38
चल भरें गागरी	39
तुम मुझे छूने न आओ	40
अँगना फूले कचनार	42
अभी-अभी तुमने यादों का ताज गीत को सौंप दिया है	43
सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया	45
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा	46
हज़ारों बार चुपके से तुम्हारी याद में संगिनि	47
बात कुछ रह गई	49
यादों से घिरे-घिरे मन को समझाना है	50
पीछे छूट गए साथी सब, मैं ही रहा अकेला पथ पर	51
जल भरने की वेला बीती, पायल की झनकार न बोली	53
नभ से ज्योति-परी लो! उतरी	54
प्यार की रागिनी	55
ध्वंस की लाश को ढाँपने के लिए	56
अश्रु की धार से	58
प्रणय के आकाश पर फैली धुआँ-सी	59
लेकर सन्देश चली	60
तुम दूर हो तो क्या हुआ	61
युग के नये मसीहा दौड़ो	63
जोड़ने चली प्रीति की डोर	65
ज़िन्दगी चमकता-सा एक आबगीना है	67
सोनापंखी स्वर मँडराये	68
सूनापन गुहराये, अपनों की बात करो	69
मौत को चूम कर मैं चला आ रहा हूँ	70
दुपहर का सन्नाटा दूर धूप हाँफती	72

मेरे अन्तर का प्यार	73
जहाँ मन रमा और भरमा नहीं है	74
मौन प्रतीची के पनघट पर मिलने किससे चोरी-चोरी	76
अनगिन दीप जल गये होंगे	77
जीवन का राग-रथी पंथी घबराया है	79
विगत का बूढ़ा विहंगम ले रहा अवकाश	80
पंखों में शक्ति नयी क्षण-पंछी भरता है	81
कौन हो, तुम जो कि मेरे गीत के सूने सरोवर में कहीं से	82
आज सहसा याद तेरी कल्पना को रँग रही है	83
इस तरह न तुम श्रृंगार करो, मरघट की रानी	85
आज ख़त आया तुम्हारा	87
खींच रहा रेखाएँ प्राणों से प्राणों तक	89
इन गमकते कुन्तलों में तुम प्रलय को बाँध लो तो	90
समय का बटोही चला जा रहा है	91
थिरक उठीं सपनों की फ़ीरोज़ी घाटियाँ	94
उस दिन मैं समझूँगा शायद मेरी मंज़िल दूर नहीं है	95
मौन दिगन्तों की आँखों में	97
ओ मेरे अपराधी सपनो! मुक्ति मिलेगी मत घबराओ	98
हज़ार पत्तियाँ लगी हैं	99
गति और ठहराव	100
सूरजमुखी का पत्र : सूर्य के नाम	102
जीवन का चक्रव्यूह	104
आस्था की पथरायी अहिल्यायें	105
एक साँझ और तुम	106

मुट्ठी भर माटी : अँजुरी भर आकाश

अवकाश के कुछ क्षण, हलके नीले रंग के काग़ज़ का एक टुकड़ा, जापानी पायलट फाउन्टेन पेन, सुनहरा क्लिप, गहरा हरा रंग और कोहेनूर जैसा एक नया गीत ।

एक मंज़िला काठ का मकान, कोने में एक कोठरी, इर्द-गिर्द सिरहाने सामने रेक पर अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवंशम्, मुद्राराक्षसम्, कामायनी, नयी कविता के प्रतिमान, सुनीता, ज्ञानोदय, नवनीत, कहानी, नई कहानियाँ, रूपलेखा, आकार, धर्मयुग, हिन्दुस्तान, देश, अमृत, सप्तर्षि मानसी, विश्वभारती, शुभदा, सोनाझरा सन्ध्या, मेघमल्लार, गीतांजलि, बलाका, बनलतासेन, आतिशेगुल, आहंग, दस्तेसबा, तलखियाँ, निगार, बीसवीं सदी, एज ऑफ़ दि रीजन, लुक बैक इन ऐंगर, सेकन्ड सेक्स, शेक्सपियर, मूमू, ह्वाइटनाइट्स्, एनकाउन्टर, रीडर्स डाइजेस्ट आदि...आदि.... ।

सिर्फ़ पचास गज़ की दूरी, सामने फायर ब्रिगेड, पचास डग आगे आनन्दमयी का मन्दिर, कुछ दूर बढ़कर पश्चिम की ओर जीवन का अन्तिम यात्रा-पथ, साँस का आख़िरी पड़ाव, बच्चों, बूढ़ों युवक युवतियों की लाशें, चिटख़ती चिताएँ, धुएँ की चिरायँध गन्ध, विश्व कवि रवीन्द्र की निर्वाण-शिखा, अनमने-अनमने चेहरे, जानी-पहिचानी, अनचीन्ही मुखाकृतियाँ, कोढ़ी, यतीम, लूले-लँगड़े, काने-कुबड़े, भिखमंगे, लुच्चे-लफंगे, नंग-धड़ंग, साधू-संन्यासी, बैरागी, त्यागी, तांत्रिक, पंडित, पुजारी चेले-चिलमें, गाँजा-चरस-भाँग-धतूरा, घंटा-घड़ियाल, क्रन्दन बन्दन, आरती, अट्टहास,

चीखें, चिल्लाहटें, लच्छेदार बातें, गीता-रामायण, प्रवचन, ढोलक-मँजीरे, गीत-ग़ज़ल, तानें तराने, अक्खड़ फक्कड़ घुमक्कड़, फ़क़ीर, मस्ताने ।

खुला आकाश, नदी का किनारा, आर-पार नावों का जमघट, स्टीमर, जहाज, सीटियाँ, कोलाहल, देशी-विदेशी आगत-अभ्यागत, सभा-सम्मेलन, जलसे-जुलूस, स्वागत समारोह, सिनेमा, सरकस, पूजा-पर्व, मेले, झमेले, ट्राम-बस ठेले-रिक्शा, लारी-कारें टैक्सियाँ, अट्टालिकाएँ, दुर्घटनाएँ, कूड़ा-कर्कट, ख़ून, हत्याएँ, भ्रूण हत्याएँ आत्म हत्याएँ, पत्र-पत्रकार, विज्ञापनों के छिलते कन्धे, वक्तव्यों और वक्तृताओं की अर्थियाँ, चौराहे पर लड़ते साँड़, भीड़, भगदड़, नाच-तमाशा, चलती कारों से अच्छी नस्ल के झाँकते हुए कुत्ते और कुत्तियाँ, होटल-बार, चोर-चमार, जुआड़ी-कबाड़ी, शराब, ताड़ी अड्डे, गुंडे, मुण्डे-मुण्डे, चढ़ता पारा, नारा हंगामा, धर्म और राजनीति के पंडे, रंग बिरंगे झंडे, तोड़-फोड़, भंडा-फोड़ कल-कारख़ाने, धनी-मानी, क़ाजी-हाजी बेगमें-बीवियाँ रईस नाज़-नख़रे, शरीफ़ मसखरे, विकृतियाँ, असंगतियाँ, रोज़ी-रोटी की धुन, पेट का प्रश्न, पैसा-प्रतिष्ठा-प्यार, जिस्मफ़रोशी, भद्रता का मुखौटा, सभ्यता-भव्यता की सींगें अल्ट्रामार्डनिज़्म का भूत ।

नयी पीढ़ी, नए लोग, नया कवि, नई कविता, समानान्तर नए गीतकार, नए गीत, नई कहानी, नए मूल्य समाजिक एवम् साहित्यक मूल्यों का निर्द्धारण-विघटन लघुमानव, महामानव, व्यक्ति और व्यक्तित्व का मूल्यायन, नए आग्रहों की स्थापना, आरोप, पूर्वाग्रहों की छीछालेदर, नयी मर्यादाएँ, आस्था की अहिल्याएँ, सीताएँ, कुण्ठाओं और अनास्थाओं की सूर्पणखाएँ, पराजित पीढ़ियाँ, क्षुब्ध युवकों की टोलियाँ, नुमाइशी और पैदाइशी आदर्शों और सिद्धान्तों को छौंकने-बघारने वाले ठेकेदार, आयुधजीवियों के हथकंडे, बम-बारूद, गोलियाँ-गालियाँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ ।

युगबोध, आधुनिकता का बोध, दायित्त्व, सौन्दर्य-बोध भाव-बोध, अर्थ-बोध, रुचि-बोध, आशय, विषय वस्तु बौद्धिकता, संवेदनशीलता, अनूभूति की गहराई, ईमानदारी, टटकापन, बासीपन, रस-अलंकार, रचना-विधान, प्रक्रिया, शिल्प-शैली भाषा, बूढ़ी परम्पराएँ, प्रयोग की नवोढ़ा बहुएँ, नयी

कविता की काट-छोट, मरहम पट्टी, प्रयोगवाद की शल्य-चिकित्सा, बाहर-भीतर की अवांछनीय कथायें, अवान्तर वार्तायें, खींचा-तानी, हैरानी, पलायन, दिशान्तरण, शहर का अन्देशा, देश-देशान्तर की चिन्ताएँ, अपनों की मित्रों की, अपनी परिस्थितियाँ, आस-पास का वातावरण, सीमाएँ, परिवेश ।

सादा वेश, सूरत-सीरत दरवेश जैसी, परिचितों दोस्तों के दरवाज़े-दरवाज़े पर दस्तक, हाशियेदार व्यक्तित्व की उलझनें, अभावों का ताँता, अभियोग शून्य गुणित शून्य, अन्त में नई भोर की प्रतीक्षा में सब को गोली मार कर सो जाने की आदत ।

प्रयाग से कलकत्ते तक की पाँच सौ मील की एक लम्बी दूरी, एक लम्बा अरसा यायावरों और ख़ानाबदोशों जैसी दिन-चर्या, रूप-चर्या और प्रेम-चर्या, हवा के हाथों और कल्पना के पंखों पर, कैदख़ाने से पागलख़ाने तक की सैर, लक्ष्मण-रेखा जैसी खिंची धुएँ की रेखाओं से घिरा-घिरा गीतों के मौसम-सा गाँव, गुलनार जैसी किरणगर्भी भोरें, तरबूजी रंगों में नहाई नयी बहू-सी गुमराह अहिवाती सन्ध्याएँ, तुलसी के चौरे पर जलती सँझबाती-सी यादें, सोनचिरैया जैसी चिन्ताधारायें, सोनमुखी किरणों जैसी सतरंगी रूपवती धारणायें, मोतिया अधर, हिनाई हथेलियाँ, इन्द्रधनुषी हँसी, कड़े-छड़े कंगन, फ़सलों का तोतई रंग, खुले चित्राधार जैसे अनगिन खेतों और खलिहानों के सन्दली सपने, दूबों की मुँदरी, शबनम का इन्द्रनील, गीतगन्धी श्यामला छायायें, मूँगिया मुसकानें, शुभवन्ती निष्ठा की महावरी एड़ियाँ, सपनीली फ़ीरोज़ी घाटियाँ, कस्तूरिया कल्पनाएँ, चन्दनी चेतनाएँ, हेमवर्णी आस्थाएँ, कुलाँचती हिरणियाँ, विधवा पहाड़ियाँ, लीक-लीक जाती बैलगाड़ियाँ, बैलों के गले-बँधी बजती टुनटुन घँटियाँ, हलवाहों की गुनगुन ।

नए-नए अँखुओं की पल्लवी विधाएं, दिग्विजयी अर्थों-सी छिटकी श्यामलिमा, ताल-तलैया, कोयल, बुलबुल, हंस, कबूतर, अबाबीलें, कचनार, हरसिंगार, सौरभ के सपनों में खोयी-खोयी-सी सोनजुही, सेमल, अड़हुल की रंगीनी, सूरजमुखी, पलाश, आम के बौर, नीम के फूल ।

पनघट से मरघट तक की दौड़-धूप, अमन के फ़रिश्तों की उछल-कूद, सुधियों के स्नेह-रँगे अन्तराल से लेकर नक्षत्रों की ड्योढ़ी तक का

सम्पाती-प्रयास जटायू जैसे जीवन की आकुलता, आकुंठन, दिशाहारा युग की विवर्ती यात्राएँ, गन्धभीने विकल और विक्षुब्ध प्राणों की उड़ानें, मजबूरियाँ, विश्वासों के पारदर्शी अन्तस् की विवशताएँ गंगाजली प्यार के धागे, व्यक्तित्व-अस्तित्व पीछे-पीछे, सोने का मृग आगे-आगे और प्राणों के प्यासे आवेदन की लिपियों जैसी अनुभूतियाँ ।

यही हैं मेरे उपादान, जाने-पहिचाने उपमान, आलम्बन । यही है मेरा माध्यम । यही है मेरा चित्र-शिल्प, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना, विशेषणों की भरमार, शब्दजाल, इन्द्रजाल, अर्थजाल और कुल मिला कर यही है मेरा बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व । कृतित्व सामने है अस्तित्व की चिन्ता नहीं ।

क्षमा चाहूँगा । प्रलाप के पश्चात् थोड़ा-सा वक़्त और लूँगा ।

मैं आपके समक्ष कोई नया प्रश्न या कविता की कोई नयी परिभाषा उपस्थित करने नहीं जा रहा हूँ । यों तो इस तथ्य या मान्यता के प्रति असहमति नहीं होनी चाहिए कि कविता अथवा कला जीवन और जगत के उन तमाम पक्षों, सूक्ष्म संवेदनाओं और अनुभूतियों की एक ऐसी टटकी अभिव्यक्ति है और जीवन के उन तमाम क्षणों का एक ऐसा आकलन है वस्तुतः जिसका मूल्य हमारे लिए आवेगात्मक है । इसलिए कवि के रसात्मक यथार्थ का काव्यात्मक मूल्यांकन करना, आलोचकों, पाठकों और कवियों के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण-कार्य है जहाँ तीनों के अस्तित्व और अस्तित्व-बोध में एकात्मकता का सन्तुलित और गतिशील सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है ।

जिन मूल्यों की चर्चा मैं आपसे कर रहा हूँ उनके निर्धारण या विघटन का सारा दायित्व युगीन परिवेश के उस आधार और आयतन पर है, जहाँ वस्तुओं, विषयों और परिस्थितियों की संक्रमणशील प्रतिक्रियाओं का त्रिमुखी आलोक-केन्द्र है । कविता के आदिम रूप से लेकर आधुनिक युग के नए रूप तक की परिभाषाओं, संकल्पनाओं, एवम् शिल्प-विधान के तत्वों और तन्तुओं में युगान्तकारी परिवर्तन होते आए हैं, किन्तु कविता की मूल प्रकृति में इतनी संकेत हीनता, मुद्राविहीनता और अबौद्धिकता है

कि हम उसकी मूल प्रावृत्तिक लयात्मकता को किसी नए अथवा दूसरे पर्याय तक नहीं ला सके हैं । इसका सब से जीवन्त और ठोस प्रमाण यही है कि आज तक हम अपनी संस्कारशील वैचारिक पृष्ठभूमि पर, प्रतिमानों, आयामों एवम् मूल्यों के माध्यम से कविता के रागात्मक और अभिव्यंजनात्मक सन्दर्भ में अपने विशिष्ट एवम् गोपन अहम् के उपस्थितिकरण तथा तादात्म्य की ही संवेगात्मक उपलब्धि करते आए हैं । मानें या न मानें, कवि अथवा कलाकार का अहम् संभवतः सामान्य नहीं होता क्योंकि वह उसके आन्तरिक व्यक्तित्व का एक ऐसा छायात्मक अंकन है और साथ ही साथ एक ऐसा सर्वाङ्गस्पर्शी आवेदन है जो हमारे दृष्टि-विन्दुओं या कोणों को मूल्य-निर्माण और युग-निर्माण का आमंत्रण देता है ।

अधिकांशतः काव्य-पारखी अथवा कला-पारखी पक्षधरों, धुरीधरों या धुरन्धरों, का व्यक्तिवादी एवम् एकांगी दृष्टिकोण सर्वांशतः संगतिनिष्ठ और मान्य हो, समीचीन नहीं, कुछ न कुछ असंगतियों और उलझावों की गुंजाइश तो रखता ही है । यही कारण है कि युगचेतना के समूचे अन्तराल को अनेक नए प्रयोगों, पद्धतियों और मानदण्डों के माध्यम से मापने की घुड़दौड़ तथा मूल्यों के स्थापन एवम् स्खलन की बौद्धिक और वैचारिक होड़ लगी है ।

परम्पराओं और संस्कारों से थोड़ा अलग हटकर विचारों के एक निश्चित सीमान्त पर स्थित समाज-साहित्य, व्यक्ति और व्यक्तित्व का मूल्यायित संस्करण असंगतियों और विच्युतियों से नितान्त शून्य हो, यह भी चिन्तनीय है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एकलव्यीय संकल्पात्मकता और द्रोणाचार्यत्व का आभास, जातीय एवम् विजातीय तत्वों की मुठभेड़, अभिजात, सर्वहारा आग्रहों और दुराग्रहों की भूमिकायें एक विवर्तकल्पी चेतना के उभार का लक्षण है, ऐसी स्थिति में यदि मान लिया जाय कि पूर्वाग्रह हमारी चेतना के वर्तमान अथवा भावी रूप-कल्प में अपूर्णता और अवरोध की सृष्टि करते हैं तो अस्वाभाविक और असंगत नहीं होगा, किन्तु परिस्थितियों और मनः स्थितियों के इसी रोगाक्रान्त धरातल पर एक नई प्रतीति और उसकी परिणति या नए आग्रहों का उभार हमारी चेतना के विकलांगत्व के

लिए रामबाण, अथवा आकमसीही सिद्ध होगा कहा नही जा सकता लेकिन सन्देहात्मक होते हुए भी प्रयोजनीयता और अनिवार्यता की दृष्टि से जहाँ तक युग-बोध और दायित्व के निर्वाह का प्रश्न है सत्यतः एक प्रायोगिक क्रान्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

कविता का सम्पूर्ण अस्तित्व अपने आप में नया है, नया से मेरा तात्पर्य है प्रत्येक युग में किसी भी स्थिति में अभिव्यक्ति की ताज़गी नएपन का संकेत है हिन्दी कविता में जहाँ तक आधुनिक कविता या नई कविता के शैल्पिक मूल्यों, लब्धियों, अभावों सम्भावनाओं और विकृतियों का प्रश्न है काफ़ी विवादास्पद रहा है, फिर भी प्रयोगवाद अथवा नयी कविता के सन्दर्भ में आधुनिक कवि या नया कवि जितना ही वीतश्रद्ध है इसमें सन्देह नही कि वह उतना ही सामाजिक एवम् वैयक्तिक अन्तर्विरोधों तथा समष्टि चेतना को एक नए और विशाल धरातल पर नयी अभिव्यक्ति, नयी अर्थवत्ता के साथ उपस्थित करने की दिशा में सचेष्ट और प्रयत्नशील भी है ।

विम्बविधान, चित्रात्मकता एवम् प्रतीक-योजना के माध्यम से समस्त अन्तर्वृत्तियों और जीवन के अन्तर्मुखी स्वरों को रसबोध के नए आग्रह के साथ एक नयी चिन्तन-भूमि पर आरोपित और मूर्त करने का प्रयास नई कविता के शील और स्वभाव का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके अतिरिक्त अन्तःशल्य अनुभूतियाँ, ईमानदारी की माँग, अभिव्यक्ति में यथार्थ का प्रतिफलन, विचारों में व्यापकता, वस्तुओं, विषयों में प्रेषणीयता, बोधगम्यता, भाषा-शिल्प में रूमानीपन, सहजता, अद्वितीयता तथा संस्कारों और स्वकीयचेतना के स्पन्दनों का कलात्मक संयोजन, यह सब कुछ नई कविता के नए और सर्वग्राह्य व्यक्तित्व को निखारने और मानव संवेदनाओं तथा जीवन के समग्र प्रत्ययों को एक नए दिगन्त पर उभारने की प्रस्तुति है, लेकिन प्रयोगशीलता के नाम पर नोच-खसोट, छीना-झपटी की क्रियायें-प्रक्रियायें, वक्तव्य और व्याख्याएँ नई कविता के वर्तमान अस्तित्व में कुछ ऐसी ग्रन्थियों और उलझावों के उत्तरदायी कारण हैं जिनके भीतर से ऐसा लगता है नए कवि और नई कविता के व्यक्तित्व एवम् अस्तित्व का एक रीढ़हीन पर्याय झाँक रहा हो ।

एक ओर जहाँ नई कविता में प्रयोग-वातिक-ग्रस्त व्यक्तित्व के विकलांग एवम् गद्यगन्धी प्रस्तुतीकरण के आयोजन-प्रयोजन का महत्व आँका जा रहा है वहीं दूसरी ओर नई कविता के समानान्तर ही हिन्दी के नए गीतकारों एवम् नए गीतों में युग और जीवन के तमाम अन्तर्द्वन्द्वों को सहेजने की सजगता भी कम मूल्य नहीं रखती और फिर यह तो सर्वमान्य धारणा है कि गीतों एवम् प्रगीतों अथवा गेय कविताओं का अपना एक अलग अस्तित्व और विशिष्ट सौन्दर्य है ।

प्रायः मूल्यांकन की संकुचित दृष्टि से मूल्य-प्रतिष्ठाताओं द्वारा जान-बूझ कर अथवा आक्रोशवश गेय कविताओं के साथ दरबारी मूल्यों के सतही सम्पर्क स्थापित करने का अभियोग रचाया-रटाया जाता है । जो संभवतः कविता के समूचे व्यक्तित्व में एक ऐंठन और आकुंचन की सृष्टि करता है । जहाँ तक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है उनका 'दरबारी करण' या 'घरबारी करण' कहाँ तक न्यायोचित और तर्क-संगत है यह भी विचारणीय ही है, लेकिन कविता के मूल स्वभाव और उसकी आदिम लयात्मकता के अतिरिक्त गेय कविताओं अथवा गीतों में जीवन के अन्तरंग क्षणों को संवेदन-स्निग्ध सूत्रों में पिरोने के प्रयास के साथ-साथ आवेगों-संवेगों की छन्द-तालबद्ध और सांगीतिक प्रतिक्रिया का एक ऐसा संतुलित मर्म-विन्दु उभरता है जिसका मर्मस्पर्शी आग्रह अनेक रंगों एवम् सरल, सीधी रेखाओं के माध्यम से कवि के भोक्ता और द्रष्टा दोनों रूपों तथा जीवन की खण्ड अनुभूतियों का प्राणवान और यथार्थ चित्र शिल्प प्रस्तुत करता है ।

हिन्दी के आधुनिक अथवा नए गीतों में गहरी अनुभूतियों की एक विस्तृत और नई अर्थ-भूमि पर आस्थावादी मूल्यों के बीजारोपण की समर्थता और सक्षमता 'स्वान्तः सुखाय' से लेकर 'सर्वान्तः सुखाय' तक की यात्रा का एक सुरुचि-सम्पन्न एवम् परिष्कृत इन्द्रियबोध का नया स्पर्श है । हिन्दी के वर्तमान गीतों का परिवेश पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, ऐसी बात नहीं है और यह आवश्यक भी नहीं है कि उसे पूर्वाग्रहों के संस्पर्श से वंचित किया जाय, किन्तु दायित्व और युग-प्रवाह की दृष्टि से एक नए वातावरण की सृष्टि प्रयोजनीय है इसलिए निर्वाह के साथ-साथ गीतों को एक नए मोड़ पर उपस्थित करने का आग्रह उनके विकासक्रम का अपेक्षित और अनिवार्य पक्ष है ।

नयी पीढ़ी के गीतकारों, कवियों का दृष्टिबोध सहज और संवेदनीय अनुभूतियों के माध्यम से आत्मबोध और विश्वबोध के तमाम पक्षों को बड़ी सतर्कता के साथ एक नयी मानवतावादी पृष्ठभूमि पर उभार रहा है इसमें सन्देह नहीं, साथ-ही-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रों, विम्बों और प्रतीकों में सार्वभौमत्व और साधारणीकरण की एक अर्थवती प्रवृत्ति को उकसाने तथा समग्र धरती की चेतना को समेटने की ऊर्जा का आभास सचमुच एक युगवेधी लक्ष्य और लक्षण है । अस्तु, हमारे ध्यान और धारणा का तक़ाज़ा है कि काव्यात्मक सौन्दर्य के एक नए रूमान के साथ-साथ वस्तुओं तथा वर्ण्य विषयों में वैशिष्ट्य हो, वैविध्य हो वर्जनायें नहीं ।

'अँगना फूले कचनार' आपके हाथ में है । नये-पुराने, बासी-टटके, फूल-पत्ते जो कुछ भी हैं, आपके सामने हैं । रंग, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श की फीकी, कड़वी-तीखी मधुर-मदिर ऐसी जो भी प्रतिक्रिया आप को सौंप रहा हूँ, वह मेरे और आपके बीच की तमाम भटकती हुई त्यक्ता, उपेक्षिता और अन्तर्लोना छायाओं के तृष्णार्त्त स्वरों की प्रतिध्वनि और प्रतिच्छवि है ।

युग और जीवन के मूल में अपने छिन्नमूल स्वप्नों को गला-जलाकर जो भी मुट्ठी भर माटी, अँजुरी भर आकाश दे सका हूँ उसका फल-फूल, मर्म-धर्म सब कुछ आपकी कठोर या कोमल गुदकारी हथेलियों में है । सँजोने, सहेजने और धारण करने का सारा भार आप पर, आग्रह मेरा ।

—छविनाथ मिश्र 'पागल'

गणतंत्र दिवस
कलकत्ता
26-01-62

एक

लौटा है किरणों की डोरी लपेट कर,
दिन भर का थका-थका व्योम का खिलाड़ी।

आभा ने तरबूज़ी रंगों के सागर में
सूरज को नहला कर आँचल में ढाँक लिया,
सन्ध्या ने अपने करौंदी कपोलों को
पानी के दर्पण में लुक-छिप कर झाँक लिया,

सपने उरेहती है सुधियों की स्लेट पर
छिन्न-भिन्न, खिन्न-खिन्न विधवा पहाड़ी।

धरती ने पाँव रखा, धुएँ के सरोवर में
अधरों पर गीतों की परछाईं नाच गई,
ढोरों के झुण्ड-झुण्ड लौटे हैं जंगल से
आहट सुन खुर-खुर की हिरणी कुलाँच गई,

पहियों में जीवन की दूरी समेट कर
लीक-लीक जाती है एक बैलगाड़ी।

प्राणों की प्यास बढ़ी, भीड़ लगी पनघट पर,
एक राग अटपट-सा बंसी ने टेर दिया,
कलरव से, कूजन से गूँज उठा हंस-कूल,
हंसों ने एक-एक हंसी को घेर लिया,

सूरज ने ऊषा का सिन्दूर मेट कर,
अपने ही पैरों में मार ली कुल्हाड़ी।

दो

फैली मादक गन्ध!
बौरे आम नीम के फूलों पर छाया मधुमास,
फागुन के अधरों पर नाचा यौवन का मधुहास,
बहके मेरे गीत,
छलका मधु संगीत,
सिहर गये सपनों के मालिक, जीवन के तटबन्ध!
फैली मादक गन्ध!

सेमल और पलाश खिले हैं, जैसे लोहित रंग,
भर पिचकारी मारी किसने भीगे भू के अंग,
मादकता का राग,
गूँजा मधुमय फाग,
ताल ठोंक कर सृजन खड़ा, खाकर स्वर की सौगन्ध!
फैली मादक गन्ध!

तैर रहा है जीवन मस्ती के सागर में आज,
प्रकृति-प्रिया ने सौंप दिया है, लो! जीवन का राज,
उड़ता मधुर अबीर,
फहरी ऋतु की चीर,
चमक रहा है, गमक रहा है, फूलों का मणिबन्ध!
फैली मादक गन्ध!

तीन

चल भरें गागरी!
खास पनघट यही,
साँस की शिंजिनी बज रही हर घड़ी,
गा उठी प्रेम के द्वीप की किन्नरी,
चल भरें गागरी!

प्यार के स्वर जगे,
प्राण को पर लगे,
फूल की रागिनी गन्ध बन कर उड़ी,
हँस पड़ी याद के गाँव की सुन्दरी,
चल भरें गागरी!

साँझ मन की सजी,
झाँझ तन की बजी,
भाव की कामिनी छन्द बन कर खड़ी,
प्रीति पहिने खड़ी गीत की चूनरी,
चल भरें गागरी!

चार

तुम मुझे छूने न आओ,
सुई-धागा मत दिखाओ,
मैं समय की शृंखला का एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

तुम न जिसको साध पाए,
तुम न जिसको बाँध पाए,
मैं उसी अभिशप्त युग-कुल की कलंकित साधना हूँ!
मैं सजल नीराजना हूँ गीत के देवालयों की,
वेदनाओं के स्वरों की संकलित आराधना हूँ,
लक्ष्य हूँ यायावरों का,
देवता हूँ खँडहरों का,

तुम मुझे छूने न आओ,
अर्घ्य स्वर का मत चढ़ाओ,
मैं किसी वरदायिनी का चिर अपूजित युग-चरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

स्वयम् अपना साध्य हूँ मैं,
स्वयम् का आराध्य हूँ मैं,
मैं किसी की आस्था का किरणपंखी हेमगिरि हूँ,
प्रेम का आयाम मेरे रहा अनमापा अभी तक
चेतना जड़ हो गई है, श्वास का सूना शिविर हूँ,
एक निश्चेतन व्यथा हूँ,
सृजन की पूरी कथा हूँ,

तुम मुझे छूने न आओ,
बात कुछ अपनी सुनाओ,

मैं किसी अनुरागिनी का एक छंदित विस्मरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

मुझको न अपना हाथ दो,
अब, तुम न मेरा साथ दो,
आकुंठनों की सर्जना का, ऊर्ध्वगामी लोभ हूँ मैं,
कामना के कान्तारों में भटकने दो मुझे तुम
खण्डशीला चेतना का सत्यकामी क्षोभ हूँ मैं,
कोखगत सन्ताप हूँ मैं,
एक अन्तस्ताप हूँ मैं,

तुम मुझे छूने न आओ,
शपथ खाओ, रथ बढ़ाओ,
मैं किसी सीमंतिनी के भाग्य का जीवित मरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

पाँच

अँगना फूले कचनार
चाँद की किरण-किरण परसे, प्यार बरसे!
भोर तुम्हारा नाम लिख गई, जीवन की पँखुरी पँखुरी पर,
साँझ दे गई, मधुर-मदिर सपने अनगिन अँजुरी-अँजुरी भर,
बात रात की तुम्हें ज्ञात है, ओ! मेरी सुधियों के पाहुन,
पल-छिन कट-कट जाते हैं, योंही गिन-गिन अँगुरी-अँगुरी पर,
सूना-सूना घर द्वार
प्राण-पथ के कण-कण तरसे, प्यार बरसे!

आँखों के नीले सागर की बूँद-बूँद अनमोल रतन है,
हीरे मोती जैसा जीवन, मन का मन्दिर सोनबरन है,
गंगाजली प्यार के धागे पीर सुनहरी सुइयों का धन,
दिवा सँजोए, निशा पिरोए, स्वर का पथिक गवाह गगन है,
इतना सब साज-सिंगार
याद के चरण-चरण हरसे, प्यार बरसे!

हर गागर पनघट की थाती, मरघट के घर गिरवी आँचल,
सब सिन्दूरी साधें गूँगी, जोगन आँख, विरागी काजल,
भूखी-प्यासी माटी-घाटी, अन्तर और अधर की उलझन,
उमड़-घुमड़ छँट गए तृषा के, रीते तोतापंखी बादल,

जमुना-गंगा रसधार
गीत के हिरण-हिरण प्यासे, प्यार बरसे!

छह

अभी-अभी तुमने यादों का ताज गीत को सौंप दिया है,
मन का इतना गरुअ समर्पण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा?

तिल भर खाली ठाँव नहीं है, भला इन्हें मैं कहाँ बिठाऊँ?
अपनी कुछ अनकही विवशता की पूँजी मैं कहाँ छिपाऊँ ?
तुमने अपने कर्तव्यों की इति से मेरा मान किया है,
इतना ऋण तो शोध न होगा, जनम-जनम तक ब्याज चुकाऊँ,

इन्हें सौंप दूँ बाज़ारों को,
या सपनों के बंजारों को,

तुमने स्वर के अन्तराल को वर्ण-वर्ण से ढाँप लिया है,
जीने का इतना शुभ लक्षण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

क्षण-क्षण आत्मसात कर ले जो कालजयी अस्तित्व वही है,
युग-मेधा को वरण करे जो मृत्युञ्जयी कृतित्व वही है,
कर दे अग्निसात् जो मन की गाँठ-गाँठ वह अन्तर्ज्वाला,
विषकुम्भों को जो पी जाए, गीतों का व्यक्तित्व वही है,

बीज मंत्र यह साध रहा हूँ,
तुमको स्वर में बाँध रहा हूँ,

मन की गीली धरती पर तुमने जो पौधा रोप दिया है,
उसका मरण-जयी आकर्षण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

धुँधले क्षण भीगे सपनों से सुधि का आँगन भर जाते हैं,
हरसिंगार के फूलों जैसे फूल नयन के झर जाते हैं,
साँस-साँस के लेन-देन की चन्दनगन्धी बीती वेला
उभर-उभर आती है बरबस, बासी गीत निखर जाते हैं,

इतना उज्ज्वल दान तुम्हारा,
इतनी निर्मल चिन्ताधारा,

कुछ न मिला सब कुछ पाया, जो मिला कि सब कुछ आँक लिया है,
इतने रंग भरे फीके क्षण लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

अथिर देहगन्धी साधों का राजमहल बन गया तपोवन,
और प्रीति की पर्ण-कुटी तक आ पहुँचा है योगी यौवन,
पाँच तत्व की पांचाली के लिए कामना-कुरुक्षेत्र में
कुंठाओं का कर्ण जूझता, दुश्चिन्ताओं का दुर्योधन,

काई गई कि काया निखरी,
एक श्यामला छाया उभरी,

तुम प्रतिविम्बित हुए कि जैसे सारे जग ने झाँक लिया है,
इतना बड़ा प्यार का दर्पण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

सात

सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया ।

रिमझिम-रिमझिम खपरैलों पर जब बूँदें पड़ती होंगी,
तभी न जाने टीसों की कितनी सुइयाँ गड़ती होंगी,

मेरे गीतों की दीवानी,
अपने सपने की महरानी,

गुमसुम बैठी साँझ-सकारे, सोच रही होगी मन मारे,
मेरी सुधि के राजहंस के अब तक नहीं सँदेशे आये,
उथले-छिछले, गँदले, गहरे, हहरे, लहरे ताल-तलैया!
सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया!

खोयी पलकों की मजबूरी पीर सींच ही जाती होगी,
मन की दूरी की पूरी तसवीर खींच ही जाती होगी
मेरे स्वर की गमक नशीली,
और गीत की साँसें गीली,
हवा उड़ा ले जाती होगी, और वहीं छितराती होगी
यादों में डूबी-डूबी-सी, धरे हिनाई हाथ गाल पर
जहाँ बैठकर बाट देखती होगी मेरी नयन-तरैया!
सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया!

कई महीने बीत गये हैं, कैसे दिल बहलाती होगी,
मैं आ जाऊँ नित्य इसलिए घी के दिये जलाती होगी,
दिन तो कट जाता ही होगा,
पर निशि का होता क्या होगा!
खुले झरोखों से छन-छनकर, आता होगा मधुर-मधुर स्वर,
सूनी सेज पिया डर लागे, तुम बिन पल-छिन चैन न आये,
एक बूँद के लिए तुम्हारी तड़प रही है सोनचिरैया!
सतरंगे बादल घिर आये, और बही बैरिन पुरवैया!

आठ

मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!
मैं माँग सितारों का टीका शशि की दुलहन से लाऊँगा!

मैं माँग तुम्हारी भरने को, ऊषा से सेंदुर ले लूँगा,
माथे की बिन्दी रचने को सन्ध्या से ईंगुर ले लूँगा,
सोने-चाँदी की बात नहीं, अनमोल जवाहर ले लूँगा,
मोती-माला पहिनाने को, सारा रत्नाकर ले लूँगा,

कर लो सिंगार, फिर तुम हँस दो!
छू लो सितार कस दो, रस दो!

मैं कंठ माँगकर कोयल का, स्वर के मधुवन से लाऊँगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

मैं तुम्हें स्वर्ग से ला दूँगा फिर इन्द्रधनुष जैसा कंगन,
जायेगी नरम कलाई बँध, है बड़ा सुहाना यह बन्धन,
नीलोफ़र जैसी आँखों में जब चमक उठेगी नयी किरण,
मृगबालाएँ शरमायेंगी, नभ में उड़ जायेंगे खंजन,

फिर मुझे छिपा लेना दिल में!
आँखों के काले लघु तिल में!

मैं माँग आँख का अंजन, फिर कजरारे घन से लाऊंगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

करके सिंगार, फिर एक बार, मुझसे कर लेना प्यार अमर,
फिर मेरे-तेरे अन्तर का होगा सुन्दर अभिसार अमर,
पर जीवन एक विकृति संगिनि! है मरण प्रकृति का सार अमर,
जब तक है साँस उतरती-चढ़ती तब तक यह संसार अमर,

इसलिये मोह की माया से,
मत डरो मौत की छाया से,

मैं एक बार यह साँस तुम्हारी, खींच कफ़न से लाऊँगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

नौ

हज़ारों बार चुपके से तुम्हारी याद में संगिनि!
हज़ारों विन्दु आँसू के छलक करके ढुलक कर बह गये ।

तुम्हें मैं याद आता हूँ, न यह मैं मान लूँ कैसे,
कि सच्चा प्यार मरता है न जीता, मान लूँ कैसे,
मधुप कब भूल पाता है, कली के नूपुरों की धुन,
कली कब चैन पाती है, मधुप के नव स्वरों को सुन,

दिवा के भाल की बिन्दी, निशा के पाँव की लाली,
रचा कर हँस पड़ा बरबस अरे! जब भोर का माली,
किसी ने किरण के पायल बजा कर खोल दी खिड़की
हमारी ही तरह फिर क्यों गगन की बाँह भी फड़की ?

चमन की आँख से उड़ कर सुबह ही कुछ तुहिन के कण
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गये!

दिलों के बीच की दूरी नहीं कुछ मानता हूँ मैं,
मिले अन्तर कि फिर अन्तर नहीं पहचानता हूँ मैं,
हज़ारों कल्प साक्षी हैं कि नभ से दूर है धरती,
और यह सत्य भी है, हाँ, बहुत मजबूर है धरती,

मगर उसकी अमर यादें गगन को भी रुला देतीं,
कि नभ की पीर का फोड़ा सहज में ही गला देतीं,
धरा का हास निखरा है, गगन के नीर से धुल कर,
हज़ारों बार नभ रोया, हमारी ही तरह घुल कर,

ज़मीं की गोद से उड़ कर, कई मासूम पथ-रज-कण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिपकर सँभलकर कह गये!

लगन की डोर से बँधकर न कोई छूट पाया है,
कि सच्ची प्रीति का बन्धन कहाँ कब टूट पाया है,
युगों से चातकी, स्वाती नखत के मेघ को लखती,
कभी बरसात के आँसू न अपने कंठ में रखती,

भरे हर साँस में जाने न कितने प्यास के मरुथल,
लगाये लौ तरसती है न बरसे आश के बादल,
कि नन्हीं बूँद पर ही ख्वाहिशें कुरबान होती हैं,
तुम्हारी ख्वाहिशें क्या यों नहीं अभिमान खोती हैं,

विरह की क़ब्र से उठकर, मिलन के कुछ गड़े मधुक्षण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गए!

अमर है प्राण से मिल कर, किसी के प्राण की छाया,
न मिटती प्राण की प्रतिमा, न मिटती प्रेम की काया,
कफ़न में मुँह छिपा कर लाश पहुँची रात मरघट पर,
हँसा मरघट कि किसकी प्यास रोई आज पनघट पर,

चिता की सेज पर सोकर, उठा जब काल मरघट पर,
कहानी प्यार की कहने, जुटे कंकाल मरघट पर,
दबाकर दाँत से उँगली, मज़ारों के गड़े पत्थर,
पड़े ख़ामोश क्यों मेरी तरह ही काँप कर थर-थर,

चिता के हाथ से गिर कर कई चिनगारियों के कण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गए।

दस

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

प्यार ज्यों ही हँसा, कामना मर गई,
जीत भी हार की सर्जना कर गई,
ओस की बूँद-सी, कल्पना झर गई,

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

स्वर नये जब सजे, खो गई गुंजना
हाँ, न पूरी हुई गीत की गुम्फना,
और बरबस तभी मैं उठा गुनगुना

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

मैं सुखी हूँ कि सारी लगन जल गई,
खुद छली भी गई, किन्तु मन छल गई,
दीप की उम्र-सी हर चुभन ढल गई,

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

ग्यारह

यादों से घिरे-घिरे मन को समझाना है!
हमको नक्षत्रों की ड्योढ़ी तक जाना है!

तुलसी के चौरे पर जलती सँझवाती-सी,
संकल्पी जीवन की गोपनीय थाती-सी,
जाने किस संध्या की युवती कुंठायें हैं,
तिल-तिल कर जलती हैं स्नेहवती बाती-सी,
प्यार की उँगलियों से इनको उसकाना है!
आँधी के अधरों से इनको टकराना है!

अनदेखे सपनों के पर्वतीय देशों-सी,
जाने किस यक्षी के गूँगे संदेशों-सी
प्राणों के प्यासे आवेदन की लिपियाँ हैं,
रह-रहकर खलती हैं बिखरे आवेशों-सी,
जीवन के हर क्षण को भेंट में चढ़ाना है!
बूँद-बूँद दूध और पानी अलगाना है!

तन-मन के आकुंठित आकुल व्यवधानों-सी,
लाख-लाख साधों के सीधे अभियानों-सी,
जाने किस संधानी स्वर की भाषाएं हैं,
पग-पग पर उगती हैं गीतों के दानों-सी,
वर्ण-वर्ण मन के विश्वासों का बाना है!
तप-जप से इनके आकाश को डिगाना है!

बारह

पीछे छूट गए साथी सब, मैं ही रहा अकेला पथ पर,
और रही परछाईं मेरी!

जिस दिन मैंने क़दम बढ़ाया, हँसी प्यार की मंज़िल मेरी,
अभिशापों का दीप जलाकर, सजी हार की महफ़िल मेरी,
दूर कहीं मरघट से आई, परिचित-सी आवाज़ किसी की,
फिर पाँवों को चूम-चूम कर, उड़ी राख की धूमिल ढेरी,

थके-थके सब सपने क्वाँरे,
देख रहे थे नभ के तारे,
नियति-नटी की इस छलना पर, मैं ही हँसा अकेला पथ पर,
और हँसी परछाईं मेरी ।

मुझे चाँद ने कसकर मारा, किरणों के उजले तीरों से,
लेने मोल चाँदनी आई, तारों के नीले हीरों से,
हारे नभ के सभी सितारे, खेल-खेलकर आख़िर मुझसे,
सन्ध्या हारी, ऊषा हारी, बँध न सका मैं ज़ंजीरों से,
मुझे बाँध कर हारी छाया,
प्राणों की फिर सारी माया,
रीझ गया मैं अपने ऊपर, फिर खुद बँधा अकेला पथ पर,
और बँधी परछाईं मेरी ।

मुझे बाहर लुभाने आई, लसे-कसे फूलों के पायल,
मेरे गीतों के यौवन को करने आई स्वर से घायल,
काँटों के पाँवड़े बिछाकर, मधुवन ने फिर अगवानी की,
स्वागत किया खुशी से मैंने, प्राण नहीं हो पाये पागल,
फूल मुझे समझाने आये,
शूल मुझे बहकाने आये,
दामन काँटों का उधेड़ कर, मैं ही बढ़ा अकेला पथ पर,
और बढ़ी परछाईं मेरी !

एक रात जब बजीं अचानक, साँसों की अनगिन मंजीरें,
सिकुड़ीं जीवन के माथे की पाप-पुण्य की सभी लकीरें,
उठीं आँधियाँ चिनगारी की, मानसरोवर सूख गया फिर,
और हुई बरसात आग की, झुलसीं यादों की तसवीरें,
बची न एक निशानी मेरी,
शेष रही नादानी मेरी,
उड़ा हंस फिर पंख मार कर, मैं भी उड़ा अकेला पथ पर,
और उड़ी परछाईं मेरी !

तेरह

जल भरने की वेला बीती, पायल की झनकार न बोली!
सूने पनघट के आँगन में कितने कलश पड़े हैं ख़ाली,
प्रेम-सुधा के प्यासे देखो, कितने विवश खड़े ले प्याली,
खोया खोया-सा क्यों उर-पुर,
बजे न रुनझुन-रुनझुन नूपुर,
रूप-कुंज से प्राणों की क्यों अब तक मलय बयार न डोली!
नन्हें पात स्वप्न के पनपे, आख़िर सब क्षण-भंगुर निकले,
नयनों की धरती से जाने कब आँसू के अंकुर निकले,
दीवानों का भाव नोंचकर,
अरमानों का घाव पोंछकर,
भिगो गई अन्तस्तल छिप कर, पीड़ा की बौछार न बोली!

आज न जीवन-गगरी से, अब जीवन-गगरी टकरायेगी,
डर है यौवन की ज्वाला से मन की नगरी जल जायेगी,
चाह अधूरी रह जायेगी,
राह न पूरी हो पायेगी,
अब तक आश बँधी है उर में फिर भी अपनी हार न बोली !

सभी घड़े मिट्टी के फूटे, फूट गये पनघट के छाले,
सब राही प्यासे ही लौटे, टूट गये, जाने कब प्याले,
आज कुएँ के कण-कण रोये,
जीवन और मरण भी रोये,
फिर भी ज्योति-शिला न पसीजी, ईंटों की दीवार न बोली!

चौदह

नभ से ज्योति-परी लो! उतरी!
धरती ने आवाज़ लगाई,
बजी दीपकों की शहनाई,
गीतों की रानी मुसकाई,
छाया नये स्वरों की उभरी!

लेकर परिमल की मधुप्याली,
चली अनागन्धित शेफाली,
झूमा अन्धकार का माली,
खुल-खुल गई निशा की क़वरी!

चौंक पड़ा जगमग जग सारा,
छूटा किरणों का फ़व्वारा,
दीप-कुमारों ने शर मारा,
फूट गई आभा की गगरी!

तम की बाँह पकड़ कर बोली,
विदा करो, रजनी की डोली,
घबड़ाई तारों की टोली,
विकल हुई अम्बर की नगरी!

पन्द्रह

प्यार की रागिनी,
तार की स्वामिनी, एक पल ही बजी, किन्तु मन बज गया ।

सज गई वीण पर प्राण की कल्पना,
हँस पड़ी झूम कर प्रेम की वन्दना,
गा उठी स्वप्न के दीप की अर्चना,
ज्योति की कामिनी,
प्रीति की चाँदनी, एक पल ही सजी, किन्तु तन सज गया ।

मेघ का स्वर उड़ा, भू हँसी, नभ हँसा,
बज गई बाँसुरी, भाव का घर बसा,
नाचने लग गई गीत की लालसा,
व्योम की मालिनी,
बावरी दामिनी, एक पल ही लजी, किन्तु घन लज गया ।

खिलखिला कर हँसी, फूल की हर कली,
सज गई रूप के गाँव की हर गली,
मच गई पीर के देश में ख़लबली,
साँवली यामिनी,
चाँद की मानिनी, एक पल ही सजी, किन्तु वन सज गया ।

सोलह

ध्वंस की लाश को ढाँपने के लिए, आज मेरी जवानी कफ़न माँगती है,
सृजन माँगती है ।

एक दिन फूल ने खिलखिला कर कहा, गन्ध की रागिनी खो न जाये कहीं,
एक दिन शूल ने बौखला कर कहा, बाग़ की रोशनी खो न जाये कहीं,
एक दिन धूल ने गिड़गिड़ा कर कहा, खो न जाये कहीं यह ज़मीनी हँसी,
एक दिन भूल ने तिलमिला कर कहा, रूप की चाँदनी खो न जाये कहीं,

सोलह

ध्वंस की लाश को ढाँपने के लिए, आज मेरी जवानी कफ़न माँगती है,
सृजन माँगती है ।

एक दिन फूल ने खिलखिला कर कहा, गन्ध की रागिनी खो न जाये कहीं,
एक दिन शूल ने बौखला कर कहा, बाग़ की रोशनी खो न जाये कहीं,
एक दिन धूल ने गिड़गिड़ा कर कहा, खो न जाये कहीं यह ज़मीनी हँसी,
एक दिन भूल ने तिलमिला कर कहा, रूप की चाँदनी खो न जाये कहीं,

फूल के देश में रो रहीं बुलबुलें,
हैं उजड़ने लगीं सरगमी महफ़िलें,
गीत की लय नयी बाँधने के लिए, आज कोयल निराला चमन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

एक दिन प्राण से खीझ कर यों कहा, रूठ कर एक चिनगी चिता से उड़ी,
'लाश का भार मुझसे न जाता सहा' बन गई राख की एक नन्हीं छड़ी,
चौंधिया-सी गयी मरघटों की नज़र, साँस का कारवाँ घाट से मुड़ गया,
क़ब्र के फूल भी खिलखिला कर हँसे, लाश भी बुदबुदायी ज़मीं में गड़ी,
प्राण के राज में छा गया क़हक़हा,
और मुरदा उठा मुसकरा कर कहा,
मौत की यह हवा बाँधने के लिए, सर्जना शान्ति का स्वर-गगन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

लपलपाती बढ़ी आ रही जीभ को, काल के नाग की विषमयी नागिनी,
जल न जाये कहीं एक फूत्कार से, गीत के ग्वाल की स्वरमयी ग्वालिनी,
बिन्दियाँ माय की गिर न जायें कहीं, मिट न जायें सिंदूरी लकीरें कहीं,
कौन रागी चला आ रहा छेड़ता, ध्वंस की बीन पर आतिशी रागिनी,
ज़िन्दगी की लहर सूख जाये नहीं,
गूँज कर खो गई ध्वनि हवा में कहीं,
नाश के नाग को नाथने के लिए, कल्पना कृष्ण की-सी लगन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

मैं नहीं चाहता हूँ अमन की कपोती, कहीं नाश के जाल में जा फँसे,
मैं नहीं चाहता हूँ कबाबी हवस, आग में भून कर पंख उसके हँसे,
चाहता हूँ कि मैं गोश्त के लालची क़ातिलों की ज़बाँ काट लूँ साथियो,
किन्तु मैं हूँ विवश चाहता हूँ नहीं, तेग़ फिर से किसी के गले में धँसे,
आ रही दूर से एक आवाज़ भी,
खुल रहा है कहीं सत्य का राज़ भी,
प्यार की साँस को साधने के लिए, साधना हर तरफ़ अब अमन माँगती है
सृजन माँगती है ।

सत्रह

अश्रु की धार से,
पीर से प्यार से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

बह गई फूल-सी कामना भूल से,
मिल न पाई लहर स्वप्न की, कूल से,
ढंक गई साधना, शाप की धूल से,
प्रीति के दान से,
मीत के मान से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

हो गई, राख-सी प्रीति की उर्मिला,
हेम-काया जली, मन जला, क्या मिला,
कूजती ही रही पीर की कोकिला,
प्राण की जीत से,
चाँद के गीत से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

चाह कर भी बहुत, कुछ नहीं चाहिए,
सुख नहीं चाहिए, दुख नहीं चाहिए,
कुछ न पूछो, मुझे कुछ नहीं चाहिए,
रूप की आग से,
रंग से राग से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ ।

अठारह

प्रणय के आकाश पर फैली धुआँ-सी
आज उनई याद की कारी बदरिया!

लग रहा है, तुम अकेली देहरी पर,
एक उँगली रखे अधरों पर खड़ी हो,
प्यार की हर पर्त्त, साँसें खोलती हैं,
तुम कि जैसे गीतगन्धी पंखुड़ी हो,

उड़ाकर लाईं अभी पछुवा हवाएँ,
अश्रु-भीगी शाम की गहरी उदासी,
आज डूबी प्राण की प्यारी नगरिया!

मधुर प्रत्यागत क्षणों का मोल क्या है ?
इन प्रतीक्षा के क्षणों में आँक तो लो !
चलो! पल भर चिर प्रतीक्षित खिड़कियों से,
उमड़ते आतुर घनों को झाँक तो लो!

मोरपंखी कल्पना की स्वर-शिखायें,
नाचती छाया-नटी नीलांजना-सी,
देखनी है बाट ही सारी उमरिया!

पनघटों से मरघटों तक उड़ा जीवन,
चंचु में आई नहीं विधि-लिपि सनातन,
दो मनों की वे अनाविल यात्राएँ,
छू न पाया जिन्हें कोई भी समापन,

सब दिशायें निर्जला आकांक्षायें,
कोसती हैं, हाय रे! पावस प्रवासी,
भर न पायी रूप की न्यारी गगरिया!

उन्नीस

लेकर सन्देश चली,
जीवन के देश चली, भोर की कबूतरी!
चोंच मार, उड़ी, गिरी,
आभा से भरी-भरी,
ऊषा की तश्तरी!

भावों के स्रोत खुले,
गीतों के पंख धुले,
लय पर लय टूट पड़ी,
नभ से फिर फूट पड़ी,
किरणों की निर्झरी!

आशा के फूल खिले,
बिछुड़े सब हिले-मिले,
युग-युग की पीर कढ़ी,
भाग्य की लकीर बढ़ी,
फैल गई बात री!

घोड़ों की रास धरे,
ओठों में हास भरे,
सपनों का राज लिए,
सोने का ताज लिए,
आये हैं कन्त री!

लिए रामवाण, अथवा अर्क्रमसीही सिद्ध होगा कहा नहीं जा सकता लेकिन सन्देहात्मक होते हुए भी प्रयोजनीयता और अनिवार्यता की दृष्टि से जहाँ तक युग-बोध और दायित्व के निर्वाह का प्रश्न है सत्यत: एक प्रायोगिक क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है ।

कविता का सम्पूर्ण अस्तित्व अपने आप में नया है, नया से मेरा तात्पर्य है प्रत्येक युग में किसी भी स्थिति में अभिव्यक्ति की ताज़गी नएपन का संकेत है हिन्दी कविता में जहाँ तक आधुनिक कविता या नई कविता के शैल्पिक मूल्यों, लब्धियों, अभावों सम्भावनाओं और विकृतियों का प्रश्न है काफ़ी विवादास्पद रहा है, फिर भी प्रयोगवाद अथवा नयी कविता के सन्दर्भ में आधुनिक कवि या नया कवि जितना ही वीतश्रद्ध है इसमें सन्देह नहीं कि वह उतना ही सामाजिक एवम् वैयक्तिक अन्तर्विरोधों तथा समष्टि चेतना को एक नए और विशाल धरातल पर नयी अभिव्यक्ति, नयी अर्थवत्ता के साथ उपस्थित करने की दिशा में सचेष्ट और प्रयत्नशील भी है ।

विम्बविधान, चित्रात्मकता एवम् प्रतीक-योजना के माध्यम से समस्त अन्तर्वृत्तियों और जीवन के अन्तर्मुखी स्वरों को रसबोध के नए आग्रह के साथ एक नयी चिन्तन-भूमि पर आरोपित और मूर्त करने का प्रयास नई कविता के शील और स्वभाव का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके अतिरिक्त अन्त:शल्य अनुभूतियाँ, ईमानदारी की माँग, अभिव्यक्ति में यथार्थ का प्रतिफलन, विचारों में व्यापकता, वस्तुओं, विषयों में प्रेषणीयता, बोधगम्यता, भाषा-शिल्प में रूमानीपन, सहजता, अद्वितीयता तथा संस्कारों और स्वकीयचेतना के स्पन्दनों का कलात्मक संयोजन, यह सब कुछ नई कविता के नए और सर्वग्राह्य व्यक्तित्व को निखारने और मानव संवेदनाओं तथा जीवन के समग्र प्रत्ययों को एक नए दिगन्त पर उभारने की प्रस्तुति है, लेकिन प्रयोगशीलता के नाम पर नोच-खसोट, छीना-झपटी की क्रियायें-प्रक्रियायें, वक्तव्य और व्याख्याएँ नई कविता के वर्तमान अस्तित्व में कुछ ऐसी ग्रन्थियों और उलझावों के उत्तरदायी कारण हैं जिनके भीतर से ऐसा लगता है नए कवि और नई कविता के व्यक्तित्व एवम् अस्तित्व का एक रीढ़हीन पर्याय झाँक रहा हो ।

एक ओर जहाँ नई कविता में प्रयोग-वातिक-ग्रस्त व्यक्तित्व के विकलांग एवम् गद्यगन्धी प्रस्तुतीकरण के आयोजन-प्रयोजन का महत्त्व आँका जा रहा है वहीं दूसरी ओर नई कविता के समानान्तर ही हिन्दी के नए गीतकारों एवम् नए गीतों में युग और जीवन के तमाम अन्तर्द्वन्द्वों को सहेजने की सजगता भी कम मूल्य नहीं रखती और फिर यह तो सर्वमान्य धारणा है कि गीतों एवम् प्रगीतों अथवा गेय कविताओं का अपना एक अलग अस्तित्व और विशिष्ट सौन्दर्य है ।

प्रायः मूल्यांकन की संकुचित दृष्टि से मूल्य-प्रतिष्ठाताओं द्वारा जान-बूझ कर अथवा आक्रोशवश गेय कविताओं के साथ दरबारी मूल्यों के सतही सम्पर्क स्थापित करने का अभियोग रचाया-रटाया जाता है । जो संभवतः कविता के समूचे व्यक्तित्व में एक ऐंठन और आकुंचन की सृष्टि करता है । जहाँ तक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है उनका 'दरबारी करण' या 'घरबारी करण' कहाँ तक न्यायोचित और तर्क-संगत है यह भी विचारणीय ही है, लेकिन कविता के मूल स्वभाव और उसकी आदिम लयात्मकता के अतिरिक्त गेय कविताओं अथवा गीतों में जीवन के अन्तरंग क्षणों को संवेदन-स्निग्ध सूत्रों में पिरोने के प्रयास के साथ-साथ आवेगों-संवेगों की छन्द-तालबद्ध और सांगीतिक प्रतिक्रिया का एक ऐसा संतुलित मर्म-विन्दु उभरता है जिसका मर्मस्पर्शी आग्रह अनेक रंगों एवम् सरल, सीधी रेखाओं के माध्यम से कवि के भोक्ता और द्रष्टा दोनों रूपों तथा जीवन की खण्ड अनुभूतियों का प्राणवान और यथार्थ चित्र शिल्प प्रस्तुत करता है ।

हिन्दी के आधुनिक अथवा नए गीतों में गहरी अनुभूतियों की एक विस्तृत और नई अर्थ-भूमि पर आस्थावादी मूल्यों के बीजारोपण की समर्थता और सक्षमता 'स्वान्तः सुखाय' से लेकर 'सर्वान्तः सुखाय' तक की यात्रा का एक सुरुचि-सम्पन्न एवम् परिष्कृत इन्द्रियबोध का नया स्पर्श है । हिन्दी के वर्तमान गीतों का परिवेश पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, ऐसी बात नहीं है और यह आवश्यक भी नहीं है कि उसे पूर्वाग्रहों के संस्पर्श से वंचित किया जाय, किन्तु दायित्व और युग-प्रवाह की दृष्टि से एक नए वातावरण की सृष्टि प्रयोजनीय है इसलिए निर्वाह के साथ-साथ गीतों को एक नए मोड़ पर उपस्थित करने का आग्रह उनके विकासक्रम का अपेक्षित और अनिवार्य पक्ष है ।

नयी पीढ़ी के गीतकारों, कवियों का दृष्टिबोध सहज और संवेदनीय अनुभूतियों के माध्यम से आत्मबोध और विश्वबोध के तमाम पक्षों को बड़ी सतर्कता के साथ एक नयी मानवतावादी पृष्ठभूमि पर उभार रहा है इसमें सन्देह नहीं, साथ-ही-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, ग्रामीण और प्राकृतिक चित्रों, विम्बों और प्रतीकों में सार्वभौमत्व और साधारणीकरण की एक अर्थवती प्रवृत्ति को उकसाने तथा समग्र धरती की चेतना को समेटने की ऊर्जा का आभास सचमुच एक युगवेधी लक्ष्य और लक्षण है । अस्तु, हमारे ध्यान और धारणा का तक़ाज़ा है कि काव्यात्मक सौन्दर्य के एक नए रूमान के साथ-साथ वस्तुओं तथा वर्ण्य विषयों में वैशिष्ट्य हो, वैविध्य हो वर्जनायें नहीं ।

'अँगना फूले कचनार' आपके हाथ में है । नये-पुराने, बासी-टटके, फूल-पत्ते जो कुछ भी हैं, आपके सामने हैं । रंग, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श की फीकी, कड़वी-तीखी मधुर-मदिर ऐसी जो भी प्रतिक्रिया आप को सौंप रहा हूँ, वह मेरे और आपके बीच की तमाम भटकती हुई त्यक्ता, उपेक्षिता और अन्तर्लोना छायाओं के तृष्णार्त्त स्वरों की प्रतिध्वनि और प्रतिच्छवि है ।

युग और जीवन के मूल में अपने छिन्नमूल स्वप्नों को गला-जलाकर जो भी मुट्ठी भर माटी, अँजुरी भर आकाश दे सका हूँ उसका फल-फूल, मर्म-धर्म सब कुछ आपकी कठोर या कोमल गुदकारी हथेलियों में है । सँजोने, सहेजने और धारण करने का सारा भार आप पर, आग्रह मेरा ।

—छविनाथ मिश्र 'पागल'

गणतंत्र दिवस

कलकत्ता

26-01-62

एक

लौटा है किरणों की डोरी लपेट कर,
दिन भर का थका-थका व्योम का खिलाड़ी।

आभा ने तरबूज़ी रंगों के सागर में
सूरज को नहला कर आँचल में ढाँक लिया,
सन्ध्या ने अपने करौंदी कपोलों को
पानी के दर्पण में लुक-छिप कर झाँक लिया,

सपने उरेहती है सुधियों की स्लेट पर
छिन्न-भिन्न, खिन्न-खिन्न विधवा पहाड़ी।

धरती ने पाँव रखा, धुएँ के सरोवर में
अधरों पर गीतों की परछाईं नाच गई,
ढोरों के झुण्ड-झुण्ड लौटे हैं जंगल से
आहट सुन खुर-खुर की हिरणी कुलाँच गई,

पहियों में जीवन की दूरी समेट कर
लीक-लीक जाती है एक बैलगाड़ी।

प्राणों की प्यास बढ़ी, भीड़ लगी पनघट पर,
एक राग अटपट-सा बंसी ने टेर दिया,
कलरव से, कूजन से गूँज उठा हंस-कूल,
हंसों ने एक-एक हंसी को घेर लिया,

सूरज ने ऊषा का सिन्दूर मेट कर,
अपने ही पैरों में मार ली कुल्हाड़ी।

दो

फैली मादक गन्ध!
बौरे आम नीम के फूलों पर छाया मधुमास,
फागुन के अधरों पर नाचा यौवन का मधुहास,
बहके मेरे गीत,
छलका मधु संगीत,
सिहर गये सपनों के मालिक, जीवन के तटबन्ध!
फैली मादक गन्ध!

सेमल और पलाश खिले हैं, जैसे लोहित रंग,
भर पिचकारी मारी किसने भीगे भू के अंग,
मादकता का राग,
गूँजा मधुमय फाग,
ताल ठोंक कर सृजन खड़ा, खाकर स्वर की सौगन्ध!
फैली मादक गन्ध!

तैर रहा है जीवन मस्ती के सागर में आज,
प्रकृति-प्रिया ने सौंप दिया है, लो! जीवन का राज,
उड़ता मधुर अबीर,
फहरी ऋतु की चीर,
चमक रहा है, गमक रहा है, फूलों का मणिबन्ध!
फैली मादक गन्ध!

तीन

चल भरें गागरी!
खास पनघट यही,
साँस की शिंजिनी बज रही हर घड़ी,
गा उठी प्रेम के द्वीप की किन्नरी,
चल भरें गागरी!

प्यार के स्वर जगे,
प्राण को पर लगे,
फूल की रागिनी गन्ध बन कर उड़ी,
हँस पड़ी याद के गाँव की सुन्दरी,
चल भरें गागरी!

साँझ मन की सजी,
झाँझ तन की बजी,
भाव की कामिनी छन्द बन कर खड़ी,
प्रीति पहिने खड़ी गीत की चूनरी,
चल भरें गागरी!

चार

तुम मुझे छूने न आओ,
सुई-धागा मत दिखाओ,
मैं समय की शृंखला का एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

तुम न जिसको साध पाए,
तुम न जिसको बाँध पाए,
मैं उसी अभिशप्त युग-कुल की कलंकित साधना हूँ!
मैं सजल नीराजना हूँ गीत के देवालयों की,
वेदनाओं के स्वरों की संकलित आराधना हूँ,
लक्ष्य हूँ यायावरों का,
देवता हूँ खँडहरों का,

तुम मुझे छूने न आओ,
अर्घ्य स्वर का मत चढ़ाओ,
मैं किसी वरदायिनी का चिर अपूजित युग-चरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

स्वयम् अपना साध्य हूँ मैं,
स्वयम् का आराध्य हूँ मैं,
मैं किसी की आस्था का किरणपंखी हेमगिरि हूँ,
प्रेम का आयाम मेरे रहा अनमापा अभी तक
चेतना जड़ हो गई है, श्वास का सूना शिविर हूँ,
एक निश्चेतन व्यथा हूँ,
सृजन की पूरी कथा हूँ,

तुम मुझे छूने न आओ,
बात कुछ अपनी सुनाओ,

मैं किसी अनुरागिनी का एक छंदित विस्मरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

मुझको न अपना हाथ दो,
अब, तुम न मेरा साथ दो,
आकुंठनों की सर्जना का, ऊर्ध्वगामी लोभ हूँ मैं,
कामना के कान्तारों में भटकने दो मुझे तुम
खण्डशीला चेतना का सत्यकामी क्षोभ हूँ मैं,
कोखगत सन्ताप हूँ मैं,
एक अन्तस्ताप हूँ मैं,

तुम मुझे छूने न आओ,
शपथ खाओ, रथ बढ़ाओ,
मैं किसी सीमंतिनी के भाग्य का जीवित मरण हूँ!
एक टूटा व्यथित क्षण हूँ!

पाँच

अँगना फूले कचनार
चाँद की किरण-किरण परसे, प्यार बरसे!
भोर तुम्हारा नाम लिख गई, जीवन की पँखुरी पँखुरी पर,
साँझ दे गई, मधुर-मदिर सपने अनगिन अँजुरी-अँजुरी भर,
बात रात की तुम्हें ज्ञात है, ओ! मेरी सुधियों के पाहुन,
पल-छिन कट-कट जाते हैं, योंही गिन-गिन अँगुरी-अँगुरी पर,
सूना-सूना घर द्वार
प्राण-पथ के कण-कण तरसे, प्यार बरसे!

आँखों के नीले सागर की बूँद-बूँद अनमोल रतन है,
हीरे मोती जैसा जीवन, मन का मन्दिर सोनबरन है,
गंगाजली प्यार के धागे पीर सुनहरी सुइयों का धन,
दिवा सँजोए, निशा पिरोए, स्वर का पथिक गवाह गगन है,
इतना सब साज-सिंगार
याद के चरण-चरण हरसे, प्यार बरसे!

हर गागर पनघट की थाती, मरघट के घर गिरवी आँचल,
सब सिन्दूरी साधें गूँगी, जोगन आँख, विरागी काजल,
भूखी-प्यासी माटी-घाटी, अन्तर और अधर की उलझन,
उमड़-घुमड़ छँट गए तृषा के, रीते तोतापंखी बादल,

जमुना-गंगा रसधार
गीत के हिरण-हिरण प्यासे, प्यार बरसे!

छह

अभी-अभी तुमने यादों का ताज गीत को सौंप दिया है,
मन का इतना गरुअ समर्पण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा?

तिल भर खाली ठाँव नहीं है, भला इन्हें मैं कहाँ बिठाऊँ?
अपनी कुछ अनकही विवशता की पूँजी मैं कहाँ छिपाऊँ ?
तुमने अपने कर्तव्यों की इति से मेरा मान किया है,
इतना ऋण तो शोध न होगा, जनम-जनम तक ब्याज चुकाऊँ,

इन्हें सौंप दूँ बाज़ारों को,
या सपनों के बंजारों को,

तुमने स्वर के अन्तराल को वर्ण-वर्ण से ढाँप लिया है,
जीने का इतना शुभ लक्षण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

क्षण-क्षण आत्मसात कर ले जो कालजयी अस्तित्व वही है,
युग-मेधा को वरण करे जो मृत्युञ्जयी कृतित्व वही है,
कर दे अग्निसात् जो मन की गाँठ-गाँठ वह अन्तर्ज्वाला,
विषकुम्भों को जो पी जाए, गीतों का व्यक्तित्व वही है,

बीज मंत्र यह साध रहा हूँ,
तुमको स्वर में बाँध रहा हूँ,

मन की गीली धरती पर तुमने जो पौधा रोप दिया है,
उसका मरण-जयी आकर्षण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

धुँधले क्षण भीगे सपनों से सुधि का आँगन भर जाते हैं,
हरसिंगार के फूलों जैसे फूल नयन के झर जाते हैं,
साँस-साँस के लेन-देन की चन्दनगन्धी बीती वेला
उभर-उभर आती है बरबस, बासी गीत निखर जाते हैं,

इतना उज्ज्वल दान तुम्हारा,
इतनी निर्मल चिन्ताधारा,

कुछ न मिला सब कुछ पाया, जो मिला कि सब कुछ आँक लिया है,
इतने रंग भरे फीके क्षण लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

अथिर देहगन्धी साधों का राजमहल बन गया तपोवन,
और प्रीति की पर्ण-कुटी तक आ पहुँचा है योगी यौवन,
पाँच तत्व की पांचाली के लिए कामना-कुरुक्षेत्र में
कुंठाओं का कर्ण जूझता, दुश्चिन्ताओं का दुर्योधन,

काई गई कि काया निखरी,
एक श्यामला छाया उभरी,

तुम प्रतिविम्बित हुए कि जैसे सारे जग ने झाँक लिया है,
इतना बड़ा प्यार का दर्पण, लेकर कहाँ-कहाँ भटकूँगा ?

सात

सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया ।

रिमझिम-रिमझिम खपरैलों पर जब बूँदें पड़ती होंगी,
तभी न जाने टीसों की कितनी सुइयाँ गड़ती होंगी,

मेरे गीतों की दीवानी,
अपने सपने की महरानी,

गुमसुम बैठी साँझ-सकारे, सोच रही होगी मन मारे,
मेरी सुधि के राजहंस के अब तक नहीं सँदेशे आये,
उथले-छिछले, गँदले, गहरे, हहरे, लहरे ताल-तलैया!
सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया!

खोयी पलकों की मजबूरी पीर सींच ही जाती होगी,
मन की दूरी की पूरी तसवीर खींच ही जाती होगी
मेरे स्वर की गमक नशीली,
और गीत की साँसें गीली,
हवा उड़ा ले जाती होगी, और वहीं छितराती होगी
यादों में डूबी-डूबी-सी, धरे हिनाई हाथ गाल पर
जहाँ बैठकर बाट देखती होगी मेरी नयन-तरैया!
सतरंगे बादल घिर आये और बही बैरिन पुरवैया!

कई महीने बीत गये हैं, कैसे दिल बहलाती होगी,
मैं आ जाऊँ नित्य इसलिए घी के दिये जलाती होगी,
दिन तो कट जाता ही होगा,
पर निशि का होता क्या होगा!
खुले झरोखों से छन-छनकर, आता होगा मधुर-मधुर स्वर,
सूनी सेज पिया डर लागे, तुम बिन पल-छिन चैन न आये,
एक बूँद के लिए तुम्हारी तड़प रही है सोनचिरैया!
सतरंगे बादल घिर आये, और बही बैरिन पुरवैया!

आठ

मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!
मैं माँग सितारों का टीका शशि की दुलहन से लाऊँगा!

मैं माँग तुम्हारी भरने को, ऊषा से सेंदुर ले लूँगा,
माथे की बिन्दी रचने को सन्ध्या से ईंगुर ले लूँगा,
सोने-चाँदी की बात नहीं, अनमोल जवाहर ले लूँगा,
मोती-माला पहिनाने को, सारा रत्नाकर ले लूँगा,

कर लो सिंगार, फिर तुम हँस दो!
छू लो सितार कस दो, रस दो!

मैं कंठ माँगकर कोयल का, स्वर के मधुवन से लाऊँगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

मैं तुम्हें स्वर्ग से ला दूँगा फिर इन्द्रधनुष जैसा कंगन,
जायेगी नरम कलाई बँध, है बड़ा सुहाना यह बन्धन,
नीलोफ़र जैसी आँखों में जब चमक उठेगी नयी किरण,
मृगबालाएँ शरमायेंगी, नभ में उड़ जायेंगे खंजन,

फिर मुझे छिपा लेना दिल में!
आँखों के काले लघु तिल में!

मैं माँग आँख का अंजन, फिर कजरारे घन से लाऊंगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

करके सिंगार, फिर एक बार, मुझसे कर लेना प्यार अमर,
फिर मेरे-तेरे अन्तर का होगा सुन्दर अभिसार अमर,
पर जीवन एक विकृति संगिनि! है मरण प्रकृति का सार अमर,
जब तक है साँस उतरती-चढ़ती तब तक यह संसार अमर,

इसलिये मोह की माया से,
मत डरो मौत की छाया से,

मैं एक बार यह साँस तुम्हारी, खींच कफ़न से लाऊँगा!
मैं तुम्हें रिझाने की ख़ातिर यह चाँद गगन से लाऊँगा!

नौ

हज़ारों बार चुपके से तुम्हारी याद में संगिनि!
हज़ारों विन्दु आँसू के छलक करके ढुलक कर बह गये ।

तुम्हें मैं याद आता हूँ, न यह मैं मान लूँ कैसे,
कि सच्चा प्यार मरता है न जीता, मान लूँ कैसे,
मधुप कब भूल पाता है, कली के नूपुरों की धुन,
कली कब चैन पाती है, मधुप के नव स्वरों को सुन,

दिवा के भाल की बिन्दी, निशा के पाँव की लाली,
रचा कर हँस पड़ा बरबस अरे! जब भोर का माली,
किसी ने किरण के पायल बजा कर खोल दी खिड़की
हमारी ही तरह फिर क्यों गगन की बाँह भी फड़की ?

चमन की आँख से उड़ कर सुबह ही कुछ तुहिन के कण
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गये!

दिलों के बीच की दूरी नहीं कुछ मानता हूँ मैं,
मिले अन्तर कि फिर अन्तर नहीं पहचानता हूँ मैं,
हज़ारों कल्प साक्षी हैं कि नभ से दूर है धरती,
और यह सत्य भी है, हाँ, बहुत मजबूर है धरती,

मगर उसकी अमर यादें गगन को भी रुला देतीं,
कि नभ की पीर का फोड़ा सहज में ही गला देतीं,
धरा का हास निखरा है, गगन के नीर से धुल कर,
हज़ारों बार नभ रोया, हमारी ही तरह घुल कर,

ज़मीं की गोद से उड़ कर, कई मासूम पथ-रज-कण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिपकर सँभलकर कह गये!

लगन की डोर से बँधकर न कोई छूट पाया है,
कि सच्ची प्रीति का बन्धन कहाँ कब टूट पाया है,
युगों से चातकी, स्वाती नखत के मेघ को लखती,
कभी बरसात के आँसू न अपने कंठ में रखती,

भरे हर साँस में जाने न कितने प्यास के मरुथल,
लगाये लौ तरसती है न बरसे आश के बादल,
कि नन्हीं बूँद पर ही ख्वाहिशें कुरबान होती हैं,
तुम्हारी ख्वाहिशें क्या यों नहीं अभिमान खोती हैं,

विरह की क़ब्र से उठकर, मिलन के कुछ गड़े मधुक्षण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गए!

अमर है प्राण से मिल कर, किसी के प्राण की छाया,
न मिटती प्राण की प्रतिमा, न मिटती प्रेम की काया,
कफ़न में मुँह छिपा कर लाश पहुँची रात मरघट पर,
हँसा मरघट कि किसकी प्यास रोई आज पनघट पर,

चिता की सेज पर सोकर, उठा जब काल मरघट पर,
कहानी प्यार की कहने, जुटे कंकाल मरघट पर,
दबाकर दाँत से उँगली, मज़ारों के गड़े पत्थर,
पड़े ख़ामोश क्यों मेरी तरह ही काँप कर थर-थर,

चिता के हाथ से गिर कर कई चिनगारियों के कण,
सँदेशा प्यार के अमरत्व का छिप कर सँभल कर कह गए।

दस

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

प्यार ज्यों ही हँसा, कामना मर गई,
जीत भी हार की सर्जना कर गई,
ओस की बूँद-सी, कल्पना झर गई,

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

स्वर नये जब सजे, खो गई गुंजना
हाँ, न पूरी हुई गीत की गुम्फना,
और बरबस तभी मैं उठा गुनगुना

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

मैं सुखी हूँ कि सारी लगन जल गई,
खुद छली भी गई, किन्तु मन छल गई,
दीप की उम्र-सी हर चुभन ढल गई,

बात कुछ रह गई,
रात कुछ रह गई,
ज़िन्दगी फूल की गन्ध-सी उड़ गई !

ग्यारह

यादों से घिरे-घिरे मन को समझाना है!
हमको नक्षत्रों की ड्योढ़ी तक जाना है!

तुलसी के चौरे पर जलती सँझवाती-सी,
संकल्पी जीवन की गोपनींय थाती-सी,
जाने किस संध्या की युवती कुंठायें हैं,
तिल-तिल कर जलती हैं स्नेहवती बाती-सी,
प्यार की उँगलियों से इनको उसकाना है!
आँधी के अधरों से इनको टकराना है!

अनदेखे सपनों के पर्वतीय देशों-सी,
जाने किस यक्षी के गूँगे संदेशों-सी
प्राणों के प्यासे आवेदन की लिपियाँ हैं,
रह-रहकर खलती हैं बिखरे आवेशों-सी,
जीवन के हर क्षण को भेंट में चढ़ाना है!
बूँद-बूँद दूध और पानी अलगाना है!

तन-मन के आकुंठित आकुल व्यवधानों-सी,
लाख-लाख साधों के सीधे अभियानों-सी,
जाने किस संधानी स्वर की भाषाएं हैं,
पग-पग पर उगती हैं गीतों के दानों-सी,
वर्ण-वर्ण मन के विश्वासों का बाना है!
तप-जप से इनके आकाश को डिगाना है!

बारह

पीछे छूट गए साथी सब, मैं ही रहा अकेला पथ पर,
और रही परछाईं मेरी!

जिस दिन मैंने क़दम बढ़ाया, हँसी प्यार की मंज़िल मेरी,
अभिशापों का दीप जलाकर, सजी हार की महफ़िल मेरी,
दूर कहीं मरघट से आई, परिचित-सी आवाज़ किसी की,
फिर पाँवों को चूम-चूम कर, उड़ी राख की धूमिल ढेरी,

थके-थके सब सपने क्वाँरे,
देख रहे थे नभ के तारे,
नियति-नटी की इस छलना पर, मैं ही हँसा अकेला पथ पर,
और हँसी परछाई मेरी ।

मुझे चाँद ने कसकर मारा, किरणों के उजले तीरों से,
लेने मोल चाँदनी आई, तारों के नीले हीरों से,
हारे नभ के सभी सितारे, खेल-खेलकर आख़िर मुझसे,
सन्ध्या हारी, ऊषा हारी, बँध न सका मैं ज़ंजीरों से,
मुझे बाँध कर हारी छाया,
प्राणों की फिर सारी माया,
रीझ गया मैं अपने ऊपर, फिर खुद बँधा अकेला पथ पर,
और बँधी परछाई मेरी ।

मुझे बाहर लुभाने आई, लसे-कसे फूलों के पायल,
मेरे गीतों के यौवन को करने आई स्वर से घायल,
काँटों के पाँवड़े बिछाकर, मधुवन ने फिर अगवानी की,
स्वागत किया खुशी से मैंने, प्राण नहीं हो पाये पागल,
फूल मुझे समझाने आये,
शूल मुझे बहकाने आये,
दामन काँटों का उधेड़ कर, मैं ही बढ़ा अकेला पथ पर,
और बढ़ी परछाई मेरी !

एक रात जब बजीं अचानक, साँसों की अनगिन मंजीरें,
सिकुड़ीं जीवन के माथे की पाप-पुण्य की सभी लकीरें,
उठीं आँधियाँ चिनगारी की, मानसरोवर सूख गया फिर,
और हुई बरसात आग की, झुलसीं यादों की तसवीरें,
बची न एक निशानी मेरी,
शेष रही नादानी मेरी,
उड़ा हंस फिर पंख मार कर, मैं भी उड़ा अकेला पथ पर,
और उड़ी परछाई मेरी!

तेरह

जल भरने की वेला बीती, पायल की झनकार न बोली!
सूने पनघट के आँगन में कितने कलश पड़े हैं ख़ाली,
प्रेम-सुधा के प्यासे देखो, कितने विवश खड़े ले प्याली,
खोया खोया-सा क्यों उर-पुर,
बजे न रुनझुन-रुनझुन नूपुर,
रूप-कुंज से प्राणों की क्यों अब तक मलय बयार न डोली!
नन्हें पात स्वप्न के पनपे, आख़िर सब क्षण-भंगुर निकले,
नयनों की धरती से जाने कब आँसू के अंकुर निकले,
दीवानों का भाव नोंचकर,
अरमानों का घाव पोंछकर,
भिगो गई अन्तस्तल छिप कर, पीड़ा की बौछार न बोली!

आज न जीवन-गगरी से, अब जीवन-गगरी टकरायेगी,
डर है यौवन की ज्वाला से मन की नगरी जल जायेगी,
चाह अधूरी रह जायेगी,
राह न पूरी हो पायेगी,
अब तक आश बँधी है उर में फिर भी अपनी हार न बोली !

सभी घड़े मिट्टी के फूटे, फूट गये पनघट के छाले,
सब राही प्यासे ही लौटे, टूट गये, जाने कब प्याले,
आज कुएँ के कण-कण रोये,
जीवन और मरण भी रोये,
फिर भी ज्योति-शिला न पसीजी, ईंटों की दीवार न बोली!

चौदह

नभ से ज्योति-परी लो! उतरी!
धरती ने आवाज़ लगाई,
बजी दीपकों की शहनाई,
गीतों की रानी मुसकाई,
छाया नये स्वरों की उभरी!

लेकर परिमल की मधुप्याली,
चली अनागन्धित शेफाली,
झूमा अन्धकार का माली,
खुल-खुल गई निशा की क़वरी!

चौंक पड़ा जगमग जग सारा,
छूटा किरणों का फ़व्वारा,
दीप-कुमारों ने शर मारा,
फूट गई आभा की गगरी!

तम की बाँह पकड़ कर बोली,
विदा करो, रजनी की डोली,
घबड़ाई तारों की टोली,
विकल हुई अम्बर की नगरी!

पन्द्रह

प्यार की रागिनी,
तार की स्वामिनी, एक पल ही बजी, किन्तु मन बज गया ।

सज गई वीण पर प्राण की कल्पना,
हँस पड़ी झूम कर प्रेम की वन्दना,
गा उठी स्वप्न के दीप की अर्चना,
ज्योति की कामिनी,
प्रीति की चाँदनी, एक पल ही सजी, किन्तु तन सज गया ।

मेघ का स्वर उड़ा, भू हँसी, नभ हँसा,
बज गई बाँसुरी, भाव का घर बसा,
नाचने लग गई गीत की लालसा,
व्योम की मालिनी,
बावरी दामिनी, एक पल ही लजी, किन्तु घन लज गया ।

खिलखिला कर हँसी, फूल की हर कली,
सज गई रूप के गाँव की हर गली,
मच गई पीर के देश में ख़लबली,
साँवली यामिनी,
चाँद की मानिनी, एक पल ही सजी, किन्तु वन सज गया ।

सोलह

ध्वंस की लाश को ढाँपने के लिए, आज मेरी जवानी कफ़न माँगती है, सृजन माँगती है ।

एक दिन फूल ने खिलखिला कर कहा, गन्ध की रागिनी खो न जाये कहीं,
एक दिन शूल ने बौखला कर कहा, बाग़ की रोशनी खो न जाये कहीं,
एक दिन धूल ने गिड़गिड़ा कर कहा, खो न जाये कहीं यह ज़मीनी हँसी,
एक दिन भूल ने तिलमिला कर कहा, रूप की चाँदनी खो न जाये कहीं,

फूल के देश में रो रहीं बुलबुलें,
हैं उजड़ने लगीं सरगमी महफ़िलें,
गीत की लय नयी बाँधने के लिए, आज कोयल निराला चमन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

एक दिन प्राण से खीझ कर यों कहा, रूठ कर एक चिनगी चिता से उड़ी,
'लाश का भार मुझसे न जाता सहा' बन गई राख की एक नन्हीं छड़ी,
चौंधिया-सी गयी मरघटों की नज़र, साँस का कारवाँ घाट से मुड़ गया,
क़ब्र के फूल भी खिलखिला कर हँसे, लाश भी बुदबुदायी ज़मीं में गड़ी,
प्राण के राज में छा गया क़हक़हा,
और मुरदा उठा मुसकरा कर कहा,
मौत की यह हवा बाँधने के लिए, सर्जना शान्ति का स्वर-गगन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

लपलपाती बढ़ी आ रही जीभ को, काल के नाग की विषमयी नागिनी,
जल न जाये कहीं एक फूत्कार से, गीत के ग्वाल की स्वरमयी ग्वालिनी,
बिन्दियाँ माथ की गिर न जायें कहीं, मिट न जायें सिंदूरी लकीरें कहीं,
कौन रागी चला आ रहा छेड़ता, ध्वंस की बीन पर आतिशी रागिनी,
ज़िन्दगी की लहर सूख जाये नहीं,
गूँज कर खो गई ध्वनि हवा में कहीं,
नाश के नाग को नाथने के लिए, कल्पना कृष्ण की-सी लगन माँगती है,
सृजन माँगती है ।

मैं नहीं चाहता हूँ अमन की कपोती, कहीं नाश के जाल में जा फँसे,
मैं नहीं चाहता हूँ कबाबी हवस, आग में भून कर पंख उसके हँसे,
चाहता हूँ कि मैं गोश्त के लालची क़ातिलों की ज़बाँ काट लूँ साथियो,
किन्तु मैं हूँ विवश चाहता हूँ नहीं, तेग़ फिर से किसी के गले में धँसे,
आ रही दूर से एक आवाज़ भी,
खुल रहा है कहीं सत्य का राज़ भी,
प्यार की साँस को साधने के लिए, साधना हर तरफ़ अब अमन माँगती है
सृजन माँगती है ।

सत्रह

अश्रु की धार से,
पीर से प्यार से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

बह गई फूल-सी कामना भूल से,
मिल न पाई लहर स्वप्न की, कूल से,
ढँक गई साधना, शाप की धूल से,
प्रीति के दान से,
मीत के मान से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

हो गई, राख-सी प्रीति की उर्मिला,
हेम-काया जली, मन जला, क्या मिला,
कूजती ही रही पीर की कोकिला,
प्राण की जीत से,
चाँद के गीत से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ!

चाह कर भी बहुत, कुछ नहीं चाहिए,
सुख नहीं चाहिए, दुख नहीं चाहिए,
कुछ न पूछो, मुझे कुछ नहीं चाहिए,
रूप की आग से,
रंग से राग से, तन न पावन हुआ, मन न पावन हुआ ।

अठारह

प्रणय के आकाश पर फैली धुआँ-सी
आज उनई याद की कारी बदरिया!

लग रहा है, तुम अकेली देहरी पर,
एक उँगली रखे अधरों पर खड़ी हो,
प्यार की हर पर्त्त, साँसें खोलती हैं,
तुम कि जैसे गीतगन्धी पंखुड़ी हो,

उड़ाकर लाई अभी पछुवा हवाएँ,
अश्रु-भीगी शाम की गहरी उदासी,
आज डूबी प्राण की प्यारी नगरिया!

मधुर प्रत्यागत क्षणों का मोल क्या है ?
इन प्रतीक्षा के क्षणों में आँक तो लो !
चलो! पल भर चिर प्रतीक्षित खिड़कियों से,
उमड़ते आतुर घनों को झाँक तो लो!

मोरपंखी कल्पना की स्वर-शिखायें,
नाचती छाया-नटी नीलांजना-सी,
देखनी है बाट ही सारी उमरिया!

पनघटों से मरघटों तक उड़ा जीवन,
चंचु में आई नहीं विधि-लिपि सनातन,
दो मनों की वे अनाविल यात्राएँ,
छू न पाया जिन्हें कोई भी समापन,

सब दिशायें निर्जला आकांक्षायें,
कोसती हैं, हाय रे! पावस प्रवासी,
भर न पायी रूप की न्यारी गगरिया!

उन्नीस

लेकर सन्देश चली,
जीवन के देश चली, भोर की कबूतरी!
चोंच मार, उड़ी, गिरी,
आभा से भरी-भरी,
ऊषा की तश्तरी!

भावों के स्रोत खुले,
गीतों के पंख धुले,
लय पर लय टूट पड़ी,
नभ से फिर फूट पड़ी,
किरणों की निर्झरी!

आशा के फूल खिले,
बिछुड़े सब हिले-मिले,
युग-युग की पीर कढ़ी,
भाग्य की लकीर बढ़ी,
फैल गई बात री!

घोड़ों की रास धरे,
ओठों में हास भरे,
सपनों का राज लिए,
सोने का ताज लिए,
आये हैं कन्त री!

बीस

तुम दूर हो तो क्या हुआ,
इस झील के कुसुमित कपोलों की क़सम तुम पास हो!

शरद की मधु कैरवी ने एक क्षण खुल कर निहारा,
झील के सपने रुपहले,
सुप्त थे कुछ देर पहले,
देखता हूँ, जागते हैं, प्यार का पाकर इशारा,

हो गया विश्वास मुझको, याद मेरी आ गई है,
आँख भर आई तुम्हारी,
याद मँडराई तुम्हारी
और मेरी ज़िन्दगी पर गीत बन कर छा गई है!

तुम दूर हो तो क्या हुआ,
इस झील के कुसुमित कपोलों की क़सम तुम पास हो!

गाँठ कुछ ऐसी नहीं है, जो कि तुम सुलझा न लोगी,
मानता हूँ, ध्यान भी है,
और कुछ व्यवधान भी है,
बात ऐसी भी नहीं है, स्वयम् को समझा न लोगी,
बहुत सुन्दर लग रही हो, प्यार की भीगी सतह पर,
रूप निखरा है तुम्हारा,
हास बिखरा है तुम्हारा,
देखता हूँ तुम खड़ी हो, झील की नीली सतह पर,

तुम दूर हो तो क्या हुआ,
इस झील के कुसुमित कपोलों की क़सम तुम पास हो!

झील से आकाश तक की मौन दूरी कम नहीं है,
मौनता के दो किनारे,
दूर रह कर भी न हारे,
कौन कहता है कि दोनों के हृदय में ग़म नहीं है,
चाँदनी हर रोज़ आती है, कुमुद के गाँव उड़ कर,
पास तक जाकर तुम्हारे,
लौट आई पास मेरे,
कल्पना की छाँव मुड़ कर, प्यार का विश्वास छू कर,

तुम दूर हो तो क्या हुआ
इस झील के कुसुमित कपोलों की क़सम तुम पास हो!

इक्कीस

युग के नये मसीहा दौड़ो, चीख़ रहा है गीत अमन का,
स्वर का सीना धड़क रहा है, आग लगी है फुलवारी में!

वह खुशबू का नन्हा सपना बेमौत अभी मर जायेगा,
है ढँके हुए अब तक जिसको अनब्याही कलियों का आँचल,
कोयल की अर्थी निकलेगी सरगम के घायल कंधों पर,
रुनझुन-रुनझुन फिर न बजेंगे चिर परिचित गलियों में पायल,
कल नयी सुबह भी माथे पर लोहू का तिलक लगा लेगी,
धुल जायेगा सिन्दूर उषा का और साँझ का नीला काजल,
जादू आज देखना है फिर तेरी नयी मसीहाई का,
दौड़ो! ज़रा आँख तो खोलो!
मौत कर रही है मरघट के आँगन में अभिषेक कफ़न का,

चीख़ रहा है गीत अमन का,
स्वर का सीना धड़क रहा है,
आग लगी है फुलवारी में ।

उठा विषैला धुआँ कहीं पर भटक न जाये साँस फूल की
दम घुटता है हरे बाग़ का, बेवा हो जायेगी बुलबुल,
खो जायेगी शादाब हँसी, नदियों के मौन किनारों की,
लगा रहा है, ध्वंस धरा के गालों पर फ़ौलादी चंगुल,
सोच रही है लेटे-लेटे नीले पर्वत की शहज़ादी,
क्या नहीं हवा में तैरेगा ख़ुशरंग काकरेज़ी काकुल,
इस्पाती बाँहों में जकड़ी मानवता का उपकार करो!
नये मंत्र से साधो जीवन।
देख न ले तारों की मजलिस, काला मुँह आनील गगन का,

चीख़ रहा है गीत अमन का,
स्वर का सीना धड़क रहा है,
आग लगी है फुलवारी में!

लाखों मरियम के आँचल का जब दूध लहू बन जायेगा,
मरियम के बेटे की समाधि पर गुलदस्ते तब रोयेंगे,
कल नई फ़सल का राजमहल चिनगारी से भर जायेगा,
सोच रहा हूँ, बीज अमन का नये फ़रिश्ते कब बोयेंगे ?

राज करेगा लोहे का आदमी सुना है कल धरती पर,
अपनों से अपनों के शायद सारे रिश्ते कट जायेंगे,
इन आग बेचने वालों का हौसला ज़रा देखो रहबर!
कब से गला दबोच रहे हैं,
खून फेंकने ही वाला है, नन्हा बच्चा नये सृजन का,

चीख़ रहा है, गीत अमन का
स्वर का सीना धड़क रहा है,
आग लगी है फुलवारी में!

चूड़ियाँ नहीं कल खनकेंगी, सिन्दूर खून बन गया अगर,
अपने सुहाग की थाती को, शायद खो दे कल हर कंगन,
सूरज की किरणें लाशों की बदबू पी लें नामुमकिन है,
कुछ तो बोलो नये मसीहा, कहाँ-कहाँ छिड़कोगे चन्दन?
जल्दी करो, नयी आवाज़ें, डूब न जायें गीतकार की,
सँजो नहीं पायेगा काग़ज़, कल हर नई क़लम का चिन्तन,
हर शिल्पकार की छेनी कल पत्थर के पाँव न चूमेगी,
युग की पीर बढ़ी जाती है,
अभी कलेजा फट जायेगा, नये स्वरों की नयी लगन का,

चीख़ रहा है गीत अमन का,
स्वर का सीना धड़क रहा है,
आग लगी है फुलवारी में!

बाईस

जोड़ने चली प्रीति की डोर,
छिपाये आँचल में नव भोर,

लिए है नई-नई सौगात
शिशिर की भीगी-भीगी रात ।

धरा ने ली जब ठंडी साँस,
बढ़ी तब और सृजन की प्यास
तिमिर का पुतला हुआ उदास,
प्रकृति ने ढीली कर दी रास,
विकृति का उड़ने लगा हवास,

हुई फिर कम, तम की बरसात,
शिशिर की भीगी-भीगी रात ।

दमकती हुई रुपहली रेत,
चमकते हुये शबनमी खेत,
गा रहे शान्ति-गीत समवेत,

अमन का फैला स्निग्ध प्रकाश,
सड़ रही अन्धकार की लाश,

ध्वंस की हुई मात पर मात,
शिशिर की भीगी-भीगी रात ।

नहायी नई बहू-सी घास,
कुहासे के कानों के पास
कहा कुछ, बिखरा मधुमय हास,
गई है रस-सागर में डूब
रसीली नीली-नीली दूब,

सुबह की करते-करते बात,
शिशिर की भीगी-भीगी रात ।

चमन ने छलकाया कुछ प्यार,
उड़ी फिर खुशबू पंख पसार,
गूँथकर ओस-कणों का हार,

गूँजने लगा मुक्ति का गान,
निशा ने दिया प्रात का दान,

सजी लो! फूलों की बारात,
शिशिर की भीगी-भीगी रात ।

तेईस

ज़िन्दगी चमकता-सा एक आबगीना है,
धरती के माथे पर रात का पसीना है,
ज़िन्दगी बहारों के फूल की कहानी है,
प्यार की अँगूठी है, गीत का नगीना है ।

प्यार एक मदिरा है, प्यार एक मस्ती है,
प्यार एक मंज़िल है, प्यार एक बस्ती है,
प्यार ही डुबाता है, प्यार ही बचाता है,
प्यार एक सागर है, प्यार एक किश्ती है ।

प्राण डूब जायेगा, रूप-सिन्धु गहरा है,
रात भी अँधेरी है, चाँद का न पहरा है,
प्यार की कहानी को कौन आज सुनता है,
धरती तो गूँगी है, आसमान बहरा है ।

साँस एक थाती है, मौत का तक़ाज़ा है,
मौत के बगीचे का फूल एक ताज़ा है,
मौत एक बाज़ीगर, ज़िन्दगी तमाशा है,
दीप की कहानी है, शलभ का जनाज़ा है ।

चौबीस

सोनापंखी स्वर मँडराये, मधुर ज्योति के सुमन खिले!

जागे सपने नन्हे-नन्हे,
कुछ तो चीन्हे, कुछ अनचीन्हे,

घर-आँगन, उपवन अँगड़ाए, अलस उनींदे नयन खुले,
मधुर ज्योति के सुमन खिले!

अन्तर्मन सुधियाँ बुनता है,
अग-जग जीवन सिर धुनता है,

पनघट पर घट-घट टकराये, भाग गीत के हिरन चले,
मधुर ज्योति के सुमन खिले!

खँडहर-खँडहर, शिविर-शिवाला,
इधर-उधर हर ओर उजाला,

सब को किरण-किरण गुहराये, प्रेम-प्रीति के गगन तले,
मधुर ज्योति के सुमन खिले!

पचीस

सूनापन गुहराये, अपनों की बात करो!
सबके सब पथराये, सपनों की बात करो!

पोर-पोर टूटे हैं, किरण-किरण ठहरी है,
ऐसी क्या उलझन है, गुमसुम दोपहरी है,
धूप-धुली साधों के अधरों की हर रेखा,
जाने किस मन-मृग की वासना सुनहरी है,
घर-बाहर अँधराये, किरनों की बात करो ।

बूँदों का अनबाँचा हर अक्षर आकुल है,
धरती के वीतश्रद्ध अर्थों ने छुआ नहीं,
परती की गदराई सासों को कौन पिये,
इतना कुछ हो जाना जैसे कुछ हुआ नहीं,
सागर भी झुँझलाए, झरनों की बात करो!

धुँधलाई यादों-सा कुहरे का सम्मोहन,
गीतों की नस-नस की ठिठुरन को क्या जाने?
ऊर्ध्वमुखी कुंठा-सा कलियों का जनम हुआ,
पात-पात टहनी की सिहरन को क्या जाने?
जीवन कुछ भा जाए, सुमनों की बात करो!

छब्बीस

मौत को चूम कर मैं चला आ रहा हूँ,
मुझे ज़िन्दगी से बहुत प्यार है ।

ज़िन्दगी गीत के गाँव से जब चली, राह में डगमगाये स्वरों के चरण,
मौत की घाटियों से चलीं आँधियाँ, प्यार के दीप की झिलमिलाई किरण,
हर कली फूल की गोद में छिप गई, प्यार ने आँचलों का सहारा लिया,
एक तसवीर अपनी बनाकर तुरत, बढ़ गया और मैं मुसकराया मरण,
ज़िन्दगी रोज़ शृंगार करती रही,
मौत के सामने ही सँवरती रही,
वह मुझे भा गई, प्यार कुछ पा गई, ज़िन्दगी साँस का एक शृंगार है,
इसलिये प्यार के गीत मैं गा रहा हूँ,
मुझे ज़िन्दगी से बहुत प्यार है !

मानता हूँ कि हर फूल मुरझा गया, डाल विधवा हुई, बाग़ को ग़म नहीं,
लो! कली खिल गई, ज़िन्दगी मिल गई, मौत से ज़िन्दगी भी तनिक कम नहीं,
रूप की बाँह में, रंग की छाँह में, ज़िन्दगी बँध गई, स्वप्न खुलने लगे,
दीप जलता रहा, बुझ गया क्या हुआ, रोशनी ने मनाया न मातम कहीं,
ज़िन्दगी प्यार से प्राण को सींचती,
मौत तो खीझ कर साँस ही खींचती,
मौत बिगड़ी हुई एक आवाज़ है, ज़िन्दगी बीन की एक झंकार है,
इसलिये प्यार के गीत मैं गा रहा हूँ,
मुझे ज़िन्दगी से बहुत प्यार है !

ज़िन्दगी-मौत का खेल जारी रहा, हारता ही रहा आँचलों से कफ़न,
क़ब्र से वह चिता तक भटकता रहा, झूमती ही रही साँस की अंजुमन,
बिक गये प्यार के फूल यों ही कहीं, नेह की बुलबुलें छटपटाती रहीं,
कुछ नये आ गये, कुछ पुराने गये, मुसकराता रहा ज़िन्दगी का चमन,
मौत हर रोज़, हर ठाँव बिकती रही,
ज़िन्दगी आँगनों में किलकती रही,
मौत तो एक उठती हुई हाट है, ज़िन्दगी प्यार का एक त्यौहार है,
इसलिये प्यार के गीत मैं गा रहा हूँ,
मुझे ज़िन्दगी से बहुत प्यार है!

साँस मेरी उड़ी, उम्र कुछ घट गई, जब मुझे मरघटों का निमंत्रण मिला,
प्यास बनकर वही लौट आई मगर, जब मुझे पनघटों का निमंत्रण मिला,
ज़िन्दगी प्यार की सेज तक आ गई, मौत गुमसुम किनारे खड़ी रह गई,
लाज से गड़ गई, उम्र कुछ बढ़ गई, जब मुझे घूँघटों का निमंत्रण मिला,
मौत की बाँसुरी गूँजती ही रही,
ज़िन्दगी प्यार को पूजती ही रही,
धूल के ढेर की वन्दना मौत है, ज़िन्दगी प्यार की एक मनुहार है,
इसलिये प्यार के गीत मैं गा रहा हूँ,
मुझे ज़िन्दगी से बहुत प्यार है!

सत्ताईस

दुपहर का सन्नाटा दूर धूप हाँफती, बरगद की छाँह-तले हिरणी सुस्ताए!
झील के किनारे पर खड़ा-खड़ा एक ठूँठ,
पानी में उभरे प्रतिविम्ब को सहेजता,
लगता है कुंठा की युगवेधी कील-सा,
जीवन की सारी गहराई को वेधता,
झुँझला कर परछाई किरणों को हाँकती, बाँबी में साँपिनिया जीभ लपलपाए!
धुँधले पगचिन्हों को सर्पीली पगडंडी,
ऊँघ रही है कब से कसे-कसे बाँहों में,
किसी नये राही के आने की बात नहीं,
कितनी मजबूरी है प्यार की निगाहों में,
कितने स्तूपीकृत सपनों को लाँघती, मुड़-मुड़ कर बार-बार बस्ती तक जाए!
अड़हुल के पंक्तिबद्ध फूलों की रंगीनी,
सुधियों का मर्म-विन्दु चुपके से परस गई,
शुभवन्ती निष्ठा की एड़ियाँ महावरी,
रह-रहकर ठिठक गईं, आँख-आँख बरस गई,
अनचीन्हे अर्थों को आँचल में बाँधती, धूप-रँगी आवर्ती वेदना बिछाए!

अट्ठाईस

मेरे अन्तर का प्यार
उषा की आँखों से छलका!

मधु सपनों की अनगिन रातें,
बनीं किरण की स्वर्णिम पाँतें,

मेरे आँसू का ज्वार
ओस की बूँदें बन ढुलका!

कली बन गई मौन बेकली,
स्वर की छाया बनी काकली,

मेरे जीवन का सार
मरन्द बना नीलोत्पल का!

नव यौवन की मूक दीनता,
बनी गगन की घनी नीलता,

आशा-मोती का हार
बना, टूटा जैसे उल्का।

मैं कुछ नहीं, किन्तु मैं ही हूँ,
धरती से नभ तक मैं ही हूँ,

मेरे गीतों की हार
बनी मेरे मन की अलका!

उनतीस

जहाँ मन रमा और भरमा नहीं है,
जहाँ एक भी गीत जनमा नहीं है,
जहाँ एक भी रात दुख की न बीती, वहाँ ज़िन्दगी का बसेरा नहीं है!

जहाँ रात की आबनूसी पलक पर, सजी ज़िन्दगी, बन गई साध शबनम,
वहाँ एक क्षण का न तुम मोल आँको, सजा एक क्षण है हज़ारों जनम-सम,
कई मुग्ध क्षण इस तरह जब सिमट कर किसी के नयन में बनें प्यार के घन,

वहाँ प्यार के एक पल को न तोलो, जहाँ प्राण से प्राण का मौन संगम,
जहाँ प्यार का एक मन्दिर नहीं है,
जहाँ प्यार का देवता थिर नहीं है,
जहाँ प्यार की एक नन्हीं किरण का
गुज़ारा नहीं एक पल, एक क्षण का,
जहाँ प्राण के मुक्त आकाश में, याद का दूधफेनी उजेरा नहीं है,
वहाँ ज़िन्दगी का बसेरा नहीं है!

जहाँ मर्म को फूल से वेधने पर, चिरन्तन कला फूट कर बह गई है,
जहाँ प्यार के होठ से ज़िन्दगी की अधूरी कथा छूट कर रह गई है,
वहाँ की सरस एक भीगी घड़ी ही युगों की उभरती उमर से बड़ी है,
जहाँ प्यार के हाथ से भूल कर प्यार की शृंखला टूट कर रह गई है,
जहाँ मोतियों का भिखारी नहीं है,
जहाँ ज़िन्दगी का पुजारी नहीं है,
जहाँ प्यार से पीर सींची न जाती,
जहाँ एक तसवीर खींची न जाती,
जहाँ रूप की चन्दनी चेतना का सुघर स्वप्नधन्धी चितेरा नहीं है,
वहाँ ज़िन्दगी का बसेरा नहीं है!

जहाँ-साँस का हर सँदेशा अमर है, सभी देखते प्यार की पुतलियों से,
जहाँ ज़िन्दगी गीत बन कर बरसती, प्रणय की घिरी रस भरी बद्‌लियों से,
वहाँ प्यास का एक पल ही अमर है, विरह ही वहाँ पर मिलन का सहारा,
जहाँ पर उषा के अनारी अधर को, क्षितिज छू रहा है किरण-उँगलियों से,
जहाँ एक भी गीत बन्दी नहीं है,
जहाँ प्यार की यह बुलन्दी नहीं है,
जहाँ ज़िन्दगी का विजय-ध्वज नहीं है,
जहाँ प्यार का एक सूरज नहीं है,
जहाँ एक कस्तूरिया कल्पना का, मधुर स्नेहवर्षी सवेरा नहीं है,
वहाँ ज़िन्दगी का बसेरा नहीं है ।

तीस

मौन प्रतीची के पनघट पर मिलने किससे चोरी-चोरी,
रवि का कलश कमर पर रख कर,
चली साँझ की श्यामा गोरी!

कानों में तारों के झुमके हिले, गीत मँडराया मन में,
पैरों में पाजेब प्यार की बोली, स्वर उड़ आया वन में,
ज्योति-कुसुम की काया फूली,
सन्ध्या आज स्वयम् को भूली,
हल्का नशा रूप का छाया, सजी गगन की खोरी-खोरी,
रवि का कलश कमर पर रख कर
चली साँझ की श्यामा गोरी!

आई याद नीड़ की ज्योंही फड़के तुरत खगी के डैने,
अपने छौने की ममता ले दौड़ी, सजे मृगी के सपने,
बजी तिमिर की तुरही ज्योंही,
घर की यादें जागीं त्योंही,
खींच ले गई सब को, सब के प्रेम और जीवन की डोरी,
चली साँझ की श्यामा गोरी!

उड़े राग के राजहंस फिर, उड़ी प्रेम की राजहंसिनी,
ज्योंही तट पर पहुँची पग की लसी-कसी बज गई पैजनी,
चकवी बोली कुछ घबड़ा कर,
रूप-कुमारी ने मुसका कर,
रस के मानसरोवर में झुक तनिक प्रीति की गागर बोरी,
रवि का कलश कमर पर रख कर,
चली साँझ की श्यामा गोरी!

इकतीस

अनगिन दीप जल गये होंगे, अनगिन माँग सँवरती होंगी,
एक दीप के बिना तुम्हारा
आँगन सूना लगता होगा!

बरसों का बैरी सूनापन, तुमको बहुत अखरता होगा,
नयनों के नीलाभ क्षितिज पर भीगा प्यार उभरता होगा,

और रोशनी की झीलों में तिरती होंगी स्वर-हंसिनियाँ,
दूर कहीं मोतिया अधर पर कोई गीत निखरता होगा,
दूरी आज न भाती होगी,
मज़बूरी मँडराती होगी,
विरही प्राणों की आकुलता, सुधि के पंख कतरती होगी,
एक काज के बिना तुम्हारा कारन सूना लगता होगा!
एक दीप के बिना तुम्हारा
आँगन सूना लगता होगा!

दीप-शिखा के आस-पास ही शलभ कहीं मँडराता होगा,
कुछ सुधियाँ टकराई होंगी, और शीश चकराता होगा,
सन्ध्या के रँग-राते सपने तम की बाट जोहते होंगे,
पनघट पर कोई बंशीधर राधा को दुलराता होगा,
जाने क्या-क्या सोचा होगा,
हर पल आँसू पोंछा होगा,
और कामना की परछाईं बारम्बार सिहरती होगी,
एक झलक के बिना तुम्हारा आनन सूना लगता होगा!
एक दीप के बिना तुम्हारा
आँगन सूना लगता होगा!

अँधियारे की बाँहों में रजनी का यौवन निखरा होगा,
निदियारे फूलों की आँखों में नवजीवन उतरा होगा,
रतनारे, कजरारे तेरे नयन न जाने कैसे होंगे,
शायद धुले-धुले से होंगे, नीला आँजन बिखरा होगा,
चमकी होंगी कितनी गलियाँ,
चटकी होंगी कितनी कलियाँ,
हरसिंगार की गन्ध तुम्हारे चारों ओर बिखरती होगी,
एक फूल के बिना तुम्हारा कानन सूना लगता होगा।
एक दीप के बिना तुम्हारा
आँगन सूना लगता होगा!

बत्तीस

जीवन का राग-रथी पंथी घबराया है!
कैसा अंधेर, कहीं धूप कहीं छाया है!

सौरभ के सपनों में खोयी है सोनजुही,
कली-कली आपस में करती हैं मुँहामुँही,
उड़-उड़ कर आती है, फुलचुही कठोरमना,
लगता है, उपवन की साँस-साँस दुही-दुही,
पँखुरी ने धीरे से घूँघट सरकाया है!
हर बूढ़ी टहनी का माथा चकराया है!

प्यार-पगा हर अँखुआ, रूपवती हर फुनगी,
धरती ने छितरा दी, जीवन की बानगी,
लेकिन हर पौधे की प्रश्नवती आँखों में,
लाखों क्षण सुलगे हैं, प्यासी है हर चिनगी,
किरणों ने सोने का पानी ढरकाया है!
पनघट के कण-कण से मरघट टकराया है!

साधों की हर मुद्रा कितनी संदीपक है,
एक ओर शलभ जला, एक ओर दीपक है,
कैसा अस्तित्व और कैसी मर्यादा है?
आँखों में आँसू हैं, अधरों पर गीतक है,
कितनी ही स्मृतियों ने मधुरस बरसाया है!
कितनी मधुघड़ियों ने मन को तरसाया है!

तैंतीस

विगत का बूढ़ा विहंगम ले रहा अवकाश,
और आगत नापने लो! जा रहा आकाश,
उड़े अन्तस् के तपस्वी नीड़ से कुछ नए क्षण,
कट रहा मन का धुमहला घना नीला पाश!

आज परसा गीत का जिसने सुनहला थाल,
कल उसी की याद में कट गया पूरा साल,
चाहता हूँ, चूम लूँ, मैं मधुर प्रत्याहूत,
भोर का तिलकित अचुम्बित नागरंगी भाल।

क्षितिज की नीली प्रत्यंचा से किरण का बान छूटा,
धरा के हरिताभ आँगन में सृजन का गान फूटा,
लहलहाते खेत जैसे खुले चित्राधार अनगिन,
गीत का प्रतिबिम्ब उभरा, कल्पना का ध्यान टूटा!

पंथहारा रूप केवल, समय का मेहमान है,
याद का हर क्षण किसी के प्यार का प्रतिमान है,
प्यार का जो क्षण कटा, कुछ धूप में, कुछ ओस में,
साँस के पूरे सफ़र का कुल यही सामान है!

चौंतीस

पंखों में शक्ति नयी क्षण-पंछी भरता है,
उड़ी कहीं गहरे अँधियारे की अबाबील ।

फूल की पँखुरियों ने, सौरभ की घाटी में,
प्राण का पराग-रंग धरती को सौंप दिया,
रश्मिध्वजी ऊषा ने पूरब के आँगन में,
भोर का सुहाग-चिन्ह धरती को सौंप दिया,
साधों का सतरंगा चित्र ले उभरता है,
दूबों की मुँदरी में शबनम का इन्द्रनील ।

गमकीले गीतों की धूपायित छायाएँ,
चुपके से सपनों के डेरों में पैठ गईं,
सोनमुखी किरणों की लाखों चिरैयाँ उड़ीं,
जीवन की सूनी मुँडेरों पर बैठ गईं,
धरती की आँखों में आसमान तिरता है,
लो! पसर गई जाने कब रोशनी की झील!

रूप के कगारों से प्यार के कँगूरों तक,
शिल्पमुखी अन्तर का इन्द्रजाल फैला है,
पीड़ा की गाँठ से, प्रतीक्षा के छोरों तक,
सुधियों का स्नेह-रँगा अन्तराल फैला है,
जीवन का अर्थ-जाल क्षुब्ध क्षण कुतरता है,
खिला, खुला लाजमुखी आभा का शुभ्रशील!

चौंतीस

पंखों में शक्ति नयी क्षण-पंछी भरता है,
उड़ी कहीं गहरे अँधियारे की अबाबील ।

फूल की पँखुरियों ने, सौरभ की घाटी में,
प्राण का पराग-रंग धरती को सौंप दिया,
रश्मिध्वजी ऊषा ने पूरब के आँगन में,
भोर का सुहाग-चिन्ह धरती को सौंप दिया,
साधों का सतरंगा चित्र ले उभरता है,
दूबों की मुँदरी में शबनम का इन्द्रनील ।

गमकीले गीतों की धूपायित छायाएँ,
चुपके से सपनों के डेरों में पैठ गईं,
सोनमुखी किरणों की लाखों चिरैयाँ उड़ीं,
जीवन की सूनी मुँडेरों पर बैठ गईं,
धरती की आँखों में आसमान तिरता है,
लो! पसर गई जाने कब रोशनी की झील!

रूप के कगारों से प्यार के कँगूरों तक,
शिल्पमुखी अन्तर का इन्द्रजाल फैला है,
पीड़ा की गाँठ से, प्रतीक्षा के छोरों तक,
सुधियों का स्नेह-रँगा अन्तराल फैला है,
जीवन का अर्थ-जाल क्षुब्ध क्षण कुतरता है,
खिला, खुला लाजमुखी आभा का शुभ्रशील!

पैंतीस

कौन हो, तुम जो कि मेरे गीत के सूने सरोवर में कहीं से
आ गई हो, भूल से उड़ कर, अचानक प्रीति की कलहंसिनी-सी।

गन्ध पी लहरे अचानक, जब तुम्हारे नील कुन्तल,
प्यार के नीले क्षितिज पर, गीत का ढरका कमंडल,
रूप की साकार प्रतिमा-सी, किए श्रृंगार सोलह,
चुरा लाई हो कहाँ से, किरण के केयूर-कुंडल,
भाल की बिन्दी दमकती,
या कि बिजली ही चमकती,
कौन हो, तुम जो कि मेरे प्राण के नीलाभ अम्बर में युगों से
चमकती हो ज्योति बनकर तुम अचानक प्रीति की सौदामिनी-सी।

दूर मधुवन में हँसी जब एक अवगुंठित कली,
सज गई तब क्यों न जाने, प्यार से वंचित गली,
यह तुम्हारा हास था या कली की मुस्कान ही थी,
पी गई, जी भर अचानक साध मेरी हुई पगली,
पंथ भूली, बहुत भटकी,
खोज में वह अमृत-घट की,
कौन हो, तुम जो कि मेरी साध की अन्तिम धरोहर ले कहीं से,
आ गई हो, साँस बनकर तुम अचानक प्रीति की संजीवनी-सी।

पत्थरों के नयन भीगे, लिख गये मधुमय कहानी,
और जीवन की सतह पर, रंग उभरा आसमानी,
देख ली, तसवीर अपनी और तुमको छू न पाया,
यह जवानी थी तुम्हारी या कि सरिता की रवानी,
कल्पना के कूल छूकर,
भागती हो गुदगुदा कर,
कौन हो, तुम जो कि मेरी कामना के विजन प्रान्तर में कहीं से
आ गई हो, भूल से बहकर अचानक प्रीति की मंदाकिनी-सी।

छत्तीस

आज सहसा याद तेरी कल्पना को रँग रही है,
और लगता है कि जैसे मैं तुम्हारे पास ही हूँ!

भोर की प्याजी सतह पर एक छाया उभरती-सी,
फूल किरणों के खिलाती, क्षितिज-वन की मालती-सी,
बन्द कलियाँ खिलखिलाईं, जब पवन ने गुदगुदाया,

उड़ा सौरभ तड़फड़ा कर और नभ कुछ बुदबुदाया,
रूप का इतना मधुर प्रारम्भ मुझको भा गया है,
फिर अचानक ध्यान तेरा मीत बनकर आ गया है,
स्वप्न की बदली नसल-सी
ज्योति की पहली फ़सल-सी,
इन्द्रधनुषी मुसकराहट अमृत पीकर उग रही है,
और लगता है कि जैसे मैं तुम्हारे पास ही हूँ ।

रोशनी का शील खण्डित हो रहा है, रो रही है,
वृद्ध सूरज की कमर भी धनुष जैसी हो रही है,
और मेरे मर्म ने मजबूरियों का द्वार मापा,
पंख जैसे लग गए हों, मैं उड़ा विस्तार काँपा,
खुली खिड़की सामने बैठे मुँडेरों पर कबूतर,
चंचुओं का प्रश्न है बस मूक मधु उत्तर-प्रत्युत्तर,
हरी गर्दन साँवली है,
देह सारी मख़मली है,
एक अनब्याही कपोती, गिरे दाने चुग रही है,
और लगता है कि जैसे मैं तुम्हारे पास ही हूँ ।

तिमिर का स्वागत नशीली साँझ करने जा रही है,
कमलिनी की मुँदीं पलकें, पंखुड़ी सकुचा रही है,
और जल-भुनकर दिवा तो राख जैसी हो गई है,
दिग्वधू के नील अधरों पर उदासी बो गई है,
किन्तु शशि ने प्यार के भटके क्षणों की लाज रख ली,
बाँधने को गीत मेरे चाँदनी की बाँह फैली,
याद आई रात पहली,
प्राण की सौगात पहली,
आज की यह रात पूनम की, वधू-सी लग रही है,
और लगता है कि जैसे मैं तुम्हारे पास ही हूँ ।

सैंतीस

इस तरह न तुम श्रृंगार करो, मरघट की रानी!
संभव है, कल नरम उँगलियों से हथेलियों पर दुलहन की,
मेंहदी नहीं रचायी जाये!
इतनी भी क्या जल्दी है, फिर कर लेना पूरी तैयारी,
अभी उमर के गाँव गयी है साँसों की वह राजकुमारी,
जिसकी नग्न कलाई में दूबों के कंगन अभी बँधे हैं,
जिसने अपनी क्वाँरी पलक पिया के आगे नहीं उघारी,
तुम को अपनी सूरत प्यारी,
तुमने किसकी माँग सँवारी,
नहीं रहेगी शायद कल बन्दनवारों की निगरानी,
संभव है, कल मंगल-पाती पर होने वाली दुलहन की,
हल्दी नहीं लगायी जाये,

अभी अँधेरे से आई है, ख़ुशबू उड़ कर उजियारी में,
कलियों ने घूँघट खोला है, किरणों की पहरेदारी में,
अभी गमकने दो साँसों को, मत फूलों का अमन ख़रीदो,
बजने दो क्षण भर तो पायल, अरमानों की फुलवारी में,
सजने दो कोयल की डोली,
सुनने दो बुलबुल की बोली,
ललचायी नज़रों से तुम मत देखो प्राणों की दीवानी,
संभव है, कल दुलहन के घर घड़ी न आये पिया-मिलन की,
शादी नहीं मनाई जाये!

देख रही है सूखे अधरों की मजबूरी सहमी-सहमी,
खींच रहा है कौन बेरहम, धरती की चूनरी शबनमी,
माँग धुलीं अनगिन बेमौसम, सूनी-सूनी लाखों सेजें,
तनिक कफ़न का घूँघट खोलो, देखो तो अपनी बेरहमी,
कितनी यादें मँडराती हैं,
मन को छू कर उड़ जाती हैं,
सिन्दूरी चूड़ियाँ चीख़तीं देखो! टीके की हैरानी,
संभव है, कल बड़े शौक़ से छाया में टूटे दरपन की,
बिन्दी नहीं सजाई जाये!

आँचल में रोशनी प्यार की, कोई आया अभी भर गया,
ख़्वाहिश मरने की लेकर के जो आया वह अभी मर गया,
लेकिन तेरे रूपनगर में, रहम नहीं इन्साफ़ नहीं है,
किसी सुहागिन के माथे का शीश-फूल लो! अभी झर गया,
तुम्हें पता क्या कहाँ अँधेरा,
ममता ने जीवन को घेरा,
सिर धुनती ही रह जायेगी सपनों की सुकुमार जवानी,
संभव है, कल अर्थी अपने कन्धों पर अपने साजन की,
जल्दी नहीं उठायी जाये!

अड़तीस

आज ख़त आया तुम्हारा,
मन नहीं लगता हमारा ।

झील के तट मौन गुमसुम
पढ़ रहा हूँ ख़त तुम्हारा ।

एक हल्की लहर उभरी,
छू गई सहसा किनारा ।

सामने ही थका-हारा,
एक पंछी बेसहारा ।

डुबकियाँ ले चोंच घिसता,
एक ग़ोता और मारा ।

दूर अनदेखी डगर पर,
उड़ा चुगने कहीं चारा ।

दृष्टि से ओझल हुआ फिर,
शक्ति भर लो! पंख मारा ।

दोपहर का यह नज़ारा,
हम अकेले सर्वहारा ।

खोजते हैं वह सहारा,
जो बने विस्तार न्यारा!

तुम, तुम्हारे ये इशारे,
और यह अभिशाप-कारा ।

मुक्ति पा लें नहीं चारा,
बँध गई है, प्रीति-धारा ।

हवा बन्दी हो गई है,
लाँघ सीमा गया पारा ।

उष्ण किरणों की सुनहली,
धूप का पहिने ग़रारा ।

जेठ की दुपहर अकेली,
खींचती है मन हमारा ।

स्वेद की बूँदें छिड़क कर,
सींचती है तन हमारा ।

क्या लिखें भरता नहीं दिल,
क्या लिखेगा पंथ-हारा ।

और ही दूरी बढ़ी है,
पंख जितना ही पसारा ।

आज ख़त आया तुम्हारा,
मन नहीं लगता हमारा ।

उनतालीस

खींच रहा रेखाएँ प्राणों से प्राणों तक,
फ़सलों की चूनर का तोतई रँगनवा!

हर बिरवा जीवन की दूरी को नाप रहा,
आगे की बातों पर पात-पात काँप रहा,
साधों के मंडप में माटी का मंगल-स्वर,
बीजों के अन्तर की आकुलता भाँप रहा,
बात फैल-फैल गई कानों से कानों तक,
धरती ने पहिना है जादुई कँगनवा!

डंठल की चोटी पर बालें सब झूम गईं,
दूधमुखी दानों को चुपके से चूम गईं,
हाथों में खुरपी ले, माथे पर टोकरियाँ,
कृषकों की कन्याएँ मेड़-मेड़ घूम गईं,
पौधों के घर से हरियाए मैदानों तक,
गमक रहा गीतों का केवड़ई अँगनवा!

मोती-सा अन्नों का खिला-खुला चेहरा है,
रोटी की घाटी का रूप-रँग सुनहरा है,
फावड़ों-कुदालों में, हल-हसिया, बैलों में,
जीवन की रेखा का विन्दु-विन्दु उभरा है,
उड़ता है खेतों से ख़ाली खलिहानों तक,
मिट्टी का संजीवी संदली सपनवा!

चालीस

इन गमकते कुन्तलों में तुम प्रलय को बाँध लो तो,
मैं सृजन के द्वार पर रुक कर प्रणय को नमन कर लूँ!
मुझे भाती नहीं प्रतिमा, पंगु कुंठित चेतना की,
मुझे अब भाती नहीं है, माँग खंडित वेदना की,
खो गया विश्वास विस्मृति की वधिर अन्धी गुहा में,
कल्प बीते बाँह छूटी, आकलित संवेदना की,
संशयी सपने न भाते,
नित्य मन में कौंध जाते,
प्रीति के शुभ्रांचलों में तुम हृदय को बाँध लो तो,
मैं विकृति के विष-कलश का अन्यतम आचमन कर लूँ!

मौन स्वर अभिजात धारा के लिए निश्चल अड़ा है,
प्यार के संसिक्त गीतों के धरातल पर खड़ा है,
स्वप्न का अवतार मेरे, मोतिया हिम-विन्दुओं-सा
उठा लो, कब से तुम्हारे, हरे आंचल पर पड़ा है,
सुनो मेरी प्रार्थना को,
छुओ, मेरी अर्थना को,
रूप के घन-मंडलों में तुम निलय को बाँध लो तो,
अर्द्ध-संजीवित तृषा के पल्लवन का जतन कर लूँ!

आज अलसौंहें स्वरों के पंख हँस कर खोल दो तुम,
प्राण के अर्गलित द्वारों को सँवर कर खोल दो तुम,
ढँका है अस्तित्व मेरी कल्पना की भूमिका का,
प्रेम की मुख पत्रिका को खिलखिला कर खोल दो तुम,
सर्जना को लो, सहेजो,
कुछ नये संदेश भेजो,
छमछमाते पायलों में तुम समय को बाँध लो तो,
मैं धरा के माथ पर उभरी शिकन का मनन कर लूँ!

इकतालीस

समय का बटोही चला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ चलना पड़ेगा!

हँसो मत सितारो! रुके पाँव थककर,
युगों से चला प्यार का गाँव तज कर,
न आगे बढ़ो चीख़ते अश्रु के कण,
लिपट कर क़दम चूमते धूल के कण,

मगर राह की चाह बाज़ू उठाकर,
बुलाती हृदय को बहुत गुदगुदाकर,
सितारो, सुनो! यामिनी की क़सम
रोज़ मरती, निशा रोज़ होता जनम,

तिमिर का नशा भी ढला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ ढलना पड़ेगा ।

हँसो फूल की डालियो! फूल कर मत,
छुओ, तुम हमारी व्यथा भूल कर मत,
हज़ारों सुमन भाव के मैं कुचल कर,
चला हूँ कि मन की डगर पर मचल कर,

खिला आज जो दल मिटेगा वही कल,
ज़मीं चूमकर उफ़, निगल जायगी कल,
न वह खिल सकेगा, न तुम हँस सकोगी,
कि तुम धूल के पाँव बरबस पड़ोगी,

धरा पर कुसुम तो पला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ पलना पड़ेगा!

हँसो मत चिराग़ो! बुझा दीप मन का,
बुझा कर चला पीट कर पीर-डंका,
जले क़ब्र पर जो कई दीप पथ के,
पकड़ शीश रोये, कहा किन्तु हँस के,

जले रोज़ हम भी, चले रोज़ तुम भी,
बुझे रोज़ हम भी, रुके रोज़ तुम भी,
मगर प्राण की वर्तिका को जला कर,
जले हो, जलोगे किसी को जला कर,

शलभ का हृदय भी घुला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ घुलना पड़ेगा ।

हँसो मत शिलाओ! कि हम क्यों तरल हैं,
सुधा छोड़कर हम पिये क्यों गरल हैं,
नहीं यातनायें हमारी सरल हैं,
सभी कामनायें हमारी सजल हैं,

बसा कर हृदय में प्रणय का शिवालय,
गला रोज़ मेरे नयन का हिमालय,
तुम्हें भी हिमानी शिखर की क़सम है,
कि बहता कहो सत्य गलकर न ग़म है,
हठीला तुहिन भी गला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ गलना पड़ेगा!

हमें देखकर मत हँसो तुम मज़ारो!
गड़े पत्थरों की सड़ी तुम क़तारो!
मिटा कर बहुत मक़बरे हम अमन के,
सुला कर चले हैं इरादे मिलन के,

कफ़न रो गया कब नहीं याद तुमको,
दफ़न हो गया दिल नहीं याद तुमको,
उठेंगी कभी जाग मुर्दा कराहें,
लिपट तोड़ देंगी अरे! बुर्ज-बाँहें,
लखो! ईंट का दिल हिला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ हिलना पड़ेगा!

हँसो मत चिताओ! कि हम क्या बतायें,
जला कर चले प्यास की हम चिताएँ,
न पूछो हमारी जलन की कहानी,
न पूछो हमारी मिलन की कहानी,

नहीं पास में है मधुर कुछ निशानी,
बहुत दूर भागी कहीं ज़िन्दगानी,
सुना है कि हर रोज़ आते जनाज़े,
न जाने कि कितने जले रंक-राजे,
यहाँ रोज़ कोई जला जा रहा है,
तुम्हें साथ ही साथ जलना पड़ेगा!

बयालीस

थिरक उठीं सपनों की फ़ीरोज़ी घाटियाँ,
बजते हैं स्वर-नूपुर रुन-झुन, रुन-झुन!

हंसमुखी मेघों की नारंगी चोंच खुली,
बूँद-बूँद मोती के दानों-सी बिखर गई,
सजग हुई खेतों की अनब्याही चेतना,
धरती गुलनारी मुसकानों-सी निखर गई,
बैलों के गले-बँधी बजती हैं घंटियाँ,
माटी के सरगम पर टुन-टुन, टुन-टुन!

नये-नये अँखुओं की पल्लवी विधाओं को,
जीवन की अहिवाती संधाएँ सींच गई,
सोंधे अभिप्रायों के हर कोरे पन्ने पर,
धानी विश्वासों की रेखाएँ खींच गई,
रस-भीगी तानों में तिरती हैं चोटियाँ,
हलवाहा गाता है, गुन-गुन, गुन-गुन!

फ़सलों के स्वर गमके, तन-मन मँजराये हैं,
गाँव-गाँव गीतों के मौसम-सा लगता है,
दिग्विजयी अर्थों-सी श्यामलिमा छिटकी है,
खेत-खेत प्राणों के संगम-सा लगता है,

छन्दों की यति-गति-सी अल्हड़ बहू-बेटियाँ,
शब्द-जड़े कड़े-छड़े, छुन-छुन, छुन-छुन!

तैंतालीस

उस दिन मैं समझूँगा शायद मेरी मंज़िल दूर नहीं है,
जिस दिन मेरे गीत तुम्हारे अधरों से टकरा जाएँगे!

मेरे गीत तुम्हारी ख़ातिर, ख़ुशबू पी-पीकर निकले हैं,
कलियों की गोदी में पलकर, फूलों के घर से निकले हैं,
इनका मोल तुम्हें बतलाऊँ, इतनी परख नहीं है फिर भी,
गीत नहीं, मोती के दाने, सचमुच सागर से निकले हैं,

मधुर-मदिर सुन्दर हैं कितने
मेरे भीगे-भीगे सपने,
अनायास यदि इन्हें किसी दिन तुमने दुलराया, तो संगिनि,
उस दिन तेरे नीले आँचल के तारे घबरा जाएँगे!

तेरा चित्र बन गया जिस दिन, उस दिन मैंने सरबस पाया,
गीत मुझे क्या मिले कि जैसे मैंने पत्थर पारस पाया,
फिर भी नई सुबह ने मेरे रिश्ते को क्यों ठुकराया है,
चुटकी भर सेंदुर लेकर मैं हर आँगन से वापस आया,
मेरा प्यार कामगन्धी है,
दुनिया कहती है, अन्धी है!
जिस दिन मेरे गीत तुम्हारे, नये क्षितिज पर उग आएँगे,
उस दिन आसमान के सारे नील कमल पथरा जाएँगे!

आँसू की फ़सलों पर मैंने जीवन भर निर्वाह किया है,
लगता ऐसा मुझे कि जैसे कोई बड़ा गुनाह किया है,
सिर्फ़ गीत की दौलत से हर बार प्यार को जीत लिया है,
यही तनिक-सी भूल हुई है, जिसने मुझे तबाह किया है,
पथ पर पाँव जहाँ भी बहके,
गीतों ने टोका रह-रह के,
जिस दिन गीत गवाह बनेंगे, और तुम्हारा मन छू लेंगे,
उस दिन धरती से अम्बर तक सब के सब दुहरा जाएँगे!

जिस दिन तेरे दरवाज़े पर, दिल की बारात खड़ी होगी,
उस दिन स्वागत में लाख-लाख गीतों की पाँत खड़ी होगी,
हैं तुम्हें जीत लेने को मेरे मंसूबे तैयार खड़े,
फिर अगर कहूँ कुछ तो शायद छोटे मुँह बात बड़ी होगी,
बलि-सा विशद तुम्हारा मन है,
तेरे द्वार खड़ा वामन है,
जिस दिन तीन डगों में तेरी माँग नाप लेंगे नन्हें पग,
उस दिन ब्रह्मा के चारों सिर रह-रह कर चकरा जाएँगे!

चौवालीस

मौन दिगन्तों की आँखों में,
सन्ध्या काजल आँज रही है!
गहबर गगन पाँव फैलाये,
ऊँघ रहा है, कौन बुलाये,
तारों के दाने छितराये,
सपने नये-नये अँखुआये,
और समय की नटखट छोरी,
किरण-किरण को भाँज रही है,
सन्ध्या काजल आँज रही है!

अन्धकार का अजगर सरका,
रंग उड़ा भीतर-बाहर का,
सूखा स्रोत प्यार के स्वर का,
कंठ रुँधा, मन कसका करका,
जीवन के उखड़े घाटों पर
सुधि, साधों को माँज रही है,
सन्ध्या काजल आँज रही है!

पैंतालीस

ओ मेरे अपराधी सपनो! मुक्ति मिलेगी मत घबराओ,
जग के मुँह में जीभ नहीं है सारा गगन गवाही देगा!

जहाँ प्यार के मधुर क्षणों को अन्धी घड़ियाँ चुग जाती हों,
जहाँ रूप के हाथों में बरबस हथकड़ियाँ लग जाती हों,
जहाँ याद के हर मौसम में फूल-फूल की आँख-आँख में,
बात-बात में लोहू की अनगिन फुलझड़ियाँ उग आती हों,
वहाँ तुम्हारी क्या बिसात है, जहाँ ज़िन्दगी घास-पात है,
धरती का कण-कण गूँगा है, बार-बार तुम मत गुहराओ,
आँधी का रुख़ ठीक नहीं है, सारा चमन गवाही देगा!

जहाँ किसी निर्बन्ध रागिनी ने सितार का तार न पाया,
जहाँ उमड़ते संवेगों ने स्वर का पारावार न पाया,
जहाँ कांक्षा की घाटी का हर पौधा मुरझा जाता हो,
जहाँ नीलकंठी मेघों ने किसी बूँद का प्यार न पाया,
वहाँ किसी से क्या पाना है, ख़ाली हाथ लौट जाना है,
मन-से-मन के नाते को तुम जहाँ-तहाँ अब मत बैठाओ,
मन की कोई रीढ़ नहीं है, सारा मनन गवाही देगा!

तट की छाँह न जिसे लुभाए, ऐसी कोई लहर नहीं है
पल का पंख न जिसे उड़ाए, ऐसा कोई पहर नहीं है
चाहे जितना भी खलता हो सुधि का हर क्षण संगी तो है
पता न मंज़िल का बतलाए, ऐसी कोई डगर नहीं है
धीरज धरो, स्वरों को साधो, साँसों को मुट्ठी में बाँधो,
चाहे मरघट या मज़ार हो, अपना हाथ न तुम फैलाओ,
जीवन कोई भीख नहीं है, ठहरो! कफ़न गवाही देगा।

छियालीस

हज़ार पत्तियाँ लगी हैं, किन्तु डाल एक है,
हज़ार फूल सूत में हैं, किन्तु माल एक है,
ज़िन्दगी बड़ी अजीब, ठीक हल न मिल सका,
जवाब हैं अलग-अलग, मगर सवाल एक है,

ज़िन्दगी सरोद है कि प्रेम एक राग है,
प्रेम भोर का सिंदूर, साँझ का सुहाग है,
प्रेम के बिना न मोल ज़िन्दगी का है कहीं,
ज़िन्दगी है फूल, प्रेम फूल का पराग है,

मौत आँधियों की साँस, ज़िन्दगी गुलाब है,
मौत पी रही उसे कि ज़िन्दगी शराब है,
मौत को न पूछिये कि क्या है, कौन है, कहाँ?
मौत ज़िन्दगी.के हर सवाल का जवाब है,

साँस का समस्त राज मौत का ग़ुलाम है,
ज़िन्दगी न बेलगाम, मौत की लगाम है,
मौत एक मर्सिया है, ज़िन्दगी से अलविदा,
मौत, मौत है कि एक आख़िरी सलाम है ।

सैंतालीस

—गति और ठहराव

मैं उड़ा
अर्थात् मेरी आस्था का
गन्ध भीना विकल अन्तस्
चेतना के पंख ऐसे फड़-फड़ाकर उड़ा
जैसे भोर होते ही कबूतर
किसी अनजाने, निविड़तम प्रान्तर की ओर
बरबस उड़ गया हो,

तय हुई दूरी
मगर उपलब्धि का व्यामोह
मेरी कांक्षा को डस गया,
मैं फँस गया
चारा नहीं, हारा नहीं
क्योंकि मैं हूँ और मेरा लक्ष्य
जो बन्दी नहीं, उन्मुक्त है,
मैं मुड़ा
अर्थात् मेरी चिन्तना का
रंगराता क्षुब्ध मानस

कल्पना के बाँध ऐसे तोड़ करके मुड़ चला
जैसे किसी चट्टान के अस्तित्व को झकझोरता
अविराम कोई विकल नद
अविलम्ब अनजाने निविड़तम प्रान्तर की ओर
बरबस मुड़ गया हो!
वापसी है
आ गया हूँ लौटकर
संभावनाओं के शिविर तक
मैं खड़ा आश्वस्त
अर्थात् मेरी आस्था का
गन्ध भीना विकल अन्तस्
किसी अनमापे
अकल्पित क्षितिज का
स्पर्श पाने के लिये
गतिशील है,
फिर भी अड़ा है!

अड़तालीस

सूरजमुखी का पत्र : सूर्य के नाम

ओ! सुनहली चेतनाओं के
चिरन्तन और नूतन पारखी!
लो! करो स्वीकार
खण्डित प्यार, पीड़ा, सुमन, सपनों का प्रणाम!
एक युग के बाद
तुम को कर रही हूँ याद,
रूप के धूमी धरातल पर उभरती
हेमवर्णी आस्थायें,
और यह निष्पर्ण जीवन
दिशाहारा प्राणसौरभ की
विवर्ती यात्राएँ—
मौन सब के सब थमे आकाश का मुँह देखते हैं!

कहाँ तक ढोती फिरूँ मैं
शिथिल तन-मन का विपर्यय
और बर्फ़ानी विषाद,
ओ! निलय की वासनाओं के अमर ज्वालामुखी!
एक युग के बाद
तुम को कर रही हूँ याद,
सच कहूँ, तो इन दिनों मैंने
अनेकों पत्र लिख डाले तुम्हारे नाम
किन्तु तुम तक एक भी पहुँचा नहीं;
शपथ खाती हूँ तुम्हारी किरणगर्भी भोर की
भावी अनागत पीढ़ियों की
कौन जाने बात क्या है?
इन दिनों हर पंखुड़ी मेरे अथिर अस्तित्व की
अच्छिन्न यादों में रँगी है!
मानती हूँ,
एक युग के बाद तुम को कर रही हूँ याद,
लेकिन मैं विवश हूँ,
ध्यान से यह पत्र पढ़ लो!
और कोई नयी आकृति प्यार की रंगीन गढ़ लो!
क्योंकि अब मेरे तुम्हारे बीच की दूरी नहीं है
प्रणय के आलोक-पथ की मुग्ध साखी,
लो! तुम्हारे प्यार की, अन्तिम किरण की,
एक रुग्णा स्वर-कपोती के गले में, बाँध देती हूँ
सनातन चिन्तनाओं की उँगलियों से लिखा,
यह एक अन्तिम पत्र!
और बस,
मैं हूँ, तुम्हारे प्यार की मरणोन्मुखी
सूरजमुखी।

उनचास

जीवन का चक्रव्यूह

चिन्ताएँ साकार हो उठी हैं
जीवन में चक्रव्यूह-सी
दुर्बल भावों के लाखों द्रोणाचार्य
खड़े हैं अगवानी में
कई लाख अरमानों के अभिमन्यु बेमौत मर जाएंगे
इसकी चिन्ता कौन करे
मैं क्या उत्तर दूँ! अन्तरिक्ष में
उच्छ्वासों की मँडराती-सी मूक उत्तराएँ
और असंख्य अर्जुनों की छायाएँ
छटपटा रही हैं, चीख़ रहा है प्यार
हृदय का क्षुब्ध हस्तिनापुर क्या बोले?
असन्तोष का राज्य कौन भोगेगा
मैं या मेरे मृतकों जैसे
अन्धे स्वप्नों की जिज्ञासाएँ?
कौन रोकेगा मन से मन का युद्ध
शरों से विद्ध भावना-पुत्र भीष्म-सा
शर-शय्या पर पड़ा विवेक कराह रहा है
अपनों-सपनों की निगरानी में
और युधिष्ठिर-दुर्योधन जैसे
लाखों संकल्प हाथ पर हाथ धरे चित्रवत खड़े हैं।

पचास

आस्था की पथरायी अहिल्यायें

ईप्साओं के
लिप्साओं के
मनःदूत इन्द्रों को
कुंठित चेतनाओं के ऐन्द्रियेधी चन्द्रों को
तुमने परखा नहीं,
अपने बिल्लौरी पारदर्शी
अन्तस् के दर्पण में
उनके मुख-विम्बों को
अपने अनवद्य
आर्ष लक्ष्यों के
हिलते-डुलते प्रतिविम्बों को
तुमने लखा नहीं,
और
गेरुये गीतों के गर्वों और गौरवों के
अंगारित अभिकामों के तपः पूत गौतमों ने
क्या तुमको पहिचाना?
माना, स्थितियों की
दुष्प्रमेय और हेय
इंगिति थी,
लेकिन क्या जीवन की
पथरीली परिणति ही
जीवन का उत्तर और संगति थी,
सत्यसन्ध युग की रौंदी
कुम्हलाई मानस-कुसुम-कन्याओ!
आस्था की पथरायी अहिल्याओ!
उठो, ऊपर लखो!
मुझे परखो!
मैं पूर्ण हूँ, निष्काम हूँ
मैं वीतरागी गगनचुम्बी शीलता का
और दीपित आस्था का
अग्रगामी राम हूँ!

इक्यावन

एक साँझ और तुम

सूरज ठंडी साँस छोड़ कर
मुड़-मुड़ कर
लखता, पछताता जाता होगा
दूर चला जाता होगा
तम के छली हिरण के पीछे,
लक्ष्मण-रेखा-सी खिंची
धुएँ की रेखाओं से घिरी गाँव की मर्यादाएँ
सीता जैसी अपने रघुवर की यादों में खोयी होंगी,
और तुम्हें भी मेरी स्मृति ने जी भर झकझोरा होगा,
हलके मौन धुँधलके में बरबस आँखें भर आई होंगी,
विक्षोभों का दैत्य तुम्हें भी
तापसवेशी दशमुख जैसा
अन्तर्द्वन्द्वों के रथ पर, बैठाकर
चोरी-चोरी भागा जाता होगा
दूर चला जाता होगा
पर-कटे जटायू-सा जीवन अकुलाता होगा,
मैं हूँ, कैसा राम!
कि सोने के मृग के पीछे-पीछे दौड़ रहा हूँ,
और व्यथा की मूरत जैसी
दण्डक वन की सूनी कुटिया जैसी
दुखिया साँझ तुम्हारी, मेरे मन को
छू कर लौट गई!

समय दंश

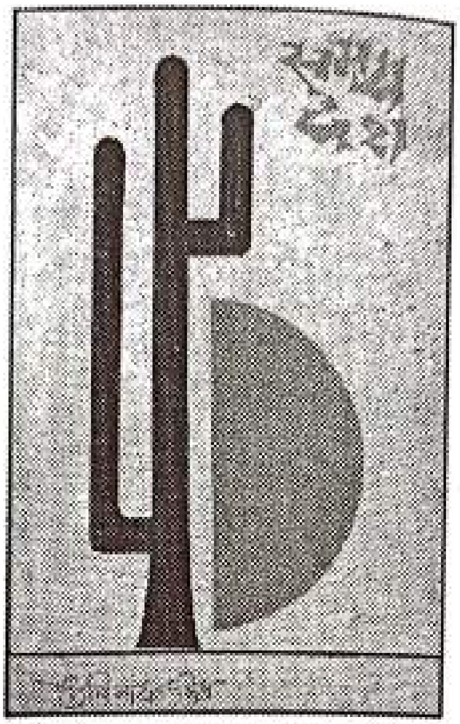

प्रकाशक :
सुपर्णा
101, कावस घाट स्ट्रीट
शिवपुर, हावड़ा - 711 102

मुद्रक :
बी. एम. प्रेस
118/2, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 012

आवरण :
आलोक शर्मा

प्रथम संस्करण : 1971

मूल्य : पाँच रुपए

पृष्ठ : 40

अनुक्रम

समय-दंश : अपने ख़िलाफ़ युद्ध	110
पश्चात्ताप की मुद्रा में सूर्य	114
विडम्बना	115
सुरक्षा के हेतु	117
यंत्रणा : मुहावरों में समय को जीने की	118
समय और कविता	121
कविता और क्रान्ति के बीच	123
देश या कविता में जीना	125
संस्कारों का समय	126
अदृश्य सलाखों के भीतर	127
मुट्ठियों में बन्द उजाला	129
समय-बोध	131
ये कौन हैं सारे लोग	132
नक़ली क्रान्ति के विरुद्ध	134
समयहीनता की तलाश	136

समय-दंश : अपने ख़िलाफ़ युद्ध

एक समय था
स्वीकार कर लिया था मैंने
कविता को समय के लिए
या समय के विरुद्ध लड़ने के लिए
कविता में जीने के लिए

वादा किया था बहुत पहले मैंने
अपनी कविता को अँधेरे की पीठ में चुभा कर
रोशनी की बाँहों में समय को आँटने का

और कविता में ही
रोशनी की तलाश के लिए
थोड़ा-थोड़ा सन्नाटा बाँटने का
अपने रचे हुए युद्ध को
कुछ और तेज़ करने का
एक विश्वास उगा लिया था
समय की धड़कनों में जीने का

लेकिन मेरी कविता अँधेरे के प्रति
इतनी वफ़ादार है कि उसमें जींना
या उसके लिए जीना
या न जीना जैसा कोई भी एहसास
उसे कहीं नहीं तोड़ता
मेरे सामने उभरती है वस्तुओं की आकारहीनता

डसता है एक संशय
लगता है मैंनें आंढ़ लिया है
एक नक़ली युद्ध
बहुत साफ़ दिखता है कि रोशनी को

मैंने सिर्फ़ अपने पिछले और पुराने
कीर्तिस्व की लाज रखने के लिए
बाँध लिया है उँगलियों में
रचना के भीतर पैठते हुए
मैंने कई बार महसूस किया है—
रोशनी में कविता के लिए
समय का उपस्थित होना
सुविधा की दृष्टि से औपचारिक लगता है
और कभी-कभी
इतना अशोभन लगता है कि समय को
बाँहों में कसती हुई रोशनी मद्धिम पड़ जाती है

तैरने लगता है उसके चेहरे पर
एक सांस्कृतिक विद्रूप
पिघलने लगता है सम्भ्रान्त रूप
हथौड़ों की चोट से चकनाचूर हो जाता है
क्षणों का तात्पर्य—
टटोलने पर भी नहीं मिलती कविता
या तो कविता की जगह सन्नाटा होता है
या समय की जगह अँधेरा होता है

मैं शताब्दी की आरामगाह में
अँधेरा, रोशनी, सन्नाटा, समय
और कविता के साथ
किसी एक युद्ध और किसी एक 'न्यूड' के बीच
चुपचाप सुन रहा हूँ—
रोशनी की नैतिकता का चिटख़ना
अँधेरे का मुक्त अट्टहास
रोशनी के होने का
नाजायज़ फ़ायदा उठा रहा है सन्नाटा

समय कुछ नये मुखौटे तैयार कर रहा है

किसी संभावित नये योद्धा के लिए
मैं देख रहा हूँ शहर के बुद्धिजीवियों का एक गिरोह
क्रान्ति और पिस्तौल के नाम पर
'बाथरूम' की ओर सरक रहा है

दिमाग़ी अँधेरे की निगरानी में
तथाकथित प्रबुद्धों के समक्ष
खीरनुमा देह का परोसा जाना मुक्ति का सही बिन्दु है
उनके लिए कविताएँ
और सुजाताएँ एक ही अर्थ रखती हैं

अँधेरे का कवच पहन कर
एक पूरा शहर
मेरी कविता को रोशनी और समय से

अलग रखने के लिए
ढाल की तरह इस्तेमाल करता है होटलों को
और तलवार की तरह भाँजता रहता है सड़कों को–
हर रोज़ जब वापस जा रही होती हैं
बन्द कमरों से निकल कर
पुख़्ता और मांसल कविताएँ
अपना अर्थवान, शीलवान समय गुज़ार कर
रोशनी में ताज़ा कविता जैसी
दिखने की विडम्बना सहेज कर
तब मेरी तटस्थता रोशनी के चरित्र पर
एक धब्बा उभारती है

और—
कविता मेरे सम्पूर्ण को नकार देती है
मैं अपने समय को
फ़ुटपाथों पर घसीटता हूँ
क़हवाघरों में उसकी बोटी बोटी काटकर
दोस्तों को खिला देता हूँ

लेकिन वह कहीं न कहीं अवश्य होता है
प्रतिशोध के लिए मुझे भीतर से काटता है

समय की इस अनात्मीय स्थिति में
अँधेरा और सिर्फ़ अँधेरा होने की वजह से
रोशनी के होने का वहम
मेरी नसों में एक यंत्रणा-शिविर रचता है
सन्नाटे के सख़्त पहरे में
ठंडे शब्द कुछ और तेज़ ताप चाहते है

लेकिन समय आहिस्ता-आहिस्ता सुलगता है
क्षणों में होती हुई उसकी मौत की ख़ुशी में

घटिया क़िस्म के शराबख़ानों में
एक साथ कई संस्कृतियों के चूज़े
बोतल सूँघते हैं
और समय को अपने ढंग से रचने के लिए
माओ, मार्कुस, कास्त्रो, चे और दब्रे का
घरेलू तर्जुमा करते हुए लोग

एकान्त में चीख़ते हैं
भीड़ में ऊँघते हैं

मैं जानता हूँ—
अनायास उगती हुई इस ऐतिहासिक विडम्बना को
छीलने के लिए
मेरे पास कोई कविता नहीं है
अब समय मेरे लिए
या किसी के लिए नहीं है

मुझे लड़ना है—
या तो जूझने के लिए
या टूटने के लिए
मैंने ख़ुद को तैयार कर लिया है कविता के लिए
और अपने ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए!!

पश्चात्ताप की मुद्रा में सूर्य

मैंने जिस ओर
अपनी दृष्टि का सम्पूर्ण आशय फेंक दिया है
मैं नहीं चाहता
उसे किसी दिशा का नाम दिया जाय

मैं जब भी समय की सतही भूमिकाओं में
अपना होना महसूस करता हूँ
मुझे लगता है
मैंने इतिहास को ग़लत अर्थ दिया है
मैं अपनी अनाम अवस्थिति में अर्थहीन होना चाहता हूँ
विकल्पों पर टँगी दिशाओं को नोचकर
महासागरों की गहराई तक फेंक देना चाहता हूँ
मेरे क्षणजीवी अर्थ-पुत्रो!
मैं अपनी यात्रा की अर्थमयता को
अनायास नकार देना चाहता हूँ

तुम जानते हो
पृथ्वी पर पहली बार सम्पाती की पंखहीनता मात्र एक प्रतीक है
और मेरी दृष्टियों में आंजनेय सन्दर्भों की
एक रेखा तक भी नहीं उभरती
समूचे विश्व की प्राणहीनता के अगले अध्याय में
मैं अपनी देह-कथा कई हिस्सों में बाँट कर
आकाश की अनछुई ऊँचाई पर
लिख देना चाहता हूँ
मैं अपने अग्निकोषों में
एक नए सूर्य का
बिम्ब उभारना चाहता हूँ!!

विडम्बना

अभी मैं जहाँ से गुज़र रहा हूँ
मेरे समानान्तर एक आदमक़द आईना है
अपनी सन्दर्भहीन यात्रा की अगली स्थितियों के लिए
नए ढंग से प्रस्तुत होने की कोशिश में
मैं थोड़ी देर के लिए
ठहर जाता हूँ

मेरे जिस्मनुमा गोश्त का भूगोल
कुछ इस तरह प्रतिबिम्बित है कि—
मैं खुद को अपरिचित-सा महसूस कर रहा हूँ
मेरे और आईने के बीच धँसा हुआ आकाश
शोहदा और ऐय्याश लगता है

मैं तेज़ी से घुस जाता हूँ
एक लम्बे-चौड़े बन्द कमरे में
रोशनी का तर्जुमा करने वालों की विडम्बित भीड़ में
चन्द लोग अनात्मीयता की भाषा में
फेंकते हैं, इर्द-गिर्द की कृत्रिम हवा में
अँधेरा तोड़ने का दुस्साहस
चेहरों पर मढ़ लेते हैं
अपने समय के ख़िलाफ़ बनावटी नाराज़गी
और उछाल देते हैं इतिहास को दुहराने की
सम्भ्रान्त बेहूदगी

एक बहुत अच्छी शाम
अपने देश के नाम
सिर्फ़ खीसें निपोरती है
बाहर नयी व्यवस्था की तलाश में
ख़ून उगलता हुआ शहर
जुलूस रचता है
मेरे दिमाग़ की नसों पर
एक भूखी शताब्दी का अक्स उभरने लगता है
एक चुकी हुई यायावर समयवत्ता
अपने पिघले हुए समय से
अल्यूमीनियम का टूटा कटोरा खँगालती है
लाल क़िले के मुख्य दरवाज़े जैसे पोपले मुँह में
भूख का सनातन प्रश्न धीरे से डाल कर
इक्कीस बार टहलाती है

सुई-सा कुछ चुभ जाता है मेरी आँखों में
मेरे भीतर आग का एक पिन्ड सुलगता है
मैं ज्वालामुखी की तरह काँपता हूँ
और समय से पहले
अपने गन्तव्य से कुछ और आगे
निकल जाना चाहता हूँ

मैं आईने के क़रीब आ गया हूँ
अपना बिम्ब ज़बरदस्ती नोच कर
एक शानदार, पुरानी इमारत की संगमर्मरी सीढ़ियों से
नीचे उतर गया हूँ
और रिवाल्वर की एक दूकान पर
अपनी सन्दर्भहीन ठंडी यात्रा के नाम
चहलक़दमी कर रहा हूँ!!

सुरक्षा के हेतु

बेहूदे और बेईमान लोगों की बस्ती में
दम तोड़ते हुए सूर्य को
समय की एक अतलान्त नीली नदी के उस पार
दफ़नाने के लिए
शिल्पियों का एक जत्था
काग़ज़ का सेतु रचता है
छेनियों से हवाएँ तराशता है

विद्रोह ढोती हुई आवाज़ों की क़तारें
आहिस्ता-आहिस्ता उतर रही हैं
पानी की सतह पर
किनारे खड़ी एक विशाल भीड़
(जो यहाँ कहीं नहीं थी)
इतिहास का एक लम्बा रास्ता रौंदती हुई
सूर्य की मृत्यु पर
हर्षाञ्जलि प्रस्तुत करने के लिए
प्रार्थना-गृहों से बाहर आ गई है

और सबसे पीछे
भीड़ में कुचल कर मरे हुए
एक नन्हें आकाश की लाश पर खड़े
सुरक्षा के हेतु तेज़ी से भाग कर आए हुए
एक ख़ूबसूरत आदमी की पीठ पर
जूतों के निशान उभर आए हैं!!

यंत्रणा : मुहावरों में समय को जीने की

हमें अब मुहावरों में
समय को जीने की यंत्रणा और उसका परायापन
क़तई पसन्द नहीं है
हमने अपने होने का एहसास
डस्टबिन में डाले गए रद्दी काग़ज़ की तरह
आम रास्ते के बग़ल वाले कूड़ेख़ाने में फेंक दिया है
और
अपनी मुट्ठियों में कसे हुए
टमाटरनुमा सूरज को इस तरह दबोच कर
आसमान पर उछाल दिया है
कि अस्तित्व का केन्द्रीय अर्थ
समूचे ग्लोब पर ख़ून के चटकीले धब्बे जैसा उभर गया है

हमने आत्मीयता के सुर्ख़ क्षणों को घिस कर
इतना पारदर्शी बना दिया है कि—
विकल्पों के माध्यम से भी
अपने समय को जीना मुश्किल दिखता है
और लगता है
हमने जान-बूझ कर
अपना उखड़ा भूगोल
और चिथड़ा इतिहास
दृष्टिहीनता की प्रखरता को सौंप दिया है
हमें अब मुहावरों में समय को जीना
क़तई पसन्द नहीं है

हम जानते हैं
हमारे आस-पास के महानगरों पर तिरता हुआ
अनात्मीय संकट
और हमारी मांस-पेशियों को ऐंठता हुआ
यांत्रिक दबाव
जिजीविषा के सही और व्यापक मामूलीपन को काटता
हुआ बदलाव,
शत-प्रतिशत समकालीन हो सकता है—
अथवा सामयिक नहीं भी हो सकता है,
किन्तु—
वह इतना सार्वजनिक है कि
लोकतांत्रिकता के नाम पर
या मुट्ठी भर
नकचढ़े बोधों के सतही आयाम पर
कहीं भी भुनाया जा सकता है
यानी सिक्कों की तरह भुने हुए लोगों के
फुटकल और फालतू सिलसिले को
या क़ायदे से रची गई एक लम्बी भीड़ को

ख़ैराती अन्दाज़ में सड़कों और फुटपाथों पर फेंक दिया
गया है

बिलबिलाते हुए तमाम लावारिस
बेशिनाख़्त अर्थों को
कुलीन दरवाज़ों और अभिजात छज्जों से
निरन्तर टूट कर गिरी हुई दृष्टियों ने
बेतरह तोड़ दिया है
हर क़िस्म की आईनाबन्दी के ख़िलाफ़
तेज़ और मुस्तैद आवाज़ों को ज़बान से उकेल कर
पीठ पर चिपका दिया गया है
और वक़्त की पेशानी पर
ऐसा इश्तिहार लटका दिया गया है
जिसकी लिखावट में
रोशनी और अँधेरे का फ़र्क़ उभरता है
अब हमें किसी फ़र्क़ या फ़ासले की ज़रूरत नहीं है

टेलीविज़न के पर्दे पर
लगातार
उतरते हुए अक्सों-सा
समय का असली चेहरा कब उतरता है
इसकी जानकारी के लिए
हमारे समय के कथा-पुरुषों ने हमें
मुहावरों और लम्बे-लम्बे नक़ली ज्मुलों में कस कर
घटनाओं की अलगनी पर टाँग दिया है
हमें निरर्थकता के फैलावों पर बिछी भौगोलिकता और
निचुड़ी-सिकुड़ी
ऐतिहासिकता के प्रति कोई हमदर्दी नही है
हमें अब मुहावरों में समय को जीना
क़तई पसन्द नहीं है!!

समय और कविता

भीड़ से अलग होने पर
जब मैं अकेला होता हूँ
तब मेरे दिमाग़ में ठहरा हुआ
किसी एक महानगर का बिम्ब टूट जाता है
उसकी जगह एक जंगल उगता है

ऐसे में मैं
अपनी खोयी हुई कविताएँ तलाशता हूँ
या फिर किसी मामूली
पेशेवर संगतराश की तरह
रोटी और रचना के बीच का
फ़ासला तोड़ता हूँ
अपने समय का आकार तराशता हूँ

लेकिन भीतर
मेरी धमनियों में समय
किसी तीर-बिंधे हिरण की तरह भागता है
और मैं अन्तर्लीनता के
घने एकान्त फैलाव पर
ढेर सारी रंगीन ख़ुशबूदार
कविताएँ उगाकर
एक हमदर्द अहेरी की तरह
उसके ठहरने का संकेत पकड़ता हूँ

मैं जानता हूँ—
वह पास के किसी गहरे
अँधेरे में उतर गया होगा
तो क्या मुझे
कविताओं का एक मुलायम परिवेश
जंगली सुअरों के लिए
छोड़कर लौट जाना चाहिए?

काश!
समय मेरे लिए
और मेरी कविताओं के लिए
नज़दीक से गुज़रा होता!
शायद वह मुझे
रोशनी का ग़लत प्रतीक समझकर
अपनी थरथराती हुई संवेदनाओं में जीने के लिए
आदिवासियों की बस्ती के पीछे
कच्चे गोश्त के टुकड़े की तरह
ख़ून से लथपथ उगते हुए
सूर्य की प्रतीक्षा में
किसी पत्रहीन पेड़ के सहारे टिका हुआ
मर गया होगा—
विश्वास नहीं होता न जाने क्यों—

समय अनानासी धूप की तरह
जवाकुसुम या अमलतास की
अनछुई रंग-रचना की तरह
या फिर कनेर के
घंटीनुमा पीले फूलों की तरह
मुझे बहुत प्यारा लगता है

और—
कविता मुझे गुलाब की खुशबू से भी अधिक
प्यारी लगती है
वह मेरी शिराओं में
पलाश और सेमल से भी ज़्यादा
चटख़ रंग भरती है
पकड़ के बाहर
आग के रंग की तरह दहकती है!

कविता और क्रान्ति के बीच

हर बात के सामान्य होने का एहसास
हमारे अगले क़दम को
कुछ और तेज़ कर देता है
विप्लव और विद्रोह की भाषा में
फ़र्क़ करते-करते ज़िन्दगी
स्वाहा हो गयी है—किसी अग्निदेही
एकान्त से लिपट कर

अब जीने के प्रश्न को दुहराना
ज़रूरी नही लगता—
लेकिन सवाल-दर-सवाल का
पेचीदा उभार
अस्तित्व की पूरी भूमिका पर
इस तरह ठहर गया है कि—
किसी सवाल के मुँह पर ज़ोर से
अपना नाम भी फेंककर
आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता

आख़िर अब इसका पता
कैसे लगाया जाय कि—
क्रान्ति नये छन्द की तलाश में
किसी आग की नदी में उतर गयी है?

अब तो—
कविता और क्रान्ति के बीच
कसे हुए दुःख को
रेखांकित करता हुआ कोई सुख

या—
इतिहास के खुरदरे और
ग़ैर तराशे हुए क्षणों की निगरानी में
जीने का अनचाहा सुख
हमें कभी-कभी—
हमारी दहलीज़ों तक छोड़ आता है
कभी-कभी किसी चौराहे पर
खिलौने की तरह तोड़कर फेंक देता है
और हर बात के सामान्य होने का एहसास
हमारे अगले क़दम को
कुछ और तेज़ कर देता है!

देश या कविता में जीना

घुटनों से ऊपर तक का आकाश
घिर गया है
बलामी देहों के क्षेत्रफल से
उसे चीर कर
अकेला होना
क्रान्ति की नयी परिभाषा से जुड़ गया है

क्रान्ति को परिभाषित करने के लिए
ज़रूरी हैं कई तरह के रंग
और जिन्हें कोई रंग नहीं सूझता
उनके सामने ज़रूरी है
रंग-क्रान्ति के लिए
कुछ शब्द उधार लेना
फिर कोई भी एक मंत्र कील देना
तंत्र तैयार—
लोकतंत्र के नाम पर
फेंक दो स्वर्णमृग को खदेड़ती आवाज़ें

जहाँ-तहाँ—
जंगली घास की तरह
उग आएगी जनता
अनावश्यक लगता है
पूछना
अपने देश का पता
—भीड़ के कन्धों पर लिखी हुई
एक लम्बी कविता—
अब तो
यंत्रणा का अहसास
इस क़दर ठंडा हो गया है कि उसे
कविता में
जीना भी सम्भव नहीं दिखता!!

संस्कारों का समय

नहीं उठ पाता है
हमारे क़द से ऊपर
हमारे संस्कारों का समय
अपने समय की आदमीनुमा लम्बाई पर
अगर कुछ उभरता है
—तो सिर्फ़ अनिश्चय
हम महसूस करें या न करें
कोई अर्थ नहीं रखता
सत्य विभाजित नहीं होता
समय का कोई संस्कार नहीं होता

और
हमारा संस्कारहीनता की स्थितियों में होना
महज़ हवा के रुख़ पर होता है
आकाश के होने जैसा
जिसे हम तोड़ने की मुद्रा में
इतिहास के पृष्ठों पर
उजागर करते हैं मात्र विस्मय
नहीं उठ पाता है
हमारे क़द से ऊपर
हमारे संस्कारों का समय

अदृश्य सलाख़ों के भीतर

वह कोई भी हो सकता है
उँगलियों से
सन्नाटे का निदान लिखता है
और हवा में
ठहरा हुआ है एक आपरेशन टेबुल
कही कोई मरीज़ नहीं दिखता है

सिर्फ़ ग़लत निर्णयों से कटा हुआ समय
अदृश्य सलाख़ों के भीतर
अपना होना क़ैदी की तरह झेल रहा है
हमारी चेतना का क्लीव परिवेश
उसे न होने की स्थितियों तक खींच रहा है
लगता है
हम कहीं नहीं हैं
और कहीं न होने का यह अकेला एहसास

बेहद टीसता है
भीतर ही भीतर कैंसर की तरह धँसता है
ऐसे में अपरिभाषित संकेतों से बिंधा हुआ

आहत समय ख़ुद से जूझता है
अपनी शिराओं पर रचे हुए
रोशनी के इतिहास को
शिकार के वहम में
बनैले सुअर की तरह कूँथता है
नाख़ूनों और दाँतों में
चुभ जाती है अँधेरा उगलती हुई एक शताब्दी
उतर जाता है आँखों में
लहूलुहान आकाश

आख़िर कब तक नोचती रहेगी
दिशाओं को
प्रतिशोध की दहकती संवेदना

भीड़नुमा विसंगतियों को दबोच कर
भागता हुआ सूर्य
पटक देता है उसकी गर्दन पर
अपरिचित चेहरों का दबाव
पूरे आवेश के साथ
चीख़ता है हाँफता हुआ समय
थरथराता है पूरा का पूरा
रौंदा हुआ संविधानों का अन्तराल

ईर्द-गिर्द
रात-दिन
खौलती रहती है
बहाव को नया मोड़ देने के लिये
अस्तित्व की एक लम्बी लाल नदी
और हवा में
ठहरा हुआ है एक आपरेशन टेबुल
कहीं कोई मरीज़ नहीं दिखता है

समय-बोध

वस्तुओं की फ़िहरिस्त में
दर्ज हो जाने की नियति के अतिरिक्त
अब हमारे होने का
और कोई अर्थ नहीं उभरता

हमारा समय
हमें अपनी पसन्द के अनुकूल
सिर्फ़ इस्तेमाल करने की स्थिति में है

एक अनलिखी कविता की तरह
समय-यात्रा के अन्तराल को वेध कर
अपनी तलाश के दर्द को उकेरना
निर्णय के क्षणों में
बकवास और सिर्फ़ बकवास से अलग
कुछ नहीं लगता

किसी के चेहरे पर
मसीहा जैसे शब्द का लिख दिया जाना
फ़ीसदी दर फ़ीसदी वहम नहीं तो और क्या है ?

अब तो
हमारे जिस्म के तमाम हिस्सों पर
ज़रूरी वस्तुओं के नाम लिख दिए गए हैं
और हम काँच के
पारदर्शी ताबूत में रख दिए गए हैं!!

हम क्यों जीना चाहते हैं
क्यों और जीना चाहते हैं
अपनी उन तमाम लहूख़ोर सुबहों के लिए
जिनका पेशा है
महानगरों की मशीनी आँखों में
संवेदना का भद्दा और सतही बिम्ब उतारना
हमारा श्रम ख़रीदना
हमारा ख़ून उगाहना

न जाने क्यों हमें अच्छी लगती है
यंत्रणाओं की निरन्तरता
आख़िर हम गोश्तफ़रोशों की निगाहों में
क्यों टँगे रहना चाहते हैं
हम नहीं जानते
हमारे किस जुर्म की सज़ा है
दो बड़े हिस्सों में
कटे हुए समय को ढकेलते रहना
हम सिर्फ़ इतना जानते हैं—
हम जीना चाहते हैं

यह अलग बात है कि हमें
रोटियों की ख़ुशबू
और देहगन्ध का फ़र्क़ मालूम है
लेकिन हम यह नहीं जानते कि हमारी भूख के
मोर्चों पर सफ़ेद युद्ध का व्यूह रचते हुए
शहतूत की पत्तियाँ खाकर
रेशम के लच्छों में लिपटे हुए
चन्द हमदर्द

हमें क्यों सिखाना चाहते हैं
एहसानमन्द होने का सबक़?

ये कौन हैं सारे लोग
जो हमारे ख़ून से उगे हुए
पैसों के सुडौलपन पर
उछालते रहते हैं
हमारे अगले क्षणों का एहसास

और काँच के
रंगीन प्यालों में उभरती हुई
ग़लत शामों के लिए
कारख़ानों की भीड़
और चिमनियों के धुएँ के दबाव से
कबूतर के ताज़ा ख़ून जैसी शराब
निचोड़ते हैं

ये कौन हैं सारे लोग
जो बन्दरगाहों से हवाई अड्डों तक
दौड़ती हुई कारों से
हमारी बिकी हुई
एक तिहाई वक़्त की वसीयत के नाम
क़हक़हे फेंकते हैं

ये कौन हैं सारे लोग
जो असंवेदनशीलता की खुरदरी सतहों पर
हमारी ख़ामोशी का लगातारपन
कुछ और ठोस बना देते हैं
हमारी खिड़कियों
और रोशनदानों से छनती हुई रोशनी तक को भी
नीलाम कर देते हैं
ये कौन हैं सारे लोग

नक़ली क्रान्ति के विरुद्ध

मुट्ठियों में क्रान्ति
दिमाग़ों में अजीब क़िस्म की भ्रान्ति उगाते हुए
लोगों से बहुत बार
फुटपाथों पर टकरा गया हूँ

और दोस्तों की भीड़ में
मैं एक ही नस्ल की तमाम आवाज़ों के
सामूहिक हमले से घबरा गया हूँ

ताज्जुब तो ख़ैर नहीं होता
सिर्फ़ कोफ़्त होती है कि हर क्षण
किसी सही बात को तोड़ता हुआ
कोई सही आदमी उगता है

न जाने क्यों—
हवा में कीलें ठोंकता हुआ
चिन्तन
ज़रूरत से ज़्यादा गले के नीचे धँसने पर
बकवास लगता है

समय के असली दावेदार
अपनी-अपनी पीठ पर
इश्तिहारनुमा फ़तवे चिपकाकर घूमते हैं
और फेंक देते हैं
मैदानों में जलकुम्भी की तरह उगी हुई
जनता के मुँह पर
एक जुमला किसी अगली क्रान्ति का

एक लम्बे अर्से से
मैं किसी सही आदमी की तलाश में
भीड़ से अलग होने की कोशिशों से
जूझता हुआ—
शहर के चौराहों पर स्थापित
गांधी, लेनिन, नेहरू की प्रस्तर-मुद्रा
झेलने के बाद
स्वयम् पथरा गया हूँ!!

समयहीनता की तलाश

हम जानते हैं
ख़ेमों में बँटे हुए बहुत सारे लोग
हमारे अपने नहीं हैं
उन्होंने अपने-अपने हिस्से का समय
संत्रास के नाम लिख दिया है
और अस्मिता को चढ़ा दिया है सरेआम
नीलाम पर

अब वे सिर्फ़ हवा में चाकू धँसा कर
जीने का अभिनय करना चाहते हैं

हमारे हिस्से का समय
त्रिशंकुत्व से आक्रान्त है
हम किसी के हिस्से में नहीं हैं
हम समयहीन होना चाहते हैं

हमने समय की अर्थहीनता का
एक बड़ा हिस्सा
केले के छिलके की तरह
वक़्त की पहचान से नावाक़िफ़
बेमतलब बाँग देने वाले
अपने देश के मुर्ग़ानुमा नक़्शे पर फेंक दिया है
पूरे क्षेत्रफल पर
ग़ैरज़िम्मेदार लोगों का जुलूस
कई टुकड़ों में टूटकर फिसल गया है
एक लावारिस और राष्ट्रीय सन्नाटा
फनफनाता है

दिशाहीन हो गई है
सार्वजनीन बोध की सलीब ढोती हुई
एक लम्बी भीड़
अपरिचित आवाज़ें
एक छोर से दूसरे छोर तक तैरती हैं
हम किसी के हिस्से में नहीं हैं
हम समयहीन होना चाहते हैं

हमारी वापसी का आदिम दबाव
निरर्थकता के एहसास को
कुछ इतना तेज़ कर देता है कि हम आमने-सामने

एक दूसरे की आकृति नोचकर
जंगली कुत्तों की तरह भागते हैं
और समय की सही शिनाख़्त के बहाने
अपने ताबूतनुमा कमरों में बन्द होकर
अपना होना महसूस करते हैं

हमने दरवाज़ों पर चिपका दिया है
निर्णय की स्थितियों से
जूझने का क्लीव संकल्प
अनिर्णय की यंत्रणा भोगने का
लक्ष्यहीन विकल्प!
और खिड़कियों से बाहर
रास्तों, इमारतों पर
लाल क़िले से संसद-भवन तक
गुब्बारों में आक्रोश भर कर
तरतीबवार टाँग दिया है

हमारी लोकतंत्री दृष्टियों में
उल्टे-सीधे टँगे ढेर सारे लोग
आसमान फाँकते हैं
और हम आवेश के बारीक तन्तुओं की
तलाश में
अपने समय की पटरियों पर
किसी आत्महन्ता की तरह कट गये हैं

हमारे हिस्से का समय
हमारे कुछ आत्मीय नुमाइन्दों ने
हड़प लिया है
हमने पढ़ लिया है पूरा का पूरा वसीयतनामा
हम किसी के हिस्से में नहीं हैं
हम समयहीन होना चाहते हैं!!

टुकड़ों में बँटा आकाश

प्रकाशक :
वाङ्मयी प्रकाशन
178, महात्मा गाँधी रोड
कलकत्ता - 700 007

मुद्रक :
एस्केज़
8, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 007

आवरण :
शम्भू प्रसाद श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : बीस रुपए

पृष्ठ : 88

समर्पण : आशा 'अंशु'

अनुक्रम

कई टुकड़ों में बँटा आकाश	145
भीड़ ओढ़े लोग	146
संशय समय के चिटख़ने का	147
सूनापन खिलता है	148
छन्दहीन एक वर्ष और	149
चीख़ता पलाश-वन	150
टेकों में बँधी शाम	151
एक भी दरपन न दिखता	152
काँच के टुकड़ों जैसा समय	153
धुँधलाया दिशा-बोध	154
अजनबीपन का पीड़न	155
बन्धु सुनो!	156
वक़्त को न टोकना!	157
टूटते ही टूटते जाना	158
आओ आवाज़ पिएँ	159
सड़क पर एक चेहरा	160
समय का बीतना	161
चलो दरवाज़े टेरते	162
खिड़की के पार	163
लिखती-सी ख़त कोई	164
बिम्बों का काँपना	165
सोनाली क्षण चटके	166
बहुत दिन बीते	167
खेतों पर झुका आकाश	168
चाँदनी बटोरें	169
सेमल के फूल खिले	170
पीपल की टहनी से अँधियारा लटका है	171
एक सीधा अर्थ	172
माध्यमों में बँटकर	173
और समय बीत जाय	174
दृष्टियों के पार	175
साँझ ढले	176
एक छुअन फागुनी	177
बिम्ब थरथराते हैं	178

ओठ पर ताज़ा गुलाब
लौट गई हर आहट 179
एक दिया बालो तुम 180
अन्तर्मुख विवशता 181
वर्तमान बिछुड़ गया 182
कनेर के तले 183
आँखों के बीच कहीं 184
मौन का पिघलाव 185
ओ सुनेत्रा 186
एक पंखुड़ी जवाकसुम की 187
दर्पण की ओर मुँह करो 188
जीने का मौसम 189
ओ मेरे अन्तरंग! 190
कुहरे में डूबे नगर के साथ 191
हिरण्य-गुलाब 192
टूटा सेतु 193
तुम्हारे बग़ैर 194
अनामा मत्स्यकन्या के नाम 195
एक गंगाजली शाम की अप्रत्याशित मौत 196
ठंडी सुबह : टूटे रेशे 197
निष्कलुष हँसी के लिए 198
हमारे बीच की दूरी नहीं टूटती 199
भरे बेला फूल आँचल में 200
दफ़्तर से लौटता हुआ 201
ऐसी कुछ बात हुई (युद्ध-अकाल : वियतनाम) 202
धानों का देश (एक अकाल-यात्रा) 203
माटी की गन्ध लिखें 204
छन्द-पुरुष की यंत्रणा 205
कहीं से आती नहीं है बाँसुरी की धुन 206
मन के बिम्ब रहे अनदेखे 207
दर्द के अनाम छन्द 208
ख़ुशबू लिखी कोरी किताब 209
बाँट दो चिकना उजाला दूधफेनी 210
जनवादी हरापन 211
आँगने गुलाब झरे 212
उजला-उजला दर्द जिया है 213
214

कविता में ख़ुशबू लिखते हुए
अपने आकाश की तलाश

"टुकड़ों में बँटा आकाश" मेरे बाहर भीतर और इर्द-गिर्द के वाङ्मय आकाश की पहचान और अन्विति का एक दरका चिटखा आईना है, जिसके कई टुकड़ों में प्रतिबिम्बित है मेरे रचना-संसार का कुछ हिस्सा और अंकित हैं मेरी कविता-यात्रा के कुछ परिदृश्य, कुछ पड़ाव ।

मेरी सहज दृष्टि में वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ भाव-व्यंजना अथवा मानसिकता के कई स्तरों को चीरती हुई चेतना की एक सर्वाधिक भास्वर भूमि है, जिसकी तरंगों का स्वाभाविक स्पन्दन ही कविता है । जो भाषिक संरचना के साथ शब्द-प्रतीक के माध्यम से जिए गए या मन की गहराई तक समझे-सहेजे गए क्षणों के काव्यात्मक पक्ष को उजागर करती है और अपने समय के मिज़ाज को अभिव्यक्ति की विभिन्न मुद्राओं या विधाओं में नए अर्थ एवं नए नाम देती रहती है । इसके अलावा मुख्य रूप से वस्तुओं एवं भावों के अन्तः सौन्दर्य तथा आन्तर आस्वाद के साथ इतिहास की अगली सम्भावनाओं को सहारा देती हुई अपने प्रस्थान या रवानगी का ज़रूरी संकेत देती रहती है ।

वस्तुतः कविता गमक की प्रतीति है, वह जहाँ भी जिस महल्ले या माहौल में होती है, उसकी सुगन्ध अथवा गुणवत्ता ही उसकी पहचान एवं मूल्य को आँकती-उभारती है । समझ की इसी रोशनी में स्वयं को तोड़ते-तराशते कविता की अन्तरंग गमक तक पहुँच पाने की कोशिश करता रहा हूँ ।

सच कहूँ तो, "कविता मेरे होने जैसा ही एक सच है"– हालाँकि जीवन में रोज़ी-रोटी की लड़ाई जारी रखते हुए मेरे ढेर सारे सच टूटे हैं, झूठे साबित हुए– जिनसे उम्मीद थी कि वे कविता में पैसों का मुनहला पेड़ उगायेंगे– इन्तज़ार में स्वयं ठूँठ हो गया, लेकिन कविता में जीने का सुख और उसकी ख़ुशबू दोनों मेरे हिस्से के आकाश और ज़मीन को पहचान बनाये रहे । शायद कविता लिखने की यही कुछ सार्थकता या शर्त उभरती-ठहरती है ।

"टुकड़ों में बँटा आकाश" आपके हाथ में है और मैं आपकी पहुँच के भीतर हूँ ।

—छविनाथ मिश्र

कृष्ण जन्माष्टमी
27.08.1986

कई टुकड़ों में बँटा आकाश

कई टुकड़ों में बँटा आकाश
लगता है कि जैसे–
गिर गया हो हाथ से दरपन ।

उभरते हैं बहुत सारे कटे-टूटे अक्स
लेकिन वक़्त इतना बेमुरव्वत है–
कि वह संवेदनों का सही अंकन
प्यार, पीड़ा, आदमी या शख़्स
यानी एक लम्बा सफ़र
एक पूरी उमर
सब का सब अचीन्हे दायरों में
क़ैद करके भाग जाता है–

फ्रेम-सी लटकी दिशाएँ
बहुत सूनी, बहुत ख़ाली
अँट गया है, सिर्फ़ ख़ालीपन ।

इस तरह धुँधला गई है रोशनी की सतह
एक भी चेहरा उजागर नहीं होता
बड़ी तेज़ी से अँधेरा उग रहा है
पुतलियों में बन्द-सी हो गई है हर सुबह
सामने परछाइयों के
सिलसिले ही सिलसिले और कितने नाम
जिन्हें सूरज रोज़ किरणों के
सुनहले चाक़ुओं से काट जाता है–

सर्द यादें हुलसती हैं
बाँधती हैं
किन्तु फिर-फिर बँध न पाता और कोई मन ।
कई टुकड़ों में बँटा आकाश......

भीड़ ओढ़े लोग

भागते हैं
बहुत चेहरे और कितने ही मुखौटे
भागते हैं, भीड़ ओढ़े लोग ।

हवा में तिरता हुआ कुछ
हर इकाई को अकारण फींचता-सा
दृष्टि में अटका हुआ क्षण
वस्तु सत्ता से परे कुछ
वृत्त कोई खींचता-सा
लग रहा जैसे कहीं कुछ भी नहीं है
सिर्फ़,–हाँ, हाँ–सिर्फ़
कुछ है भी अगर–
तो यंत्रगत संयोग
भीड़ ओढ़े लोग ।

धूप की सोनल मुँदरियों-सा कहीं कुछ
निगल जाने की नियति से जुड़ गया है
शाम कितनी फूलपंखी मछलियों-सी
तैरती है, और मछुवाहा समय का
ठीक घर की ओर बेबस मुड़ गया है–
विन्दुवत कुछ दीखता है जहाँ थे हम, वहीं
हाँ, हाँ–वहीं
और हम सब कुछ नहीं हैं–
सिर्फ़ लगता है प्रयोग
भागते हैं–
भीड़ ओढ़े लोग ।

संशय समय के चिटख़ने का

पर्त-पर्त धुंध और
टूटा संकल्प कहीं गन्ध-सेतु रचने का ।

प्यार की तलाश–
अर्थहीन यह प्रसंग बन्धु !
राहों में बिके हुए देही आयामों ने
तोड़ दिया
अर्थ नया जोड़ लिया
जूड़े में बँधी हुई जवाकुसुम शामों ने
पोर-पोर सुन्न और
आँखों में प्रश्न लिखा जीने का बचने का ।

चेहरों पर उगा हुआ नामहीन संवेदन
सूने में वेध गया
गहरे सम्बन्धों को
रीत गया–
मन यों ही बीत गया
रोशनी विरासत में मिली सिर्फ़ अन्धों को

द्वार-द्वार बन्द और
जीते हैं संशय हम समय के चिटख़ने का
टूटा संकल्प कहीं
गन्ध-सेतु रचने का ।

सूनापन खिलता है

बेला की टहनी पर
सूनापन खिलता है ।

इतना निस्संग क्षितिज
और सेतु टूटा-सा
लगता है
अपनापन दूर कहीं छूटा-सा
अर्थहीन गन्ध उड़ी
यादों की भीड़ जुटी
सारा मन छिलता है
सूनापन खिलता है ।

पोखर में प्रतिबिम्बित
आसमान-सा ठहरा
जीने की
शर्तों पर मरे क्षणों का पहरा
मुट्ठी में बन्द मलय
समय किसी बूढ़े की
गर्दन-सा हिलता है
सूनापन खिलता है ।

छन्दहीन एक वर्ष और

बीत गया
छन्दहीन एक वर्ष और ।

सूर्यमुखी के तिकोन सुआपंख पात पर
किरणों की भाषा में कितनों के नाम लिखे
जीवन की गन्ध-मुग्ध इकलौती बात पर
अपने ही कथ्य-कथन
सब के सब ग़ैर दिखे
छूता है कहीं नहीं
क्षण-क्षण के होने या चुकने का बोध
मन की इस जड़ता पर
कौन करे ग़ौर ?
........एक वर्ष और ।

इतना अवकाश कहाँ, तुमसे कुछ कहूँ मीत
वस्तुमुखी संवेगों की पिछली याद-कथा
स्वर की दहलीज़ मौन, रीत गए गीत
लिखता है समय कहीं
रचना की देह-व्यथा
उगता है, यहाँ वहाँ–
फूलों की आँखों में कोई संवाद
किलक उठे बाग़ों में
आमों के बौर
बीत गया
छन्दहीन एक वर्ष और ।

चीख़ता पलाश-वन

चीख़ता सिवान पार का पलाश-वन
फूलों को भून रहे हैं मशीन गन ।

मुखर हुई प्राणों में युद्धमुखी 'मेघना'
पद्मा में तैर गई
रक्तिम संवेदना
ठहर गई कन्धों पर माटी की गन्ध
जूझ रही है, कोई प्यारी सौगन्ध

लोकदहन एक ओर, मुक्ति-यज्ञ एक ओर
हिंसा की अग्निशिखा
रक्त का हवन
चीख़ता सिवान पार का पलाश-वन ।

आग में दहकता है, सोने का देश
मुक्तिगान रचता है, आहत प्रतिवेश
हरे-हरे खेत और
भरे-भरे नदी-ताल
रक्तस्नात मुक्तकेश, एक रंग लाल-लाल

झेल रहे हैं नृशंस दृष्टि का दबाव
तोते-सी देह और
मैना-सा मन
चीख़ता सिवान पार का पलाश-वन ।

टेकों में बँधी शाम

लाल-पियर दीख रहा पश्चिमी चबूतरा
गोधूली छील रही है जैसे सन्तरा—

सूरज के हाथ कई चुके अर्थ बेचती
क्षितिजों के नाम
एक बेबसी सहेजती

छिलकों के बीच घिरी दृष्टि पर फफूँदी-सी
ज़िन्दगी खुरचती है दृष्टि-बोध मरा-मरा ।

पेड़ों की टुनगी पर क्षण रेंगे अनबीते
टूट गए धीरे से
किरण-किरण के फ़ीते

रोशनी दुबकती-सी जंगल के पार गई
आसमान बाँट रहा यादों का आसरा ।

अँधियारा टहल रहा है किसी सिपाही-सा
पूरा परिवेश तना है
नौकरशाही-सा

गन्धिल स्वर क़ैद कहीं प्यार की कचहरी में
टेकों में बँधी शाम, खोज रही अन्तरा,
लाल-पियर दीख रहा
पश्चिमी चबूतरा ।

एक भी दरपन न दिखता

एक भी दरपन न दिखता
किसी की पूरी विवशता
जो कहीं परखे, सहेजे
सहज-सीधा कुछ उभारे ।

चुक गई है एक बेवा सदी जैसी
बात जो महकी कभी थी
ओठ से मन तक खिली-सी

मन सरीखा मन न दिखता
जो कहीं पल भर
हुलस कर
किसी को आँके-उरेहे
किसी को सिरजे-सँवारे ।

एक संकट से उबर कर एक संकट से घिरा-सा
युग बहुत कुछ लग रहा है
टूट कर औंधा गिरा-सा

हर क़दम अपशकुन दिखता
खप न पाए कहीं
चीन्हे मुँहों तक आए कलेजे
कौन डूबे को उबारे ।

सहज-सीधा कुछ उभारे
एक भी दरपन न दिखता ।

काँच के टुकड़ों जैसा समय

अनायास ही तोड़ दी गई हों जैसे घड़ियाँ सड़कों पर
समय टूट कर
बहुत-बहुत बारीक काँच के टुकड़ों जैसा
बिखर गया है

खण्ड-खण्ड में बँटी बँटी-सी दिशा-काल की चुभती दूरी
और नापने को सारा आकाश पड़ा है
दौड़ रही चेतना यंत्रवत
हर लमहे पर मूल्य जड़ा है
भीड़नुमा अस्तित्व नगर का
राजपथों से चौराहों-गलियारों तक घायल कुत्ते-सा
घाव जीभ से चाट-चाट कर
बिसरे हुए क्षणों का टूटा सेतु लाँघकर
आगे-पीछे पसर गया है ।

दुखती हुई रगों को छूकर जी लेने की दौड़-धूप में
कहीं रोशनी और अँधेरे का समझौता
टूट गया है
रोज़ रविश या बन्दिश जैसी रेखाओं का
खिंचते रहना
किसी अर्थ की खींच-तान में
प्यार अपरिचय जैसा बेरुख़
किसी विन्दु पर छूट गया है
साँसें दुहता हुआ अपरिचित मौन टूट कर
अस्तमान सूरज के पहले
जीवन की बेताल-बेडौल
गहराई तक उतर गया है
समय टूटकर
बहुत-बहुत बारीक काँच के टुकड़ों जैसा
बिखर गया है ।

धुँधलाया दिशा-बोध

गूँगे आतंक
और दृष्टिहीन निश्चय के साथ
हम कहाँ जाएँ ।

ख़ेमों में बँटी हुई जीने की शर्तों ने
मूल्यों की आख़िरी इयत्ता को तोड़ दिया
आहत परिवेशों में नुचे हुए अर्थों को
लावारिस सम्पाती
बोधों पर छोड़ दिया

वक़्त की क़नातों के
इर्द-गिर्द मँडराती गोश्तख़ोर संज्ञाएँ
दृष्टिहीन निश्चय के साथ
हम कहाँ जाएँ ।

फूलों की पँखुरी पर उगा हुआ हस्ताक्षर
जाने क्यों कन्धों पर बन्दूक़ें थोप गया
यह कैसी लाचारी
संग्रामी स्थिति में
टहनी जैतून की हथेली पर रोप गया

धुँधलाया दिशा-बोध
साथी हैं, विघटन, संत्रास और कुंठाएँ ।
गूँगे आतंक
और दृष्टिहीन निश्चय के साथ ।
हम कहाँ जाएँ ।

अजनबीपन का पीड़न

दरवाज़े पर ठूँठ
और भीतर कमरे के नये फ़र्श पर
उभरी हुई चिपचिपी सीलन ।

पूरे घर में कई तरह के अनुत्तरित कुछ प्रश्नों जैसी
हवा रोज़ दीवारों से टकराकर मुझको गुहरा जाती
एक संयमित दूरी तक जाकर
मन वापस आ जाता है
टोना पढ़ती-सी क्षण-क्षण पर
अगली सुबह प्यार से पिछली सारी बातें बिसरा जाती
सह लेती है साँझ
आततायी आदिम अँधियारे का दबाव
बाहर भीतर तिरता रहता एक अजनबीपन का पीड़न ।

कल-पुर्जों जैसी सक्रियता ओढ़े हुए नगर लेटा है
खिड़की से नीले आईने-सा
टुकड़ों में आसमान तो दिख जाता है
लेकिन कहीं किसी टुकड़े में अपनेपन की छाप नहीं है
सूरज मेरी छत पर आकर
जीवन का कुछ अर्थ असंगत बेमतलब-सा
लिख जाता है
आँख मूँद लेता हूँ
शायद अगल-बग़ल की सारी सड़कों पर आवाज़ें
लील रहा है जैसे कोई
अजगर देही काल सरीहन ।

लीची की अफला शाखा पर एक कबूतर गुमसुम बैठा
कुछ चुगने का ख़्याल पंख में चिपकाए-सा अभी उड़ गया
अपने ही कमरे में अपने होने का एहसास ढूँढ़ता
भीतर 'मेरापन' उकेलकर
कीलों जैसे तेज़ नुकीले ख़ालीपन को कौन जड़ गया

पास सामने ही पोखर में
आड़े-तिरछे कुछ निहारते कोई अर्थ खिसक जाता है
पीछे छूट-छूट जाता है
बत्तख़ का अबोध जल-क्रीड़न ।

बन्धु सुनो!

बन्धु! सुनो,
टुकड़ों में टूट रहा आसमान
एक साथ चलो कई लाख हाथ थामें ।

समय उठा तेज़ हुईं दबी हुई आहटें
पुलक उठीं धरती के माथे की सलवटें
धूप ने बग़ावत की
दहक उठी फूलों के ओठ जड़ी रोशनी
अश्व हुए विशृंखल, लुढ़क गया अंशुमान
टूट गईं किरणों की
रेशमी लगामें ।

बिदक गई हवा कहीं अर्थ कुछ नया होगा
बेचारे निष्कर्मा क्षितिजों का क्या होगा
'अघटन' का द्वार खुला
टूट गया
नक़ली आवाज़ों का सिलसिला
शिखरों पर आरोपित ढहे सभी कीर्तिमान
लिपट गईं
मृत्युमुख विकल्पों से शामें ।

वक़्त को न टोकना!

बन्धु इधर आने दो
वक़्त को न टोकना

क़ैची की तरह तेज़ अभी-अभी गुज़रेगा
पियराए पातों को
छाँटेगा, कतरेगा
हट जाओ
हट जाओ
थोड़ा-सा कट जाओ
अगले का स्वागत है—दरवाज़े-दरवाज़े
नागफनी रोपना
वक़्त को न टोकना ।

आने दो
फूलों का इत्रपन उड़ेलेगा
हर गुदाज़ सपने का बाँकपन उधेड़ेगा
ख़ुद को तुम
बिछवा दो
पेट-पीठ नपवा दो
ठीक-ठीक नापेगा,
पेशा है,
रोशनी-अँधेरे का ब्योंतना
वक़्त को न टोकना ।

टूटते ही टूटते जाना

जी रहे हैं हम हवा के स्तरों पर
आधुनिक मन का अपरिचय
और अपना ही विभाजन ।

खीझकर अपने समय को दृष्टियों में आँट लेना
और मन को गणित रेखा के नियम से बाँट देना
यंत्रणा है, यातना है
देह के सीमित समय से जूझना कितना विसंगत
जहाँ हमसे ही हमारा सर्वनाशी सामना है
उग रहा है
हर जगह कोई अनिश्चय
और चेहरों पर लिखा है
रक्तशोषी समय-यापन ।

टूटते ही टूटते जाना क्षणों के सिलसिले का
और खिंचते ही चले जाना उभरते फ़ासले का
अर्थ हम जीते नहीं हैं
सिर्फ़ जीने के लिए ही प्रश्न ओढ़े पड़े रहना
बात है या दंश कोई जिसे हम छूते नहीं हैं
रच रहे हैं
हम कहीं कुछ मौन विस्मय
और चिन्तन की दिशा का
एकआयामी खुलापन
और अपना ही विभाजन ।

आओ आवाज़ पिएँ

महँगी हैं वस्तुएँ
आओ आवाज़ पिएँ

मिल-जुल कर भीड़ रचें
भाषण,
वक्तव्य चखें
जीने के लिए सिर्फ़
झूठे संवाद जिएँ
आओ आवाज़ पिएँ ।

संसद से मंचों तक
मंचों से पंचों तक
पंचों की मुँहबोली
दूध नदी-सी उतरी
आस-पास है पसरी
चाहें तो पी लें
कंगालिन
भूखी ऋतुएँ ।
आओ, आवाज़ पिएँ ।

सड़क पर एक चेहरा

भीड़ से कटकर
सड़क पर
एक चेहरा गिर गया है
लपक कर मैने उसे अपनी हथेली पर रखा तो
लोग कहते हैं कि यह चेहरा
तुम्हारा तो नहीं है
समझ में आता नहीं है
क्या ग़लत है
क्या सही है
और मेरा अहं
ऐसे ही हज़ारों लांछनों से घिर गया है
एक चेहरा गिर गया है ।

साथ ले जाना मगर पहले प्रमाणित तो करो तुम
क्या पता, कब कहाँ ख़ुद को
रास्ते में फेंक आए
यही क्या कुछ सोचता हूँ
और
ख़ुद को खोजता हूँ
स्वयम् का होना
न होना भी अचानक दृष्टियों में तिर गया है
भीड़ से कट कर
सड़क पर
एक चेहरा गिर गया है ।

समय का बीतना

किरण आँजें
धूप बाटें–
सूर्य से सीखें हथेली पर समय को चित्रना ।

कहीं रचना के क्षणों का कुनमुनाकर टूट जाना
किसी निश्चय का
समूचा अर्थ अस्वीकारना
चेतना की घाटियों में
सिर्फ़ कुहरा
बहुत गहरा
दृष्टि रोपें
धुन्ध छाँटें–
अर्थ कुछ रखता नहीं जल पर लकीरें खींचना ।

दायरों में क़ैद जीवन मुट्ठियों में बन्द है संवेदना
गढ़ न पाती है–
नया संकल्प कोई अधकटी संचेतना
एक सन्नाटा
नसों को चीरता है
चीख़ता है
होठ खोलें
मौन काटें–
इस तरह अच्छा नहीं लगता समय का बीतना ।

चलो दरवाज़े टेरते

साँझ हुई
टूट गया धूप का तनाव
चलो–
दरवाज़े टेरते ।

दिन भर की सतही स्थितियों को तोड़कर
टूटे क्षण भीतर गहराई तक फिसल गए
कितने अनभोगे क्षण
सहमे ख़रगोशों की तरह कई झुण्डों में
दूर निकल गए, बहुत दूर निकल गए
होठों पर याद की लकीर एक
काँप गई
तेज़ हुआ टूटन का अनकहा दबाव
चलो–
दरवाज़े टेरते ।

बिम्बों से कटा हुआ संवेदन ओढ़कर
अँधियारा दूर कहीं जंगलों पहाड़ों से
यहाँ-वहाँ उतर गया
अन्तरंग आहट का एक प्रश्न अनसुलझा
ख़ाली ताबूतनुमा कमरे की
खिड़कियों-मुँडेरों पर ठहर गया
आरोपित प्रतिश्रुति को बेबसी
उछाल गई
आँखों में झूल गया दैनिक दुहराव
चलो,
दरवाज़े टेरते ।

खिड़की के पार

खिड़की के पार दूर बादल मँडराए
भीतर ही भीतर कुछ सपने मँजराए ।

याद-गन्ध लिखी लिखी पाती-सा मौसम
बातों ही बातों में जुड़ता-सा मौन क्रम
यक्ष-व्यथा ओढ़े आकाश पड़ा गुमसुम

धुले-धुले, बीते क्षण ऐसे अँकुराए
जैसे अहिवाती का
आँचल भर जाए ।

वन-श्री को प्यार से सँवार गया वनमाली
खेतों की बाँहों में बँधी-बँधी हरियाली
संगोपन तोड़ रही हो जैसे 'घरवाली'

लिपे-पुते चौरों पर दिए झिलमिलाए
बरसों से मुरझे
तुलसी-दल कजराए ।

मेहँदी के रंग-रँगे आगामी क्षण उभरे
पेंगों में खिंच आए दूर-दूर के चेहरे
सिंदुराए आँगन में सावन के गीत ढुरे

क्षितिजों के गाँव कहीं बिजुरी इठलाए
दिशा-दिशा बरखा से
काजल अँजवाए ।
खिड़की के पार दूर बादल मँडराए ।

लिखती-सी ख़त कोई

झुक आई छज्जों पर बरखा की शाम
लिखती-सी खत कोई
पीड़ा के नाम ।

बस्ती से दूर कहीं आसमान टूट गया
बैगनी अँधेरे-सी तिरती है याद
लरक गया आँगन का
सूर्यमुखी फूल
आँखों की तरह धुले, तुलसी के पात

जूझ गया पुरवा से
सूर्य-मुख प्रणाम
पीड़ा के नाम ।

सँझबाती की वेला जाने कब बीत गई
पिघल गए चुपके से सारे अहसास
दूरी को झेल गए
देहरी-दुआर
भटक गई गीले फैलावों में साँस

नामों से कटे-कटे
रास्ते तमाम
पीड़ा के नाम ।
झुक आई छज्जों पर बरखा की शाम ।

बिम्बों का काँपना

एक ही विधान और बिम्बों का काँपना
वर्ष भर जिया मैंने ।

धुँधलापन झेल रहे झूठे प्रतिमान
और अक्स सब सुनहले
वस्तुएँ रहीं नहीं, जैसे थीं पहले

उतर गए गहरे कुछ
सम्प्रेषित अर्थों को कसे-कसे शब्द
अपना ही नाम–
और पिछले सन्दर्भ कई रंगों में आँकना–
वर्ष भर जिया मैंने ।

आँखों में झूल रहे ऋतुपंखी उद्वेलन
और गीत अनलिखे
मन की मणिप्रभता को समय कहाँ परखे

एक क्षण पकड़ने तक
अलग अलग वृत्तों में अस्त हुआ सूर्य
यादों की टहक
और घर-बाहर मित्रों में अपने को बाँटना
वर्ष भर जिया मैंने ।

सोनाली क्षण चटके

टूट गया सन्नाटा
मौन कहीं
ठहर गया ।

नीबूई डैनों से खिड़की सहलाती
सिरहाने तक आई
धूप चहचहाती
तुमने अँगड़ाई ली आसमान दुहर गया
मौन कहीं ठहर गया ।

ओठों पर मौसम की चित्र-कथा आँकती

हवा चली गई
घिसे-पिटे अर्थ हाँकती
सोनाली क्षण चटके सूनापन सिहर गया
मौन कहीं ठहर गया ।

जीवन के अगले सन्दर्भ को सँवारती
दिन भर की बात चली
सपने दुलारती
जूड़े में गुँथा फूल आस-पास बिखर गया
मौन कहीं ठहर गया ।

जीने की काँक्षाएँ प्यार में भिगोई
दरवाज़े पर जड़ता
प्रतिश्रुतियाँ कोई
छोटे-से आँगन में अंशु-केतु फहर गया
मौन कहीं ठहर गया ।

बहुत दिन बीते

बहुत दिन बीते कि तुमको
ख़त न लिख पाया ।

कहीं रत्ती भर हँसी दिख जाय
ओठों पर सुनहरी–
इसलिए दिन भर उजाला कूटता हूँ
एक क्षण अपना नहीं है–
जहाँ ख़ुद को जोड़ पाऊँ
मैं निरन्तर टूटता हूँ और केवल टूटता हूँ
क्या कहूँ–
क्यों उभर आई कई खंडों में तुम्हारे प्यार की
बेनाम छाया
बहुत दिन बीते कि तुमको
ख़त न लिख पाया ।

विवशताएँ हैं कि रोटी और ऑफिस
फ़र्क़ कुछ रखते नहीं हैं
इसलिए जी भर अँधेरा नोचता हूँ
एक पूरे शहर जैसा जिस्म
मेरी ऐंठनों में क़ैद लगता
बदहवासों की तरह मैं सोचता हूँ
किन्तु इसका अर्थ
यह हरगिज़ नहीं है–
बेवजह मैंने तुम्हारा
दिल दुखाया
बहुत दिन बीते कि तुमको
ख़त न लिख पाया ।

खेतों पर झुका आकाश

बहुत पीछे छोड़ आए
बाँस की खुरदरी वंशी
और खेतों पर झुका आकाश ।

कई यादें—
लोकगीतों के स्वरों में थरथराती हुई
अब भी, किधर जाएँ
एक पूरी गीतवेला सुई-सी चुभती हुई
कैसे भुलाएँ
वेदनाओं से जुड़ा लगता व्यतीत
किन्तु सब लगते पराए
गाँव-घर, सीवान, जंगल और रक्तपलाश ।
बहुत पीछे छोड़ आए....

यंत्रणाएँ—
समझ में आता नहीं है कहाँ इनसे
अलग कटकर जिएँ
और चुकती दृष्टियाँ कब तक निराश्रय
टँगी कुहरा पिएँ
अब अपरिचय ही अकेला मीत
अर्थ सब लगते धुआँए
तोड़ आए सेतु परिचय और गीले प्यार का मधुपाश ।
बहुत पीछे छोड़ आए
बाँस की खुरदरी वंशी
और खेतों पर झुका आकाश ।

चाँदनी बटोरें

चलो कहीं
जंगल में चाँदनी बटोरें ।

हम हैं, जो धुआँ और कुहरे को कूटते
गाँवों से नगरों तक
आसमान कूँथते

कहीं नहीं उजलापन
आओ,
यों ही टहलें
बाहर कुछ दूर चलें
भीतर की चौहद्दी अनमनी अँजोरें
चाँदनी बटोरें ।

रीत गए अर्थों को अँधियारा छीटता
लोहे के पौधों पर
मौसम सर पीटता

यंत्रिल रोशनियों के
फूल गन्ध-हीन खिले
पँखुरी के ओठ सिले
चलो, कहीं प्यार-गन्ध चन्दनी अगोरें
चलो कहीं
जंगल में चाँदनी बटोरें ।

सेमल के फूल खिले

सेमल के फूल खिले, छाँह थरथराई
जीवन के पृष्ठ खुले
याद उभर आई ।

महुये के फूलों ने मादक स्वर छेड़ा
फागुन के ओठ हिले
बाँह कसमसाई ।

बाँटा खलिहानों ने खेतों को न्योता
हसियों के दूत चले
फ़सल गुनगुनाई ।

फूले वन-टेसू को सूनापन निगले
धुँधलाये क्षण मचले
ऊँघती तराई ।

धरती का गन्ध-लिपा आँगन अकुलाया
सपनों के शिखर गले
पीड़ा गदराई ।

मौसम ने कुछ बिसरे पल-छिन को टोका
कुछ कहने के पहले
आँख डबडबाई ।

पीपल की टहनी से अँधियारा लटका है

पीपल की टहनी से अँधियारा लटका है
आँगन में उतर रही है
बैरिन साँझ ।

कंगन के स्वर उभरे सपने कुछ खनक गए
ड्योढ़ी के आस-पास धुँधले क्षण ठुनक गए
तालों के मुँह पर कुछ उजियारा छिटका है
दरपन में सँवर रही है
सौतिन साँझ ।

कुंठा की एक लहर अगवारे दौड़ गई
केंचुल-सी याद-किरण पिछवारे छोड़ गई
पोर-पोर बाँसों का बेचारा चिटका है
जंगल में पसर रही है
नागिन साँझ ।

धीरे से बंजारिन 'बंसी' कुछ बोल गई
आर-पार पीड़ा की वन-हंसी डोल गई
नाता तो जीवन का प्यार से निकट का है
पल-छिन में मुकर रही है
बाँझिन साँझ ।

एक सीधा अर्थ

एक सीधा अर्थ देता हर कली का चटक जाना
इन दिनों अच्छा नहीं लगता
तुम्हारा रूठ जाना ।

घास पर लेटी सुबह की धूप जैसी बात मन की
एक ऐसी बात है–
जिसका न होना अखरता है
कई चीन्हे द्वन्द्व कितनी मूक-सी परिचित द्विधाएँ
सिमट जाती हैं कहीं तब प्यार का क्षण उभरता है

एक आदिम वेदना है, सूर्य का कुछ दहक जाना
इन दिनों अच्छा नहीं लगता
तुम्हारा रूठ जाना ।

एक टूटे हुए दरपन-सी भला क्या ज़िन्दगी है
जहाँ कोई एक पूरा
बोध खण्डित दीखता है
कहीं भी कुछ और से कुछ और हो जाना सही है
किन्तु खण्डित प्यार जाने क्यों जनम भर चीख़ता है

ताप से ही जुड़ा लगता छाँह का कुछ सरक जाना
इन दिनों अच्छा नहीं लगता
तुम्हारा रूठ जाना ।

एक अन्तर्लीन पीड़ा जिसे तुम भी झेलती हो
और जिससे जूझने का व्रत मुझे भी चीथता है
भीड़ में खोया हुआ हर क्षण तुम्हें ही ढूँढ़ता है
दृष्टियों में एक सपना
उबलता है, सीझता है

एक सच्चाई– अँधेरे में किरण का भटक जाना
इन दिनों अच्छा नहीं लगता
तुम्हारा रूठ जाना ।

माध्यमों में बँटकर

माध्यमों में स्वयं बँटकर और जीना
बहुत मुश्किल है
सुनो, मेरी नवीना !
तुम्हें अच्छा नहीं लगता, यह विडम्बन यह विभाजन
कई खण्डों में चिटख़कर मैं अकेला बँट गया हूँ
कांक्षाओं के सुनहरे
और सँकरे चौखटे में
एक टूटे हुए दरपन की तरह मैं अँट गया हूँ
सिर्फ़ इतना ही पता है–
विवशता है, यंत्रणा के जंगलों की
नन्दिनी-सी वेदना को रोज़ दुहना और पीना
बहुत मुश्किल है,
सुनो मेरी नवीना !

मैं समय की ग़लत तीखी छेनियों से कुछ अँधेरे की तरह ही
कट गया हूँ
क्या कहूँ मैं धूप इतनी पी गया हूँ–
एक सूखे ताल के फैलाव जैसा फट गया हूँ
जन्मभर के तुम सँगाती
शेष थाती इधर फैलाओ हथेली
लो सँभालो गीत-मुँदरी, स्वर नगीना
माध्यमों में स्वयं बँटकर और जीना
बहुत मुश्किल है,
सुनो, मेरी नवीना !

और समय बीत जाय

आओ, हम चुपके से
आँखों में उतर जायँ
और समय बीत जाय,
कुहनी पर टिके हुए चेहरे का धुँधलाना
टूटे एहसासों को जोड़ रहा हो जैसे
यादों की साक्षी में होठों का भिंच जाना
लम्बी तनहाई को तोड़ रहा हो जैसे
भीतर तक धँसी हुई
लम्बाई काट दें
आओ हम खुरदरे तनावों से उबर जायँ
और समय बीत जाय ।

बाँहों के घेरे में सन्नाटा लिख जाना
मौसम की यह आदत ठीक नहीं लगती है
ऐसे में गन्ध-मुखर साँसों को झुठलाना
मन की लाचारी है,
सिर्फ़ धुआँ रचती है
दो हिस्सों में पूरा
दर्द चलो बाँट लें
आओ हम दरपन में
एक साथ उभर जायँ
और समय बीत जाय ।

दृष्टियों के पार

दृष्टियों के पार,
आकुल देहरी पर एक चेहरा अभी उभरा, अभी उभरा
और जाने क्यों तुम्हारा याद आना बहुत अखरा बहुत अखरा ।

रोज़ 'दूधों और पूतों' नहाकर आई सुबह-सी
एक अल्हड़ गीतवेला
सामने ढल गई होगी
रूप की हर पाँखुरी भी धुल गई होगी अचानक
फागुनी आकाश की
गमकी हुई नीली सतह-सी
साफ़ दिखता
कहीं काजल, कहीं बिन्दी, कहीं सेंदुर यहाँ बिखरा वहाँ बिखरा
और जाने क्यों तुम्हारा याद आना बहुत अखरा बहुत अखरा

खेत से खलिहान तक पसरी हुई चैती फ़सल-सी
बांस-वन में टिक गई होगी कहीं कोई प्रतीक्षा
जुड़ गए होंगे कई क्षण
ओठ से भीगी पलक तक
साँझ गदरा गई होगी, प्यार की पूरी ग़ज़ल-सी
याद आता है,
अकेले में
तुम्हारा पीपलों के नये पातों-सा सुनहरा बदन निखरा
और जाने क्यों
तुम्हारा याद आना, बहुत अखरा बहुत अखरा ।

साँझ ढले

साँझ ढले
उभर गये
यादों के सिलसिले ।

तैर गई आँखों में एक साध खण्डिता
पूछ गई पीड़ा से लुप्त प्यार का पता
दीप जले
द्वार-द्वार
मुखर हुए फ़ासले,
साँझ ढले ।

आँगन में क़ैद मलयगन्धी स्वर छीज गया
अँधियारा पिघल गया, पोर-पोर भीज गया
ओठ खुले
गीत उगे
पलकों की छाँव तले
साँझ ढले ।

उँगली में बँधे हुए कितने छन बीत गए
दूरी के अर्थ भरे संवेदन रीत गये
फूल खिले
गुज़र गए
ख़ुशबू के क़ाफ़िले,
साँझ ढले ।

एक छुअन फागुनी

एक छुअन फागुनी पलाश-वन उकेरे
मेरा ही नाम कहीं
बाँसुरिया टेरे ।
बुझी हुई याद को हथेली पर रेखना
ऐसे में प्रिय लगता मुड़-मुड़कर देखना
उँगली में बँधा हुआ
कितना कुछ अनलेखा
बार-बार दहके संवेगों को घेरे
मेरा ही नाम कहीं
बाँसुरिया टेरे ।

टीसते अकथ्यों को, कहाँ-कहाँ बाँट दूँ
एक और मौसम क्या सूने में काट दूँ
सेमल के फूलों पर
लिखा हुआ संवेदन
सूँघ-सूँघ भागे कस्तूरिया सबेरे
मेरा ही नाम कहीं
बाँसुरिया टेरे ।

बिम्ब थरथराते हैं

बिम्ब थरथराते हैं
क्षण-क्षण टकराते हैं
टूटकर गिरा कहीं पत्ता
बिखर गई
मौन की सत्ता
अर्थ चरमराते हैं,
बिम्ब
थरथराते हैं ।
गहरा और हुआ कुहरा
उभरा एक नहीं चेहरा
शब्द
फरफराते हैं
बिम्ब थरथराते हैं !

ओठ पर ताज़ा गुलाब

काश!
यदि मैं पकड़ पाता एक क्षण की भंगिमा को
प्यार की पहली किरण से
लिख दिया जिसने तुम्हारे
ओठ पर ताज़ा गुलाब ।

वह हँसी प्रत्यूष वेला-सी तुम्हारी
याद पड़ता है नहीं
कब-कहाँ देखा
फिसल जाते हैं, हज़ारों नाम
संज्ञाएँ कहीं टिकतीं नहीं
क्या कहूँ–
क्या नाम दूँ मैं मान लो, कादम्बरी या पत्रलेखा
वन्दना की नृत्य-मुद्रा को समर्पित आँख में
पल भर छिपाकर
एक पूरी सुबह मेरी आँख में तुमने उड़ेली
छन्दमय हो गया
मेरे प्राण का
आकाश
हो गया मैं धन्य यानी लग गई हो हाथ जैसे
रोशनी से लिखी कोई
सृष्टि की पहली किताब
ओठ पर ताज़ा गुलाब ।

लौट गई हर आहट

यादों की सूली पर
कितने सन्दर्भ टँगे, कितने संकेत,
जूड़े में जवाकुसुम, शाम नहीं टाँकेगी
सुबह गए-बीते का नाम नहीं आँकेगी
आँखों में प्रश्नों के ढूह बहुत उभरे हैं
पोखर के तीर कई गुमसुम क्षण ठहरे हैं
मेड़ों की बाँहों में–
सन्नाटा झेल रहे हैं उदास खेत ।

मुट्ठी में बन्द नये अर्थ कौन खोलेगा
एक पर्त मौन प्यार व्यर्थ कौन खोलेगा
पीड़ा से सपनों के रिश्ते कुछ गहरे हैं
जूझ गई स्पृहा कि घाट-घाट बहरे हैं
लौट गई हर आहट
बाट जोह-जोह थकी नदिया की रेत ।

एक दिया बालो तुम

यादों के नाम चलो, एक दिया बालो तुम
मेहँदिया हथेली पर रोशनी उगा लो तुम
ज्योति-शंख फूँको तुम आँक दो सवेरा
छँट जाए ओठों पर
तैरता अँधेरा
महक उठे आँगन में कोई सम्बन्ध मौन
जीने की प्यारी संवेदना जगा लो तुम
एक दिया बालो तुम ।

उँगली में बाँधो तुम कंचनी उजाला
रीत जाय धुन्ध और
बीते दिन काला
चौमुख चौबारे पर लिख दो आलोक-मंत्र
आँखों में एक मधुर स्वप्न नया पालो तुम
एक दिया बालो तुम ।

गीतों के गमके क्षण टूटने न पाएँ
धीरे से खींचो तुम
किरण रंग वल्गाएँ
तुलसी के चौरे पर रोप दो निवेदित मन
स्नेह-प्यार-पूजन की थातियाँ सँभालो तुम
एक दिया बालो तुम ।

अन्तर्मुख विवशता

श्यामला,
तुम जानती हो प्यार का वह अर्थ
जिसको परस कर आवाज़ मेरी
दूर कितनी दूर मन में उड़ गई है ।

अस्मिता खपती नहीं है देह के वातावरण में
और यादें
बुझे-बीते समय-खण्डों को
उफन कर बाँध देती हैं चरण में
इसे तुम भी जानती हो
एक अन्तर्मुख विवशता
प्रणय के संदीप्त क्षण में
रोशनी की लहर जैसी मुड़ गई है ।

यंत्रणा अँटती नहीं है आजकल के व्याकरण में
और बातें
अनकही आधी-अधूरी
ऐंठती हैं मौन की ठंडी शरण में
तुम जिन्हें पहचानती हो
उन क्षणों की अर्थवत्ता
रक्त कोषों के निलय में
एक यात्रा-सी अपरिचित जुड़ गई है ।

वर्तमान बिछुड़ गया

तुम से कुछ जुड़े हुए
क्षण पीछे छूट गए
क्या-क्या कुछ नया-नया जीवन से जुड़ गया
आगे की प्रस्तुति में वर्तमान बिछुड़ गया ।

बर्फ़ की शिलाओं पर लिखे हुए प्रत्यय-सी
ओठों पर छंदित अनुबन्धों की बात चुकी
अपने ही गढ़े हुए मूल्यों की साक्षी में
यादों, सम्बन्धों,
सौगन्धों की रात बिकी
स्वीकृत अनगढ़ता के
सम्बोधन सिमट गए
परिचय का पूरा प्रतिमान ही सिकुड़ गया
वर्तमान बिछुड़ गया ।

बार-बार प्रश्नों के भीतर ही प्रश्न उगे
जब-जब कुछ मन के आयामों पर आँका है
शामों की बाँहों में
कई-कई झीलों पर
भटका हूँ– पानी के भीतर तक झाँका है
मेरी ही आकृति के
सही बिम्ब टूट गए.
आँखों में झुका हुआ आसमान निचुड़ गया
वर्तमान बिछुड़ गया ।

कनेर के तले

इस कनेर के तले
चलो आओ तो क्षण भर बैठ लें ।

गुलमुहरों के गाँव तक गया
हर पलाश की छाँव तक गया
कोई तो मन रँग ले
इस कनेर के तले
चलो आओ तो क्षण भर बैठ लें ।

दूरी को हम तिल-तिल जी लें
जो कुछ पाएँ मिल-जुल पीं लें
नयी सुबह होने के पहले
इस कनेर के तले
चलो आओ तो क्षण भर बैठ लें ।

आँखों-आँखों में हम दिख लें
प्यार बहुत भीतर तक लिख लें
कुछ भी फिर ढुलके न ढले
इस कनेर के तले
चलो आओ तो क्षण भर बैठ लें ।

आँखों के बीच कहीं

भर आई आँखों के बीच कहीं
एक सूर्य उगता है
किरण फिसल जाती है ।

साँझ के उभरने तक साँस का गमक जाना
यों ही कुछ लगता है प्यार का ठमक जाना
तुम से कुछ कहूँ-कहूँ
ऐसी कुछ बात नहीं
भर आई आँखों से आँखों के
बीच कहीं
प्राणों का रिश्ता है, पीड़ा कहलाती है
किरण फिसल जाती है ।

वृत्त भी लहकते हैं धूप सरक जाने तक
वस्तुएँ भली लगतीं आग लहक जाने तक
कुछ छूटा अभी-अभी
मन बिसरा यहीं कहीं
भर आई आँखों से आँखों के
बीच कहीं
मौन तो विरमता है, मौत निकल जाती है
किरण फिसल जाती है ।

मौन का पिघलाव

कहाँ तक
कोई सहेगा दर्द का इतना दबाव
बहुत मुश्किल झेल पाना मौन का पिघलाव।

डबडबाकर झुक गई होगी तुम्हारी आँख
धँस गई होगी कहीं भीतर
बहुत भीतर एक टूटन की सलाख
कुछ गझिनतर हो गया होगा अचानक
दर्द का
भीगा कसाव
बहुत मुश्किल झेल पाना मौन का पिघलाव।

कृष्णचूड़ा-सा भरा-पूरा हुलसता प्यार
चुक गया होगा
अकेले ही अकेले जूझकर बोझिल क्षणों से
एक क्या– लाखों, हज़ारों बार
याद का आकाश निश्चय
तन गया होगा परस कर
कहीं कोई घाव
बहुत मुश्किल झेल पाना मौन का पिघलाव।

ओ सुनेत्रा

ओ, सुनेत्रा !
मुझे कल तक बहुत अखरा
प्यार के उभरे क्षणों का
यों अकारण टूटकर कुछ ऐंठ जाना
किन्तु पिछले
सभी प्रत्याशित दुराग्रह
अब तुम्हारी
अनाकांक्षित कनखियों से
दूर रहकर भी
बहुत नज़दीक लगते
ओ सुनेत्रा
साल भर से बन्द ओठों पर तुम्हारे
आज मुझको बहुत भाया
प्यार के तिरते क्षणों का
कई रत्ती हँसी बनकर
कुछ सिमट कर
बिखर जाना ।

एक पंखुड़ी जवाकसुम की

कब से बन्धु, तलाश रहा हूँ
एक पंखुड़ी जवाकुसुम की ।

रक्तिम कहीं रक्त से भी कुछ ताज़ा-ताज़ा
उभरी हुई
गीतवत मन पर
जिसके लिए अकथ्य ओढ़कर
अपने आकुल युवा समय तक
कुंठित और हताश रहा हूँ
कब से बन्धु तलाश रहा हूँ
एक पंखुड़ी
जवाकुसुम की ।
और कण्व के आश्रम की उद्वेलित-विह्वल
किसी फूल-कन्या के मन-सा
'ऐंजेलो' के
शिल्पांकन-सा
बस कुछ ऐसा ही प्रत्यय मैं
हरदम कहीं तराश रहा हूँ
एक पंखुड़ी जवाकुसुम की
कब से बन्धु तलाश रहा हूँ ।

दर्पण की ओर मुँह करो

दर्पण की ओर मुँह करो
ओठ पर उँगली धरो
और अपना मन छुओ
देखो तुम आँखों के मोतिया उजास में
गन्ध में नहायी-सी
गमकीली साँस में
कुछ रीते-बीते क्षण
याद में उभरते हैं
हिमपंखी गीत-हंस मानस में तिरते हैं
कुछ तो विश्वास तुम करो
दर्पण की ओर मुँह करो
ओठ पर उँगली धरो
और
अपना मन छुओ ।

जीने का मौसम

कहीं कुछ तो नहीं बदला है
सूरज रोज़ की तरह निकला है ।

ब्रह्माण्ड की विसंगतियों को बटोर कर
रत्ती-रत्ती भर
अपने अस्तित्व को तोड़कर
पिघला है, शाम को ढला है
सूरज रोज़ की तरह निकला है
कहीं कुछ तो नहीं बदला है ।
बुझा-बीता
बहुत कुछ कितना क्रमागत
आगत-विगत
हर क्षण अनाहत
एक क्षण जीने का मौसम
कितना भला है
कहीं कुछ तो नहीं बदला है
सूरज रोज़ की तरह निकला है ।

ओ मेरे अन्तरंग!

ओ
मेरे अन्तरंग!
हमारी यात्रा फिर कब शुरू होगी
मैं एक अ-यात्रा के बाद
तुम्हारी प्रतीक्षा में
काठ के छोटे ख़ुशनुमा कमरे की दहलीज़ पर
निस्तब्ध और नितान्त विलुब्ध-सा खड़ा हूँ
दरवाज़े की पूरी लम्बाई में
सामने दिखता
शाम का मेघाच्छन्न आकाश
कुछ इस तरह अँट गया है
और मेरा प्यार
कुछ इस तरह बँट गया है कि...
एक अनायत्त
शुक्रवत, शाश्वत अमृतवत
मणिप्रभ तारे के अतिरिक्त
कहीं कुछ भी नहीं दिखता ।
ओ
मेरे अन्तरंग
हमारी यात्रा कब शुरू होगी ।

कुहरे में डूबे नगर के साथ

सड़कों, गलियों चौराहों मकानों
और बेकार लावारिस मैदानों की तरह
कुहासे की नदी में डूबे एक पूरे नगर की तरह
मैं कहीं
बहुत गहरे डूब गया हूँ
मेरी निगाहों की पकड़ के बाहर
एक नीलापन तैरता है
एक याद तैरती है
क्षणों का एक लम्बा सिलसिला टूटं जाता है
लगता है
मैं अपनी ही तलाश में
अपनी पूरी लम्बाई तक डूब गया हूँ

न जाने कब मेरे क़रीब
एक ऑक्टोपसी छाया उभरती है,
अनायास उसकी बाँहों में जकड़ा-जकड़ा
दिनों-सप्ताहों, माहों तारीख़ों
और ट्रामों-बसों में ठूँसे ख़ुदग़र्ज़ लोगों की तरह
अलग-अलग साँचे में
ढलती हुई भीड़ की तरह
मैं अपने दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा
समूचे नगर के साथ डूब गया हूँ ।

कुहरे में डूबे नगर के साथ

सड़कों, गलियों चौराहों मकानों
और बेकार लावारिस मैदानों की तरह
कुहासे की नदी में डूबे एक पूरे नगर की तरह
मैं कहीं
बहुत गहरे डूब गया हूँ
मेरी निगाहों की पकड़ के बाहर
एक नीलापन तैरता है
एक याद तैरती है
क्षणों का एक लम्बा सिलसिला टूट जाता है
लगता है
मैं अपनी ही तलाश में
अपनी पूरी लम्बाई तक डूब गया हूँ

न जाने कब मेरे क़रीब
एक ऑक्टोपसी छाया उभरती है,
अनायास उसकी बाँहों में जकड़ा-जकड़ा
दिनों-सप्ताहों, माहों तारीख़ों
और ट्रामों-बसों में ठूँसे ख़ुदग़र्ज़ लोगों की तरह
अलग-अलग साँचे में
ढलती हुई भीड़ की तरह
मैं अपने दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा
समूचे नगर के साथ डूब गया हूँ ।

हिरण्य-गुलाब

मैं अपने अनकहे क्षणों के बीच
निर्वाक स्तम्भित घिरा हूँ
खड़ा हूँ
जन्म-काल से ही
अँधेरा चीरने के गुनाह में
प्यार की एक ऐसी सलीब पर जड़ा हूँ
जो गुलाब की टहनियों जैसी है
मेरे अस्तित्व के आधार पर टिकी
अंगीकार
और तिरस्कार की मिली-जुली कनखियों जैसी है
दृष्टियों में
बुझा हुआ मेरा अतीत
न जाने कहाँ
किसी हिरण्य-गुलाब की
पंखुड़ियों पर चिपका है
और
न जाने क्या-कुछ
पाने की स्पृहाओं के बीच
स्वयं जकड़ा हूँ ।

टूटा सेतु

बहुत पहले
हमने मन की सतह पर
एक-दूसरे की देह-यंत्रणा के बीच
रेशमी रेशों का एक सेतु रचा था
लेकिन कुछ दिन बाद
उस पर
तुम्हारी दृष्टियों के फिसलने का अंदाज़
इतना अजनबी था
दबाव इतना तेज़ था
वह टूट गया
हम चिटख़ गये
अब वहाँ कुछ नहीं है
सिर्फ़ कुहरा तना है
जहाँ हम थे आमने-सामने
गहरा नीला धुआँ उगा है
और उस पर एक बारीक फ़ासला
मौत के आख़िरी लमहों जैसा टँगा है ।

तुम्हारे बग़ैर

तुम्हारी आँखों में लिखा हुआ
अपने होने का
सही दस्तावेज़
ख़ुशनीयती के साथ
मैंने फाड़ दिया है
निर्णय के बावजूद
ग़लत लगता है तुम्हारा औरत होना
और उससे भी ज़्यादा
ग़लत लगता है
तुम्हारी आँखों के भीतर
बहुत भीतर
सीधे गहराई तक उतर जाना
ज़रूरी नहीं—तुम्हें इस बात का पता हो
मैं तुम्हारे
बग़ैर
कुछ और ज़िन्दा रहने की कोशिश कर रहा हूँ
काश !
मोनालिसा की मुसकान जैसी
समुद्र में डूबी हुई तमाम शामें
तुम वापस कर सकतीं ।

अनामा मत्स्यकन्या के नाम

ओ, मत्स्यकन्या !
तुम्हें शाम का उदास होना अच्छा नहीं लगता
ख़ाली हाथ लौटे मछुवाहे
तुम्हें नहीं भाते
नाव की एक यात्रा है—
जो लक्ष्य नहीं छूती
जीवन का एक सही अर्थ है जो कहीं नहीं मिलता
देखती हो
मेरा अनुताप गल रहा है
मुझे तुमसे कुछ मिल रहा है
सुनती हो
मैं सिर्फ़ एक प्रयोग कर रहा हूँ
शून्य में हवा की तरंगों पर
एक साम्प्रयोगिक काल की स्थापना कर रहा हूँ
मैं कुहासा रच रहा हूँ
जो तुम्हारी आँखों
और ओठों के बीच पसरे हुए
सारे धुएँ को आत्मसात कर लेगा
तुम्हारी हथेलियों पर
आलोकवर्षी प्रात धर देगा ।

एक गंगाजली शाम की अप्रत्याशित मौत

एक प्रश्न है, जो मेरी उँगलियों में बँधा है
एक बात है,
जो मुझे कुरेदती है, काटती है–
एक हलका धुँधलका
और उसके सर्द-स्याह ओठों पर
रेंगती हुई एक बेनाम प्यास
एक अनकहे तथ्य के इर्द-गिर्द
मँडराते-उफनाते जवान अँधेरे की आँखों में
डूब जाना चाहती है
दूर नदी के पानी की ख़ामोश सतह पर
लंगरों से बँधी लेटी नावें
मल्लाहों से जीवन का अर्थ माँगती हैं
इस पार से उस पार तक तने
प्यार के कई गंगाजली रेशे टूटते हैं
क्षण भर के लिए
मेरी ऊर्जस्वल एकनिष्ठ जाँघों पर
एक संगमर्मरी, अनचीन्ही कुहनी टिक जाती है
एक जाना-पहिचाना प्रश्न टकराकर लौट जाता है
और आदिम संवेगों की मुट्ठियों में बँधी
तमाम टूटती ऐंठती स्पृहाएँ,
तप्त-अनुतप्त शिराएँ
एक निर्वीर्य ठिठुरे सन्दर्भ से चिपक जाती हैं
एक आवाज़ सामने खड़े स्मारक के बाहर-भीतर
एक बार गूँजकर, दूर-बहुत दूर भाग जाती है
एक अस्तित्व छटपटाता है
एक प्रश्न मँडराता है
एक साँझ न जाने कहाँ दुबक जाती है
एक प्रश्न है, जो मेरी उँगलियों में बँधा है
एक बात है
जो मुझे कुरेदती है, काटती है ।

ठंडी सुबह : टूटे रेशे

कुछ कच्ची कमसिन किरणें
कुहासे को चीरकर
मेरे सिरहाने ठिठक जाती हैं
अचानक आँख खुलने पर
बहुत-बहुत सी बातें-यादें उभर आती हैं
फिर कुछ इस तरह
झटक कर उठता हूँ कि
उनके तमाम सुनहले रेशे टूट जाते हैं
सामने वाले पीपल की पत्तियों पर टिकी
ओस की बूँदें फिसल जाती हैं
रात भर गन्धफ़रोशी की भूमिका में
'रातरानी' की पत्तियाँ
टहनियाँ कुछ हल्कापन
महसूस कर रही हैं
नगर-वधुएँ चेहरे पर चन्दनी अल्पनाओं के साथ
नदी में डुबकियाँ लगाकर लौट रही हैं
और मैं
घंटों-मिनटों की नाप-तौल करते-करते
अपने और तुम्हारे बीच की
दूरी तय कर रहा हूँ ।

निष्कलुष हँसी के लिए

तुम्हारे ओठों की सतह पर
मन का बहुत कुछ उभर आना
मेरी अनामधेय रिक्तता को उभारता है
मेरे पौरुष को ललकारता है
किन्तु
तुम्हारी डबडबाई हुई आँखों की घाटियों में
कई सूर्यों का ठंडा हो जाना
भीतर ही भीतर बेतरह कचोटता है
लगता है
मेरी चेतना के सीने पर कहीं
साँप लोटता है
और
मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर
अपने पिघले हुए अहं को
पी जाता हूँ
तुम्हारी क्षणभर की निष्कलुष हँसी के लिए
एक बार फिर जी जाता हूँ ।

हमारे बीच की दूरी नहीं टूटती

सुनो,
श्यामला!
न जाने क्यों— हमारे बीच की
दूरी नहीं टूटती
सिर्फ़ हम टूटते हैं
छुओ,
श्यामला
गुनगुनाती शिराओं
और गदराए स्पन्दनों के मुँह पर
कहीं कुछ बर्फ़-सा जम गया है
आँच दो
आँचल दो
जानती हो
समानान्तर रेखाएँ जुड़ती नहीं
किन्तु उनका होना-खिंचना सही है
उनकी दूरियाँ संतुलित हैं
और
उनके बीच एक ईप्सित अर्थ लेटा है ।

भरे बेला फूल आँचल में

फरफराया—
हवा में आँचल तुम्हारा हल्दिया
और फिर कौंधी हथेली मेहँदिया ।

प्यार के कुछ क्षण धुँधलके में कहीं फरिया गए
तुम्हें भूले दिन तुम्हारी याद में हरिया गए
शोख़ वैशाखी सुबह की
साँस महकी
देह दहकी
ओठ पर किसने अचानक
गुलमोहर रख दिया
आज फिर....

भरे बेलाफूल आँचल में तुम्हारा बिम्ब उभरा
श्याम तनुभा छीटता-सा फूलदेही छन्द लहरा
दूब-पातों-सी पलक पर
चुका कोई
क्षण ढुलक कर
आँख में बीते समय ने
दर्द गीला लिख दिया
और फिर......

दफ़्तर से लौटता हुआ

सूरज कब भाग गया
याद नहीं—
महानगर रौंदता हुआ ।

सुबह-सुबह लगता है
सब कुछ पहचाना-सा पीछे को छूटता
और शाम होते ही
कुहनी से टखनों तक रुका समय टूटता
भीड़ सिर्फ़ भीड़ मौन खो गया
फुटपाथों पर ठहरा
दर्द खौलता हुआ ।

रोज़ बसों-ट्रामों में
एक युद्ध जीने की यंत्रणा सहेजना
कितना दुखदायी है
कविता से रोटी तक की दूरी झेलना
सोच रहा हूँ क्या-क्या
दफ़्तर से थका
चुका लौटता हुआ
सूरज कब भाग गया
याद नहीं
महानगर रौंदता हुआ ।

ऐसी कुछ बात हुई
(युद्ध-अकाल : वियतनाम)

ऐसी कुछ बात हुई
ऋतुओं ने तोड़ दिया मौसमी चलन
चलो, जीने का अर्थ कहीं–
हम भी तलाश लें ।

मौन कहीं ठहरा तो सीमायें टूट गईं
बंजर अहसास गढ़ा निथरे आकाश ने
धरती के होंठ बुझे
इंच-इंच जीवन की रेखायें टूट गईं

गहरे तक चुभी सुई
तेज़ हुई अनचाही मौत की छुअन
चलो, जीने का अर्थ कहीं
हम भी तलाश लें ।

ज़हरीली गैसों ने मिट्टी की साँस चुगी
खेतों को सूँघ लिया बारूदी बोध ने–
पौधों की जगह कहीं
उर्वर विस्तारों में लाशों पर लाश उगी

बीती-सी बात हुई
फ़स्लों के चेहरे की पिस्तई फबन
चलो, जीने का अर्थ कहीं
हम भी तलाश लें ।

धानों का देश
(एक अकाल-यात्रा)

टूट गया महके सीवानों का देश
दूध भरी
नदियों का, धानों का देश ।

बैठा है मन मारे जैसे कंगाल
फैलाए धरती का चिथड़ा रूमाल
रत्नों का सौदागर
अन्नों का जादूगर
टके सेर बिकता है
लाख-लाख खानों-खलिहानों का देश,
धानों का देश ।
दरवाज़ों पर चिपका साँप-सा अकाल
सन्नाटा तिरता है सूखे हैं ताल
खेतों की आन-बान
फ़स्लों का हुक्मरान
टके सेर बिकता है
सोनाली गेहूँ के दानों का देश
धानों का देश ।
गाँवों से नगरों तक भूख से निढाल
उगती है भीड़ सिर्फ़ पेट का सवाल
मिट्टी का मंगल-स्वर
हल-हसियों का ईश्वर
टके सेर बिकता है
मेहनत से जूझते किसानों का देश
धानों का देश ।
श्रद्धानत नीराजन, घंटे-घड़ियाल
फेंको चौराहों पर पूजा के थाल
धर्मों का कीर्त्तिमान
मन्दिर का निगहबान
टके सेर बिकता है
कोटि-कोटि भोगी भगवानों का देश
दूध भरी नदियों का धानों का देश
टूट गया महके सीवानों का देश ।

माटी की गन्ध लिखें

आओ,
हम खुलकर कुछ अपने सम्बन्ध लिखें
धरती से नाता है– माटी की गन्ध लिखें ।

क़लमों से तोड़ें हम अनलिखे अँधेरे को
सुबह के सिवानों में धूप, धान रोप दें
रोशनी उगाने की
भाषा छितरा दें हम
छन्दों को प्यार-भरा आसमान सौंप दें

रक्तिम हस्ताक्षर-सी
किरणों के अक्षर-सी
क्षितिजों पर सूर्यमुखी कोई सौगन्ध लिखें
माटी की गन्ध लिखें ।

हम विपन्न बोधों के कुहरे को चीरकर
भूख लिखे चेहरों पर रोज़ी-रोटी लिख दें
ख़ून की, पसीने की
रस्में गुहराती हैं
खेतों के पन्नों पर अन्नों के मोती लिख दें

आवाज़ें रचने का
धुन्ध को खुरचने का
आँखों में मौत के ख़िलाफ़ नया छन्द लिखें
माटी की गन्ध लिखें
आओ,
हम खुलकर कुछ अपने सम्बन्ध लिखें ।

छन्द-पुरुष की यंत्रणा

जिस दिन तुम पहली बार उतरी थी
मेरे आँगन में
अपनी दहलीज़ लाँघकर
वेणी में गूँथे सूर्य-फूल
माथे पर रचे
आकाशरंग बिन्दी
उँगलियों में लपेटे बकुल गन्ध
आँखों में आँजे नीलकमल
आँचल में आँके अमलतास
ओठों पर उगाए असंख्य गुलाब
उस दिन
अचानक पड़ोस के अहाते की मेहँदी
न जाने कब पर्णवती हो गई ।

दूर बहुत दूर तक मेरे भीतर
तैर गई देह की ऋतुमयी हरीतिमा
मैं तुम्हारा विद्युतप्रतिम आँचल पकड़ने के लिए
भागता रहा पीछे-पीछे
एक अनाम प्रजापति की तरह
अपना ही प्रतिबिम्ब रौंदता हुआ
एक आकाश से दूसरे आकाश तक
लेकिन मेरी रचना के केन्द्र में दहकती हुई
ओ, द्युतिवती अदिति
मुझे सौंपकर
एक छन्द-पुरुष की यंत्रणा
तुमने ओढ़ लीं कुछ ऐसी संज्ञाएँ
जिन्हें मैं अपने समय के साथ झेलता रहा
तुम्हारे लिए स्वयं के विरुद्ध लड़ता रहा
एक दिन
तोड़कर तमाम वर्जनाएँ
तुम्हारी प्रतिमा को छुआ तो वह कहीं
सावित्री, कहीं सरस्वती, कहीं पार्वती हो गई ।
अचानक पड़ोस के अहाते की मेहँदी
न जाने कब पर्णवती हो गई ।

कहीं से आती नहीं है बाँसुरी की धुन

बात कोई कहीं गहरे चुभ गई
एक सन्नाटा सुबह से ही
स्वरों को डस रहा है
कहीं से आती नहीं है बाँसुरी की धुन ।

मौन है आकाशगंगा, सुन्न हैं सारी दिशाएँ
प्यार की किरनिल तरंगें किस नदी में थरथराएँ
मृगी कोई सहमकर कुछ रुक गई
सूर्य का रथचक्र
सूने चीड़-वन में धँस रहा है
कहीं से आती नहीं है बाँसुरी की धुन ।

साँस में ख़ुशबू लिखे आकाश को क्या हो गया
रूप-रंस स्वर-छन्द रचकर स्वयं में ही खो गया
नीलकंठी चेतना भी बुझ गई
रोशनी की लाश पर
बैठा अँधेरा हँस रहा है
कहीं से आती नहीं है, बाँसुरी की धुन ।

मन के बिम्ब रहे अनदेखे

क्या-क्या
खेल न खेले-देखे
मन के बिम्ब रहे अनदेखे ।

देह-दीप व्यंजना किसी की
साँस-साँस वन्दना किसी की
लौ से लय तक
ज्योति सुधूम्रा
सुलग गए सुधियों के लेखे ।

कहीं न कोई एकतानता
जड़ता को झेले चेतनता
विन्दु-विसर्ग
न गहरे उतरे
कौन सहज को आँके रेखे ।

दर्द के अनाम छन्द

मधु ऋतु के आँगन में बौराए आम
दहक गए पँखुरी पर
लिखे नये नाम ।
ओठों पर आँक गया कौन बन-पलाश
आँखों में छलका रूमानी आकाश
सेमल की डाल-डाल
हुई फूल-फूल
गमक गया गन्ध लिखा देह भर प्रणाम
बौराए आम ।
महुये-सा मन महका बाँटता ख़ुमार
शिरा-शिरा बजती है खनक गया प्यार
सरसों के कर्ण-फूल
चुपके से हिल गए
कई छन्द सँवर गए दर्द के अनाम
बौराए आम ।

ख़ुशबू लिखी कोरी किताब

हम जिसे पढ़ते रहे
बरसों वसन्ती भूमिका में
क्या कहूँ जाने कहाँ गुम हो गई
वह प्यार की ख़ुशबू लिखी कोरी किताब ।
फरफराते कमल-पत्रों की तरह पन्ने कई
और जल में काँपते
चिकने मृणालों-सी हमारी याद की परछाइयाँ
क्या पता था
फूल जैसे उन क्षणों को या हमारे बीच
ठहरे गुनगुनाते उस समय को
निगल जाएँगी कहीं तनहाइयाँ
बहुत मुश्किल है
कि कोई अर्थ अब उभरे समान्तर
याद आते वे गए दिन
बाँकपन के
मुग्ध मन के
जानते हैं,
जिन्हें जूड़े में गुँथे गेंदा-गुलाब
क्या कहूँ
जाने कहाँ गुम हो गई
वह प्यार की ख़ुशबू लिखी कोरी किताब ।

बाँट दो चिकना उजाला दूधफेनी

मृत्यु की वंशी न टेरो
ओ सपेरो!
तुम न बाँधो
गीत-मृग की मुक्त लयवन्ती छलाँगें
सुनो अन्धो,
गन्ध लिखने की विधा हम कहाँ माँगें
प्यार का नवगीत सुन लो
युद्धमुख बहरे अँधेरो
ओ सपेरो!

'दिया' बालो
बाँट दो चिकना उजाला दूधफेनी
स्वर उगा लो,
तेज़ कर लो गुहावासी दृष्टि-छेनी
समय के गहरे विवर में
एक मणिप्रभ छन्द हेरो
ओ सपेरो!
मृत्यु की वंशी न टेरो ।

जनवादी हरापन

चलो
आँखों में उगा लें प्यार का हम नया सावन
हम वनस्पति-वर्ण होकर जिएँ बाँटें
एक जनवादी हरापन ।

अस्मिता की भूमियों पर
एक मौसम की तरह हम पसर जाएँ
चलो,
अपनी जड़ों तक हम
एक माटी गन्ध लिखकर और गहरे उतर जाएँ
आसमानों तक खिलें
हम और
फूलें-फलें
नयी ख़ुशबू को सहेजे राजपथ से जुड़ी
राहों का अकेलापन
एक जनवादी हरापन ।

हम हवा की तरह गमकें
रोशनी की धार बनकर बिजलियों की तरह लरजें
और,
पानी के चमकते अक्षरों से
रेत जैसे मनस-प्रान्तर में नदी सिरजें
महासागर तक बहें
हम और
झेलें-सहें
नये सुख की व्यंजना में नयी फ़स्लें बुनें, रोपें
एक बुनियादी बड़ापन
एक जनवादी हरापन ।

आँगने गुलाब झरे

किलक उठे गाछों के पात-पात, हरे-हरे
ऐसे में भला कौन—
पतझर की बात करे ।

जीवन तो कहीं नहीं नीरस-निस्पन्द है
अणु-अणु के भीतर गतिमान छन्द-छन्द है
प्यार एक शक्ति-कूट
तार-तार
है अटूट
तन सँवरे मन बौरे, अंग-अंग गन्ध भरे
पात-पात हरे-हरे ।

ऋतुपाखी जाने कब बगिया में चहक गया
टहनी का दर्द खिला फूलों में दहक गया
हर पँखुरी फरक गई
दूरी भी
सरक गई
धरती के ओठ खुले, आँगने गुलाब झरे
किलक उठे गाछों के
पात-पात हरे-हरे ।

आँगने गुलाब झरे

किलक उठे गाछों के पात-पात, हरे-हरे
ऐसे में भला कौन–
पतझर की बात करे ।

जीवन तो कहीं नहीं नीरस-निस्पन्द है
अणु-अणु के भीतर गतिमान छन्द-छन्द है
प्यार एक शक्ति-कूट
तार-तार
है अटूट
तन सँवरे मन बौरे, अंग-अंग गन्ध भरे
पात-पात हरे-हरे ।

ऋतुपाखी जाने कब बगिया में चहक गया
टहनी का दर्द खिला फूलों में दहक गया
हर पँखुरी फरक गई
दूरी भी
सरक गई
धरती के ओठ खुले, आँगने गुलाब झरे
किलक उठे गाछों के
पात-पात हरे-हरे ।

उजला-उजला दर्द जिया है

जिसने जल-जल कर जीवन भर
उजला-उजला दर्द जिया है
वह माटी का एक 'दिया' है

कोई तपसिन ताप ओढ़कर मौन हुई तब माटी जनमी
परत दर परत टूटी चिटख़ी गदराई तब आई नरमी
फिर कुम्हार ने जी भर गूँधा
कुछ-कुछ
और गुदाज़ हो गई
धीरे-धीरे अपने मालिक की पूरी हमराज़ हो गई
चाक चढ़ी गर्दिश-गर्दिश
तब नाक-नक़्श के स्वर उभरे
दर्द और दिल दोनों उतरे
'दिया'-दृष्टि में गहरे-गहरे
बरसों आग और पानी का
रूप-रंग रस-स्वाद जिया है
वह माटी का एक दिया है ।

यही रोशनी देने तक की एक सहज-सी तैयारी है
माटी से मन तक प्रकाशमय कितनी प्यारी यह यारी है
शुद्ध बुद्ध, निर्वाण-शून्य की
यही ज्योति-यात्रा
पूरी है
माटी के लोंदे से लौ तक
अलख-छन्द-लय की दूरी है
ज्ञान-धर्म, मत-मज़हब सबसे
परे प्यार की किरण-केलियाँ
'दिया' उसी का बिम्ब 'सहजिया'
निगहवान आँचल हथेलियाँ
अक्षर से क्षर तक चिन्मय का
मूल और अनुवाद जिया है
वह माटी का एक दिया है ।

कविता में जीने का सुख

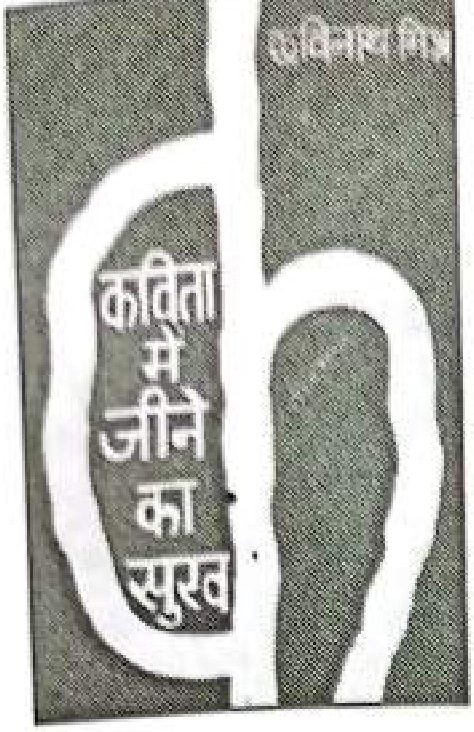

प्रकाशक :
स्वर समवेत
6, तनसुख लेन
कलकत्ता - 700 007

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
205, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता - 700 007

आवरण :
मदन सूदन

प्रथम संस्करण : 1987

मूल्य : बीस रुपए

पृष्ठ : 67

अनुक्रम

नन्हे बच्चे की दस्तक	221
कविता में सोचते हुए दफ़्तर तक	222
कापालिकों की शोभायात्रा बनाम समग्र कविता	226
ख़ून से लथपथ एक शब्द : एक बिम्ब	228
मैं और चीज़ें	232
यादों के आईने में महानगर	233
कविता ईश्वर से भी बड़ी	235
रोशनी : अपनेपन का एहसास	237
शब्द क्रान्ति	238
फैले हुए हाथ	240
शब्द विद्ध समय : एक मारीच गंध	241
सुनो कविता	243
अन्तर्यात्रा	245
दुश्मन की तलाश : आईना तोड़ते हुए	248
अँधेरे की क़ैद में	250
महाभारत की आख़िरी शाम	251
कविता में जीने का सुख	253
आग बाँटने का क़लम बन्द दस्तावेज़	255
मानस और शताब्दी के बीच	259
लड़ाई क़लम के लिए	262
समय-रचना	263
और सपना टूट गया	264
युद्धशील	266

हवा में उड़ते रक्ताणु	267
आदमी बनाम आदमी	268
बात उन क्षणों की	270
अलग-अलग : लम्बे सफ़र की यंत्रणा	271
तुम्हारा न होना	272
आकाश कुछ और धँसता है	273
मसीहानुमा लोगों का जुलूस	274
संचेतना का उत्ताप	276
सिमटते अन्तराल	278
प्रेमिकाएँ	279
हाशिए के बीच	280
अस्तित्व की शवपरीक्षा	281

1961 से 1986 तक की चुनी हुई रचनाएँ

कविता की तलाश में

कविता अपने सरोकारों की भूमिका में इतिहास की अनगढ़ता को तराशती चलती है। इतिहास जिस विन्दु पर अपने कुछ ख़ास मुद्दों एवं तेवरों के चलते ठहर-सा जाता है, वहीं से उसे नये मोड़ का संकेत और आधार देती हुई शब्दों को नये अर्थानुशासन से जोड़ती रहती है।

मैं जिस कविता की बात कर रहा हूँ, वह अपनी अमूर्त्त-अदृश्य भूमिका में शायद अपरिभाषित है—उसे कुछ काव्य-प्रतिमानों के माध्यम से विशिष्ट चिन्तन धाराओं एवं परिभाषाओं के चौखटे में कसकर परखने या परिभाषित करने की कोशिश भले ही एक ऐतिहासिक ज़रूरत हो; किन्तु संरचना, गठन, वस्तु, बुनावट, रूप-रंग, भाषा और छन्द-बन्ध को ही टोहते-टटोलते रहने तक कविता कहीं नहीं होती। तब भी उसके ढाँचे को ढोते रहना इतिहास की अनिवार्य मज़बूरी है।

इस रोशनी में अपनी दहलीज़ के बाहर और भीतर कुछ अपेक्षाओं और उपेक्षाओं के बावजूद उगते सूरज की किरणों में नहाया-सा स्नेह प्यार, जितना भी मिला है तथा उसे पाने के लिए जिन मानसिक यंत्रणाओं से जूझना पड़ा है—वही सब कुछ मेरी कविता या काव्य चेतना के केन्द्रीय प्रतीक एवं बिम्ब रहे हैं। उन्हीं के माध्यम से मैं अपनी बौद्धिक एवं रूमानी अन्तश्चेतना अथवा मनश्चेतना की भूमि पर अस्तित्व के काव्यात्मक पक्ष से ही जुड़कर समय बोध के साथ अपनी सम्भावनाओं को उकेरता रहा हूँ।

वस्तुतः तह दर तह सच को खोलते जाने पर यदि किसी अन्तिम सच की आहट मिलती है या सम्भव है तो मैं कहना चाहूँगा कि अपनी कविचेतना और अपने आम आदमी के एहसास को मुक्त एवं सहज करने की दिशा में अपने लिए कविता को ही एक मात्र ऐसा सच मानता हूँ जिसे अपने परिवेश एवं समय की तमाम विसंगतियों तथा जीवन की अर्थहीन स्थितियों के विरुद्ध खड़ा करके मुझे एक मामूली और माक़ूल आदमी होने की लड़ाई लड़ते रहना बेहद ज़रूरी लगता है।

यही कुछ ऐसे विन्दु हैं जिनके साक्ष्य में मैं जिस काव्य-स्पन्द को घटनाओं, दृश्यों, परिदृश्यों और कुछ बातों-विचारों के भीतर से पकड़ने की कोशिश करता हूँ उसे परिचित प्रतीकों-बिम्बों के माध्यम से सम्प्रेषित करते समय कविता से सीधे संवाद जैसी भूमिका में हुआ करता हूँ, किन्तु तब भी लगता है कहीं कुछ छूट रहा है या कुछ टूट नहीं रहा है।

बहरहाल, इस प्रकार अपनी समझ के हाशिए के बीच ही कविता की संस्कृति की खोज के साथ कविता में जीने का सुख मेरे होते रहने का मर्म भी है और मज़बूरी भी है ; लेकिन जीवन के विविध प्रसंगों में यह सुखानुभूति कविता की तलाश भर है जिसे मैंने जिया है। इस सुख में आपकी हिस्सेदारी के साथ कविता की तलाश अब भी जारी है।

— छविनाथ मिश्र

नन्हे बच्चे की दस्तक

पिछली रात का अँधेरा
न जाने कब पिघल गया
समय का अनाम दर्द
रोशनी में बदल गया
सुबह-सुबह ही
पड़ोसी के नन्हे बच्चे ने दस्तक दी
दरवाज़ा खुल गया
सामने—
चन्द्रमल्लिका के खिले पीले फूलों जैसी
कोमल धूप में
बैठा है आँखें मूँदे गाय का एक सफ़ेद बछड़ा
सूरज की ओर मुँह किए
कविता में जिए गए—
क्षणों के साक्ष्य में उभरे
किसी बिम्ब की तरह—
दूब के पत्तों पर टिके ओस-कण
ढुलकने लगे हैं
कुहासे के रेशे-रेशे टूटने लगे हैं
कितना कुछ
भीतर ही भीतर धुँधला गया
बहुत कुछ धुल गया
नन्हे बच्चे ने
दस्तक दी—
दरवाज़ा खुल गया।

कविता में सोचते हुए दफ़्तर तक

सुबह का होना
मेरे यहाँ होने
या न होने के एहसास से
कहीं नहीं जुड़ा है—

सुबह जहाँ भी होती है
ज़रूर होती है—उसे होना है
और मुझे
घटनाओं के अदृश्य रेशों से बुने सलीब को
अपने समय तक ढोना है
हर सुबह अपने ढंग से
सिर्फ़ अपने लिए होना है

इसी बात को
इस अन्दाज़ में कहूँ तो—
मेरे कवि और मेरे आम आदमी के बीच का फ़ासिला
जो भी हो

दहलीज़ से बाहर क़दम रखते ही
शुरू हो जाता है
कविता में सोचने का सिलसिला

जानता हूँ,
नून तेल लकड़ी का सवाल
हल करने के लिए
कविता में सोचते हुए
हर रोज़ दफ़्तर तक पहुँचने का रास्ता

तै करना
कितना ख़तरनाक है

यानी—
महानगर की भीड़ से
सही-सलामत निकलते हुए
ट्रेनों, ट्रामों, बसों में
तैरती-मँडराती
तमाम क़िस्म की
सजीव और यांत्रिक आवाज़ें—
शोर-गुल सुनते सहेजते हुए
भीतर ही भीतर एक ख़ामोशी जब शब्द बुनने लगती है
तभी ज़ोर से फेंकी गई

कई-कई
भारी भरकम आवाज़ों से
दिमाग़ में लहराता
सोच का दरिया—

एक किनारे से दूसरे किनारे तक थरथराता है
कोई प्रतिमान थरथराता है
अचानक सामने साइकिल से रिक्शा टकरा जाता है
रिक्शावाले के गाल पर तड़ाक-तड़ाक—

'साला, अन्धा है?
देखकर नहीं चलाता'
एक सामूहिक शोर उबलता है
'रास्ता छोड़ो, आगे बढ़ो
हो गया जो होना था'

रेलवे प्लेटफ़ार्म से
या पुलिस चौकी के पास वाले मैदान से
आ रहा है तैरता हुआ
इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद का नारा

कहीं कुछ हुआ
या होने वाला है
पीछे से कोई किसी को पुकारता है—
शायद ग्वाला है
'अरे कन्हैया भैंस किसकी है?
कितने में लिए'—
और मुझे लगा
उभरती कविता की हरी दूब

एक साथ कई पालतू-दुधारू जानवर चर गए
तब भी—
सोचना ज़रूरी है
कविता की थरथराहट को
भाषा देना भी ज़रूरी है
यानी सार्वजनिक मौत और दुर्घटनाओं की—

तिजारत करने वाले—
हवा के रुख़ का नाजायज़ फ़ायदा उठाने वाले—
मौसम के ख़िलाफ़ सोचना
बेहद ज़रूरी है

दुर्घटनाएँ किसी भी क्षण हो सकती हैं
मसलन कविताएँ कबाड़खाने से
'खलासी टोला' होती हुई
'कल्पतरु' तक आते-आते ग़ायब हो सकती हैं
बहरहाल कविता की ग़ैर मौजूदगी में
ज़िन्दगी या क़ीमती चीज़ें
कौड़ी के मोल बिक सकती हैं—

और यही कुछ सोचते-सोचते
पान की दूकान पर
छोड़ आया नया छाता
इस दूसरी चिन्ता में
तीसरी ट्रेन भी चीख़ती हुई भाग गई

सिगनलवाले केबिन से कोई
लाउडस्पीकर के ज़रिए बार-बार
एक ही जुमला फेंकता है—
'गाड़ियाँ देर से आएँगी।'
शायद कुछ हुआ—क्या पता!
क्या करूँ इस सापेक्षता का—
ऐसे में दफ़्तर तक पहुँच जाना
यक़ीनन् एक और ज़रूरी बात है
कविता में सोचते हुए हर रोज़
दफ़्तर तक पहुँचने का रास्ता तै करना
कितना ख़तरनाक है।

कापालिकों की शोभा-यात्रा : बनाम समग्र कविता

जड़ों से पंखुड़ियों तक
समय के अनुशासन में जब एक क्रान्ति होती है
तब वृन्तों पर
फूल लिखने की कविता
पूरी होती है
इर्द-गिर्द एक गमक तैरती है
आदमी के दिमाग़ में
ख़ुशबू की भाषा जन्म लेती है

और यहीं से शुरू होती है
कविता की सही
सहज यात्रा—
गवाह सिर्फ़ वह आदमी है
जो हमारे संवेदनों की पकड़ से बाहर लापता है
जिसे पता है
कविता और एटम का क्या रिश्ता है!

फूल जिस कविता की छन्दमूर्त्ति है
उसकी पहचान दर पहचान उकेरते रहने तक
कविता की कोई मूर्त्ति नहीं बनती
लेकिन फूल की बुनावट में
उसकी पहचान के तमाम अदृश्य रेशे तने होते हैं
जो आकाश के परमाणुओं से बने होते हैं

फूलों को तोड़ना और परमाणुओं को तोड़ना
अलग-अलग दो घटनाओं के तेवर हैं
किन्तु अनायास या जानबूझकर
तोड़ लिए जाने पर
फूल किसी भी भाषा, मज़हब या तहज़ीब में

आदमी या किसी देव-प्रतिमा के गले की माला बनते हैं
या चरणों में पड़े-पड़े
अपने होने का कोई सार्थक शब्द बुनते हैं
और एटम
प्रयोगशालाओं में थिरकते-थिरकते
बम बन जाते हैं
आदमी की नासमझी पर पौ फटने से पहले
फट जाना चाहते हैं—

जुलूस के आगे-आगे चलते हुए
आदमी की मुक्ति-यात्रा
कविता में जीने की यात्रा है
मुण्डमाला की तरह परमाणु बमों की माला पहने
कापालिकों की शोभायात्रा
मनुष्यता और कविता को तोड़ने की यात्रा है

बहरहाल जब दोनों टूटते हैं
तब जो होता है
वह सिर्फ़ सन्नाटा होता है
जिसकी मौजूदगी की थरथराहट पकड़ने के लिए
वहाँ न कोई कापालिक होता है
न कोई आदमी होता है
होती है किसी भले आदमी का इन्तिज़ार करती हुई
सन्नाटे के ओंठों पर कोमल हँसी की तरह फूटती हुई—
एक समग्र कविता।

ख़ून से लथपथ एक शब्द : एक बिम्ब

समय की आँखों में लम्हा दर लम्हा
एक सपना अचानक
पागलपन की आँच में पिघल गया
एक ज्वालामुखी उबल गया

उँगलियों में बँधा हुआ
सुनहली सुबह का संगीत

हरी दूब की हथेलियों पर टिका हेमन्ती समय
न जाने कब फिसल गया
और—
पलक गिरते ही
इतिहास के भीतर से भागता हुआ
एक बदहवास क्षण—
स्वयं निषाद चेतना में जीता हुआ
क्रौंच की चीख़ को
श्लोक में रूपान्तरित करता हुआ
एक अनाम आदिम शोक की लहरों पर
थरथराता हुआ

कहीं पीछे दूर बहुत दूर छूट गया
ख़ून से लथपथ एक शब्द, एक प्रतीक, एक बिम्ब टूट गया
और
अभी-अभी
समय की क्रूरतम दृष्टि से टकराकर
एक और
सुर्ख़ रोशनी का गायत्र छन्द टूट गया
रक्त की एक-एक बूँद का
उफान झेलती हुई भीड़ का संवेदन—

और हताश-निराश
बार-बार जन्म लेता हुआ शाश्वत भारत
एक बार फिर गोलियों से छलनी
नये भारत की दूसरी लाश के क़रीब
और बहुत करीब से गुज़रता हुआ—

'यह क्यों हुआ, कैसे हुआ—
उसके ओंठों पर लिखी

असंख्य आवाज़ों का सैलाब
भावनाओं की भूमि पर
टूटते भूगोल की शक्ल में लहराता है
और भीतर ही भीतर बुदबुदाता है—

—भारत तो रक्त सने
नफ़रत में डूबे
भूगोल के किसी टुकड़े का नाम नहीं
भारत किरण-लिखे दिलों को रोशनी है
भाईचारे की
अनन्नासी अगहनी कोमल धूप का नाम है

आग-आग होता हुआ
समरसता और कविता की
मुक्तकेशी आनन्दमयी यात्रा का नाम है
भारत एक सार्वभौम अद्वैत विराम है
भारत कमल की पंखुड़ियों जैसे फैले
पूरबी क्षितिज के माथे पर अंकित
अदिति-बिन्दी है,
अनिर्वाण दीप्ति है—

भारत उगते दहकते जवाकुसुमी सूर्य-बिम्बका नाम है
और दरवाज़े-दरवाज़े रोशनी बिखेरने
ख़ुशबू लिखने के अन्तरंग संकल्पों की
विश्वभारती छवि है
प्यार की पवित्रतम नदी में नहाकर
निकली
गंगाजली तहज़ीब
और मानवीय संस्कृति का
ज़मीनी हस्ताक्षर है

भारत रेखाओं से घिरी भूमि का दायरा नहीं, भूमा का
स्वर है—
भारत दिमाग़ में खौलते-उबलते
गुमराह ख़यालों का नहीं
सीने में धड़कते
गुलाब महके मज़हब का नाम है
अँधेरा चीरकर
आग की लपटों के भीतर से
उभरती-उफनती हुई

वन्देमातरम् से जयहिन्द तक बहती हुई—
रक्तधारा है
एक अखण्ड इन्क़िलाब का नारा है
भारत,
चन्द बेसुरी धुनों का शोर नहीं
सूली पर टँगी यादों का गमकता सरगम है
शहीदों के ख़ून से जले
जगमगाते दीपों के उजले-उजले
दर्द का संगम है
अहिंसा ही जिसका धर्म है, मर्म है
नये इन्सानी ख़ून के हर क़तरे में बिम्बित
दुधमुँहे विश्व जीवन की
सुचेतनामयी बुनावट को उधेड़ो मत

दोस्तो, दुश्मनो—
सुनो
ऋषियों-मुनियों, कवियों-सूफ़ियों
साधुओं-सन्तों की वाणी से बने-बुने
हिन्दुस्तान के तार-तार
तान-तान कर
कोई और ताण्डव तान छेड़ो मत।

मैं और चीज़ें

कभी-कभी लगता है
चीज़ें हैं और नहीं भी हैं
मैं उन्हें कोई नाम
या अर्थ देना चाहता हूँ—

और
अनगिनत प्रकाश वर्षों की दूरी तक
उनके होने के एहसास
और अपनी तलाश को जारी रखना चाहता हूँ

यानी
मैं कभी शून्य में लटका हुआ होता हूँ
कभी शून्य से परे
कई-कई शून्यों में भटक जाता हूँ
शून्य और
अ-शून्य के दरम्यान
जब सचमुच मैं कहीं होता हूँ
तब चीज़ों के अर्थ खुलने लगते हैं
ख़ुशबू के परमाणु
पूरे आकाश में तैरने लगते हैं
सोच के सिलसिले बनने लगते हैं—

मैं टूटते-टूटते सहज हो जाता हूँ
चीज़ें अपनी बारीक बुनावटों की हद तक
पारदर्शी हो जाती हैं
और तब
कविता में खुलते हुए
मेरे होने के तमाम अर्थ
बेहद अच्छे लगते हैं।

यादों के आईने में महानगर

मेरे महानगर
मेरे दोस्त, मेरे हमसफ़र!
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणों के
चश्मदीद गवाह हो—
कह नहीं सकता मेरे जुर्म की जो भी प्रकृति रही हो
या सज़ा की जो भी भाषा रही हो
लेकिन बार-बार लौट आया हूँ तुम्हारे क़ैदख़ाने में
और यादों के आईने में
उभर आए हैं कई-कई बिम्ब—

भीड़ की बाँहों में
कसा-कसा तुम्हारा बदन
अचीन्हे रिश्तों में बँटा हुआ
तुम्हारे प्यार का क्षण
गुलमोहर के फूलों जैसे
सुर्ख़-सुर्ख़ ज़ख्मों का दर्द, चुभन
हर रंग में दहकता है तुम्हारा चेहरा
गमकती है तुम्हारी साँस

मैं लम्हा दर लम्हा काट रहा हूँ अपने भौतिक समय को दूरी
तुम जवान हो रहे हो महल दर महल
पनप रहे हो नगर दर नगर
मेरे दोस्त,
मेरे हम सफ़र!
तुम्हारे जिस्म की ख़ुशबू है
या तुम्हारी आँख का जादू
पता नहीं—
तुम्हारे साथ अपना होना बेहद अच्छा लगता है
लोग कहते हैं—

तुम्हारी सुबहें लहूख़ोर होती हैं
दुपहरें बेदर्द, बेरहम
शामें थकी-थकी उदास बोझिल
और रातें मांसल, खूबसूरत
मुक्त मन से बाँटती हैं देहगन्ध
तुम शायद उन्हें नहीं जानते

वे तुम्हें, अपना दोस्त, हमसफ़र कुछ नहीं मानते
उन्हें क्या मालूम
तुम्हारी आँख से जो टपकता है बूँद-बूँद
शराब है या लहू
आँसू है या ज़हर

मेरे दोस्त, मेरे हमसफ़र !
तनी हुई मुट्ठियों और जुलूसों की क़तारों
ज़िन्दाबाद-मुर्दाबाद के तमाम नारों के बीच
तुम सचमुच कभी-कभी
क्रान्ति नायक लगते हो
बातों-बातों में
बिखर जाते हैं—
राजनीति के रंग-बिरंगे शब्द
टूटने लगता है तुम्हारे सड़कनुमा सीने पर
बूट और बुलेट का व्याकरण
और दूसरे ही क्षण
मर्करी रोशनी के छोटे-छोटे दायरों में
फूटने लगते हैं
ख़ुशरंग क़हक़हे
कोई कुछ भी कहे—
तुम लाजवाब, लामिसाल हो
मेरे महानगर
मेरे दोस्त मेरे हमसफ़र
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणों के
चश्मदीद गवाह हो।

कविता : ईश्वर से भी बड़ी

मेरे दोस्त, मेरे हमदम!
तुम्हारी क़सम
आकाश मेरे अस्तित्व को शब्द देता है
मेरे समय को लय देता है
हवा मेरी जिजीविषा को भाषा देती है
मेरे जीने की शर्त को
परिभाषा देती है
आग मेरे होने की प्रक्रिया को
पहचान देती है
एक प्रतिमान देती है
पानी चाहे सागर का हो
या किसी नदी का हो
या फिर किसी की आँख का हो
उसकी हर बूँद
मेरी प्यास को
मेरी तलाश को
नए आयाम देती है
माटी की गंध मुझे एक नाम देती है

मेरे दोस्त मेरे हमदम!
तुम्हारी क़सम
शब्दों ने मुझे बूढ़े बाप की तरह
काँपते हाथों से सहलाया है
भाषा ने—
ममतामयी मा की तरह
मुझे प्यार की दूधिया रोशनी में नहलाया है
और कविता की संस्कृति में
जीने का सबक़ पढ़ाया है

मेरे दोस्त, मेरे हमदम!
तुम्हारी क़सम
कविता मेरे लिए एक कवच है
मेरे होने जैसा ही सच है
वह केन्द्र से परिधि तक तैरता हुआ
एक शब्ददेही कम्पन है
आपस में टकराते बिम्बों को
उजागर करने की कोशिश में
युद्ध झेलता हुआ एक दरपन है

कविता न तो बन्दूक़ है
और न मशीनगन है—
लेकिन तिलमिलाती है
तो अँधेरे के आततायी आदमख़ोर
मुखौटों को भून देती है
करोड़ों हताश निराश लोगों को
नई ज़िन्दगी देती है
देश और काल को ख़ून देती है—

बार-बार इतिहास के पन्ने आवाज़ देते हैं—
कविता जब नशे की तरह उभरती है
तब शराबख़ानों के तमाम आबगीने टूट जाते हैं
कविता जब बाहर से भीतर उतरती है
तब तमाम आईनाख़ानों के
आईने टूट जाते हैं
मेरे दोस्त, मेरे हम दम!
तुम्हारी क़सम—
कविता जब किसी के पक्ष में
या किसी के ख़िलाफ़
अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है
तब वह
ईश्वर से भी बड़ी होती है।

रोशनी : अपनेपन का एहसास

कुछ लोग
अँधेरे में
साज़िश दर साज़िश बुनते हैं
कुछ लोग—
एक क्रान्ति से दूसरी क्रान्ति का रास्ता चुनते हैं
और बीच के लोग
कहते हैं—

अँधेरा चाहे जितना भी सुखद हो
न जाने क्यों
रास नहीं आता

अँधेरे में—
आदमी की शिनाख़्त मुश्किल है
वह रोशनी के अभाव में
बेबस है
बुज़दिल है
दरअस्ल, रोशनी भूख है प्यास है
रोशनी अपनेपन का एहसास है।

शब्द-क्रान्ति

शब्द जब मुखौटों से अलग
छन्दों की रोशनी में
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे क़रीब होते हैं
तब हम
कितने ख़ुशनसीब होते हैं

क़लमकश हो या मेहनतकश
सभी शब्दों से जुड़े हैं

हम एक दूसरे के सामने
युयुत्सु मुद्रा में
शब्दों की बुनियाद पर ही खड़े हैं
जहाँ हर मुद्दे पर
अपनी-अपनी हिस्सेदारी के सवाल जड़े हैं

समय को बाँटने की ज़िम्मेदारी
शब्दों की नहीं—
हमारी है

दरअस्ल, शब्दों का न तो कोई धर्मक्षेत्र है
और न कोई कुरुक्षेत्र
यह तो सिर्फ़ हम हैं—
जो शब्दशोषी चेहरे ओढ़े हुए
शब्दों की आड़ में
एक शब्द की ओर से
दूसरे शब्द के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं

और शब्द क्रान्ति की भूमिका में
बेख़ौफ़ एक ख़ेमे से दूसरे ख़ेमे तक टहल रहे हैं
मालूम नहीं—
यह कैसा फ़ल्सफ़ा है
जिसके हर लफ़्ज़ पर हमारे हिस्से का आसमान ख़फ़ा है
फिर भी
शब्द कविता में
मनुष्य होने की यंत्रणा तराशते हुए
सलीब दर सलीब झेलते टँगे रहते हैं
लेकिन जब भी
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे क़रीब होते हैं
हम बेहद ख़ुशनसीब होते हैं।

असंख्य आवाज़ों का सैलाब
भावनाओं की भूमि पर
टूटते भूगोल की शक्ल में लहराता है
और भीतर ही भीतर बुदबुदाता है—

—भारत तो रक्त सने
नफ़रत में डूबे
भूगोल के किसी टुकड़े का नाम नहीं
भारत किरण-लिखे दिलों को रोशनी है
भाईचारे की
अनन्नासी अगहनी कोमल धूप का नाम है

आग-आग होता हुआ
समरसता और कविता की
मुक्तकेशी आनन्दमयी यात्रा का नाम है
भारत एक सार्वभौम अद्वैत विराम है
भारत कमल की पंखुड़ियों जैसे फैले
पूरबी क्षितिज के माथे पर अंकित
अदिति-बिन्दी है,
अनिर्वाण दीप्ति है—

भारत उगते दहकते जवाकुसुमी सूर्य-बिम्बका नाम है
और दरवाज़े-दरवाज़े रोशनी बिखेरने
ख़ुशबू लिखने के अन्तरंग संकल्पों की
विश्वभारती छवि है
प्यार की पवित्रतम नदी में नहाकर
निकली
गंगाजली तहज़ीब
और मानवीय संस्कृति का
ज़मीनी हस्ताक्षर है

भारत रेखाओं से घिरी भूमि का दायरा नहीं, भूमा का स्वर है—
भारत दिमाग़ में खौलते-उबलते
गुमराह ख़यालों का नहीं
सीने में धड़कते
गुलाब महके मज़हब का नाम है
अँधेरा चीरकर
आग की लपटों के भीतर से
उभरती-उफनती हुई

वन्देमातरम् से जयहिन्द तक बहती हूई—
रक्तधारा है
एक अखण्ड इन्क़िलाब का नारा है
भारत,
चन्द बेसुरी धुनों का शोर नहीं
सूली पर टँगी यादों का गमकता सरगम है
शहीदों के ख़ून से जले
जगमगाते दीपों के उजले-उजले
दर्द का संगम है
अहिंसा ही जिसका धर्म है, मर्म है
नये इन्सानी ख़ून के हर क़तरे में बिम्बित
दुधमुँहे विश्व जीवन की
सुचेतनामयी बुनावट को उधेड़ो मत

दोस्तो, दुश्मनो—
सुनो
ऋषियों-मुनियों, कवियों-सूफ़ियों
साधुओं-सन्तों की वाणी से बने-बुने
हिन्दुस्तान के तार-तार
तान-तान कर
कोई और ताण्डव तान छेड़ो मत।

मैं और चीज़ें

कभी-कभी लगता है
चीज़ें हैं और नहीं भी हैं
मैं उन्हें कोई नाम
या अर्थ देना चाहता हूँ—

और
अनगिनत प्रकाश वर्षों की दूरी तक
उनके होने के एहसास
और अपनी तलाश को जारी रखना चाहता हूँ

यानी
मैं कभी शून्य में लटका हुआ होता हूँ
कभी शून्य से परे
कई-कई शून्यों में भटक जाता हूँ
शून्य और
अ-शून्य के दरम्यान
जब सचमुच मैं कहीं होता हूँ
तब चीज़ों के अर्थ खुलने लगते हैं
ख़ुशबू के परमाणु
पूरे आकाश में तैरने लगते हैं
सोच के सिलसिले बनने लगते हैं—

मैं टूटते-टूटते सहज हो जाता हूँ
चीज़ें अपनी बारीक बुनावटों की हद तक
पारदर्शी हो जाती हैं
और तब
कविता में खुलते हुए
मेरे होने के तमाम अर्थ
बेहद अच्छे लगते हैं।

यादों के आईने में महानगर

मेरे महानगर
मेरे दोस्त, मेरे हमसफ़र!
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणों के
चश्मदीद गवाह हो—
कह नहीं सकता मेरे जुर्म की जो भी प्रकृति रही हो
या सज़ा की जो भी भाषा रही हो
लेकिन बार-बार लौट आया हूँ तुम्हारे क़ैदख़ाने में
और यादों के आईने में
उभर आए हैं कई-कई बिम्ब—

भीड़ की बाँहों में
कसा-कसा तुम्हारा बदन
अचीन्हे रिश्तों में बँटा हुआ
तुम्हारे प्यार का क्षण
गुलमोहर के फूलों जैसे
सुर्ख़-सुर्ख़ ज़ख्मों का दर्द, चुभन
हर रंग में दहकता है तुम्हारा चेहरा
गमकती है तुम्हारी साँस

मैं लम्हा दर लम्हा काट रहा हूँ अपने भौतिक समय की दूरी
तुम जवान हो रहे हो महल दर महल
पनप रहे हो नगर दर नगर
मेरे दोस्त,
मेरे हम सफ़र!
तुम्हारे जिस्म की ख़ुशबू है
या तुम्हारी आँख का जादू
पता नहीं—
तुम्हारे साथ अपना होना बेहद अच्छा लगता है
लोग कहते हैं—

तुम्हारी सुबहें लहूख़ोर होती हैं
दुपहरें बेदर्द, बेरहम
शामें थकी-थकी उदास बोझिल
और रातें मांसल, खूबसूरत
मुक्त मन से बाँटती हैं देहगन्ध
तुम शायद उन्हें नहीं जानते

वे तुम्हें, अपना दोस्त, हमसफ़र कुछ नहीं मानते
उन्हें क्या मालूम
तुम्हारी आँख से जो टपकता है बूँद-बूँद
शराब है या लहू
आँसू है या ज़हर

मेरे दोस्त, मेरे हमसफ़र!
तनी हुई मुट्ठियों और जुलूसों की क़तारों
ज़िन्दाबाद-मुर्दाबाद के तमाम नारों के बीच
तुम सचमुच कभी-कभी
क्रान्ति नायक लगते हो
बातों-बातों में
बिखर जाते हैं—
राजनीति के रंग-बिरंगे शब्द
टूटने लगता है तुम्हारे सड़कनुमा सीने पर
बूट और बुलेट का व्याकरण
और दूसरे ही क्षण
मर्करी रोशनी के छोटे-छोटे दायरों में
फूटने लगते हैं
ख़ुशरंग क़हक़हे
कोई कुछ भी कहे—
तुम लाजवाब, लामिसाल हो
मेरे महानगर
मेरे दोस्त मेरे हमसफ़र
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणों के
चश्मदीद गवाह हो।

कविता : ईश्वर से भी बड़ी

मेरे दोस्त, मेरे हमदम !
तुम्हारी क़सम
आकाश मेरे अस्तित्व को शब्द देता है
मेरे समय को लय देता है
हवा मेरी जिजीविषा को भाषा देती है
मेरे जीने की शर्त को
परिभाषा देती है
आग मेरे होने की प्रक्रिया को
पहचान देती है
एक प्रतिमान देती है
पानी चाहे सागर का हो
या किसी नदी का हो
या फिर किसी की आँख का हो
उसकी हर बूँद
मेरी प्यास को
मेरी तलाश को
नए आयाम देती है
माटी की गंध मुझे एक नाम देती है

मेरे दोस्त मेरे हमदम !
तुम्हारी क़सम
शब्दों ने मुझे बूढ़े बाप की तरह
काँपते हाथों से सहलाया है
भाषा ने—
ममतामयी मा की तरह
मुझे प्यार की दूधिया रोशनी में नहलाया है
और कविता की संस्कृति में
जीने का सबक़ पढ़ाया है

मेरे दोस्त, मेरे हमदम!
तुम्हारी क़सम
कविता मेरे लिए एक कवच है
मेरे होने जैसा ही सच है
वह केन्द्र से परिधि तक तैरता हुआ
एक शब्ददेही कम्पन है
आपस में टकराते बिम्बों को
उजागर करने की कोशिश में
युद्ध झेलता हुआ एक दरपन है

कविता न तो बन्दूक़ है
और न मशीनगन है—
लेकिन तिलमिलाती है
तो अँधेरे के आततायी आदमख़ोर
मुखौटों को भून देती है
करोड़ों हताश निराश लोगों को
नई ज़िन्दगी देती है
देश और काल को ख़ून देती है—

बार-बार इतिहास के पन्ने आवाज़ देते हैं—
कविता जब नशे की तरह उभरती है
तब शराबख़ानों के तमाम आबगीने टूट जाते हैं
कविता जब बाहर से भीतर उतरती है
तब तमाम आईनाख़ानों के
आईने टूट जाते हैं
मेरे दोस्त, मेरे हम दम!
तुम्हारी क़सम—
कविता जब किसी के पक्ष में
या किसी के ख़िलाफ़
अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है
तब वह
ईश्वर से भी बड़ी होती है।

रोशनी : अपनेपन का एहसास

कुछ लोग
अँधेरे में
साज़िश दर साज़िश बुनते हैं
कुछ लोग—
एक क्रान्ति से दूसरी क्रान्ति का रास्ता चुनते हैं
और बीच के लोग
कहते हैं—

अँधेरा चाहे जितना भी सुखद हो
न जाने क्यों
रास नहीं आता

अँधेरे में—
आदमी की शिनाख़्त मुश्किल है
वह रोशनी के अभाव में
बेबस है
बुज़दिल है
दरअस्ल, रोशनी भूख है प्यास है
रोशनी अपनेपन का एहसास है।

शब्द-क्रान्ति

शब्द जब मुखौटों से अलग
छन्दों की रोशनी में
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे क़रीब होते हैं
तब हम
कितने ख़ुशनसीब होते हैं

क़लमकश हो या मेहनतकश
सभी शब्दों से जुड़े हैं

हम एक दूसरे के सामने
युयुत्सु मुद्रा में
शब्दों की बुनियाद पर ही खड़े हैं
जहाँ हर मुद्दे पर
अपनी-अपनी हिस्सेदारी के सवाल जड़े हैं

समय को बाँटने की ज़िम्मेदारी
शब्दों की नहीं—
हमारी है

दरअस्ल, शब्दों का न तो कोई धर्मक्षेत्र है
और न कोई कुरुक्षेत्र
यह तो सिर्फ़ हम हैं—
जो शब्दशोषी चेहरे ओढ़े हुए
शब्दों की आड़ में
एक शब्द की ओर से
दूसरे शब्द के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं

और शब्द क्रान्ति की भूमिका में
बेख़ौफ़ एक ख़ेमे से दूसरे ख़ेमे तक टहल रहे हैं
मालूम नहीं—
यह कैसा फ़ल्सफ़ा है
जिसके हर लफ़्ज़ पर हमारे हिस्से का आसमान ख़फ़ा है
फिर भी
शब्द कविता में
मनुष्य होने की यंत्रणा तराशते हुए
सलीब दर सलीब झेलते टँगे रहते हैं
लेकिन जब भी
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे क़रीब होते हैं
हम बेहद ख़ुशनसीब होते हैं।

फैले हुए हाथ

मेरे इन फैले हुए हाथों पर
यदि तुम्हें
कुछ लिखना है
तो मेरे देश का नाम लिख दो
अगर कुछ
देने का इरादा है
या फिर यों ही
बेवजह कुछ रखना है
तो एक मुट्‌ठी आग रख दो—
मैं उसके ताप से
अपने देश के लिए
अपनी कविता के लिए
एक भाषा गढ़ना चाहता हूँ—
इन फैले हुए हाथों का अर्थ है ;—
जीना चाहता हूँ।

शब्द विद्ध समय : एक मारीच गन्ध

जब कभी
मेरे पास समय नहीं होता—
मैं समय की तलाश का स्वप्न बुनता हूँ
तमाम क़िस्म की ध्वनियों से
टकराता हूँ, टूटता हूँ
और आकाश काँपता है
कुहासे के कच्चे बारीक रेशे की तरह

ध्वनियों की भीड़ से
एक शब्दनुमा चरित्र निकालकर
मैं उसे एक नाम देता हूँ
शब्दों के भीतर-भीतर
आकाश दर आकाश प्रतीकों में बाँधता हूँ
बिम्बों की थरथराहट में पकड़ता हूँ
एक बिम्ब से
दूसरे बिम्ब की ओर दौड़ता हूँ
एक प्रतीक से तोड़कर दूसरे प्रतीक से जोड़ता हूँ—
लेकिन वह किसी—
कस्तूरी मृग की तरह निरन्तर भाग रहा है
शब्दों से बिंधा हुआ समय
कभी-कभी जब ख़ामोशी ओढ़कर

मरने का अभिनय करता है
तब शब्दों के केन्द्र में कोई अनुकम्पन नहीं होता
और आकाश काँपता है—
कुहासे के कच्चे बारीक रेशे की तरह

मैं कई रंगों के मुखौटे लगाकर
अपनी पकड़ के भीतर
पूरे आकाश को मथता हूँ
समय बेतहाश चीख़ता है
शब्दों की टकराहट से
न तो किसी सार्थक शब्द का होना महसूस होता है
और न सही समय के होने का एहसास होता है
मैं प्रचलित और सार्वजनिक शब्दों के
एक लम्बे जुलूस के साथ
समय की तलाश में
घटनाओं के सौन्दर्य का बखान करता हूँ
समय के तेवर की
एक धुँधली पहचान करता हूँ
तब तक मेरी समझ में
वह किसी शिकारी की गिरफ़्त में आ चुका होता है
या फिर मेरी आँखों के सामने
मेरी दिनचर्या में मर चुका होता है—

मेरे ईर्द-गिर्द
समय के अदृश्य नथुनों से निकलती हुई एक मारीच गन्ध
शब्दों से शब्दों तक फैल जाती है
मेरी आवाज़ हवा में टँग जाती है
मेरा दम घुटने लगता है
और आकाश काँपता है
कुहासे के कच्चे बारीक रेशे की तरह।

सुनो कविता!

मुझे पता नहीं—
तुम कब
और क्यों मुझसे जुड़ीं
न कोई प्रमाण है न कोई गवाह
सिर्फ़ इतना पता है—
जब कभी भी
तुम मेरे भीतर उतरने लगती हो
मैं आकाश होने लगता हूँ
अपनी वाङ्मय नीरवता के केन्द्र में
तुम्हें एक अनाहत लय की तरह महसूस करता हूँ
और समय के
आदिम अनुकम्पनों में जीने लगता हूँ

धीरे-धीरे
मेरी शिराओं में
तुम्हारे स्पर्श की अनुभूति
थिरकने लगती है
मेरा अहम्
हवा के परमाणुओं की तरह
संगठित होने लगता है

तुम्हारे ताप के दबाव से
बिच्छुरित होने लगता हूँ
पोर-पोर
टूटने लगता है
और एक अदृश्य आग का छन्द बन जाता हूँ
मेरी पिण्डहीन भूमिका पर
तुम अनायास पिघलने लगती हो
मैं किसी अशान्त महासागर की तरह
फैलने लगता हूँ—
अचानक तुम्हारी ईश्वरतमा प्रकृति
सिमटने लगती है
मेरे प्राणों में
शब्द, स्पर्श, रूप, रस
और गन्ध की तरह फड़कने लगती है
मैं धरती के धैर्य
और इतिहास की तरह तुम्हें सहेज लेता हूँ

सुनो कविता!
तुम मेरे समय
और इतिहास की इन्द्रतमा चेतना हो—
प्रतिकृति हो
मेरे बोध और विवेक की
अंगिरस्तमा संस्कृति हो।

अन्तर्यात्रा

अँधेरे का रीछ
क्षितिज के उस पार
किसी बेनाम दरख़्त पर चढ़ गया
और मैं
आँख खुलते ही ट्रांजिस्टर ऑन कर देता हूँ
हाथ-मुँह धोकर
चाय के इंतिज़ार में
'फ़ैज़' का एक क़ता गुनगुनाता हूँ—
तेरा जमाल निगाहों में लेके उट्ठा हूँ

निखर गई होगी फ़ज़ा तेरे पैरहन की-सी
नसीम तेरे शबिस्तां से हो के आई है
मेरी सहर में महक है तेरे बदन की-सी—

कमरे में
रोशनदान से छनकर आती किरणें
उजागर कर रही है कैलेण्डर पर
तारीख़ों में बँटा समय

खिड़कियाँ खुलती हैं
और आँखें आकाश में लटकी
रोशनी की तस्वीर पर टिक जाती हैं
एक ख़ूबसूरत फ़ीरोज़ी सुबह
सामने बिछे
हरे-हरे काग़ज़नुमा मैदान पर
किरणों से लिख रही है समय का दस्तावेज़
मैं भीतर ही भीतर
एक लम्बी दूरी तै करता हुआ
अपने गाँव के सीमान्त पर
निर्वाक खड़ा हूँ—
मेरे इर्द-गिर्द
सीवानों, मैदानों में
न जाने किसने आँक दिया है हरियाली का समुद्र
आस-पास के गाँव-पुरवे
दिख रहे हैं छोटे-छोटे द्वीपों की तरह
आहिस्ता-आहिस्ता
जाने पहचाने तमाम चेहरे उभरते हैं—
देखता हूँ सभी बदराए आकाश के नीचे
समर्पित हैं नए क्षणों में जीने के लिए
बराबर-बराबर हिस्सों में

एक दूसरे का दर्द बाँटने के लिए
मैं किसी भाषाहीन मुसाफ़िर की तरह
चुपचाप देख रहा हूँ—
सारा गाँव ख़ाकी हाशिए वाले खेतों की सतह पर
लिख रहा है श्रम की ऋचाएँ
रात का लहू चाटकर पसरने वाला सन्नाटा
नए सूरज के स्वागत में
कर रहा है मंत्रोच्चार
रोशनी का तेवर पहचान कर
चलने लगी हैं हवाएँ—

और तभी
'अंशु'—पत्नी—की आवाज़
कानों से टकराई
मैं चौंक पड़ता हूँ—
'चाय तैयार है आ जाओ'

सामने पलँग पर
'अनुपम' लेटे-लेटे फीडिंग बोतल से पी रहा है दूध
और नन्ही 'ऋचा' नींद की गोद में
शायद देख रही है कोई सपना
उसके ओठों पर तैर रही है
एक अ-पापविद्ध मुस्कान
और मैं अपनी आँखों में तैरते हुए
हरियाली के समुद्र के साथ
सामने दीवार पर टँगे भारत के नक़्शे के भीतर धँसता हुआ
रसोई घर की ओर बढ़ गया
अँधेरे का रीछ
बीते-मरे क्षणों को सूँघकर
क्षितिज के उस पार किसी बेनाम दरख़्त पर चढ़ गया।

दुश्मन की तलाश : आईना तोड़ते हुए

दोस्तो,
ग़ुस्से में आईना तोड़ना
कोई बहुत बड़ी बात नहीं है
लेकिन आईना होना
एक अलग बात है—
जिसे हम तोड़ना चाहते हैं
वह शायद
आईने में नहीं
अपने भीतर टूटता है
हमारी आँखों के सामने जो टूट रहा है
वह शब्दों का एक सिलसिला है
और जो हमारी समझ में टूट रहा है
वह एक ऐसे बिम्ब का मामला है—
जिसे हमने एक लम्बे समय तक महसूस नहीं किया
और न तो जिया
जिसे हमने अभी तोड़ा है
वह सिर्फ़ एक मामूली आईना है
बिम्ब तो हमारे भीतर उतर गया
लगता है—

हम आईना तोड़ते हुए जो तोड़ रहे हैं—
उसकी भाषा नहीं—
केवल परिभाषा टूट रही है
यह सब कुछ वहम भी हो सकता है
लेकिन
यदि यह सही है
तो फिर तमाम बिम्ब
मूल बिम्ब की पारिभाषिक पहचानें हैं
और संभवतः वही टूट रही हैं
ख़ैर....इसे न भी मानें
तब भी देखने-समझने का काम सचमुच बुरा नहीं है
क्या तोड़ना है
क्या टूटता है
इसका हिसाब पीछे कर लेंगे
फ़िल्हाल आईना तोड़ने में ही हमारी दिलचस्पी है
ग़नीमत है—
बहुत कुछ टूटने के बावजूद
एक ताज़ा आत्मीय बिम्ब
सामने किलक रहा है
हम एक समझदार हाथी की तरह
उसे सूँड़ से उठाकर
अपनी पीठ पर रख लें
या समझ में न आए
तो किसी निरंकुश साँड़ की तरह
सींगों से कूँथते हुए
आगे बढ़ जाएँ
और मवेशीख़ाने के सदर दरवाज़े पर
अपने-अपने दिमाग़ों में छिपे
असली दुश्मन की तलाश करें!

अँधेरे की क़ैद में

स्याह मुखौटों की भीड़ में
खो गई है
हमारी अस्मिता—पहचान
किसी आदिम कालीन सभ्यता के अवशेष जैसे
लग रहे हैं हमारे घर-मकान

जुलूस दर जुलूस—दिशाहीन
तलाश दर तलाश—लक्ष्यहीन
बदरंग हो गए हैं—
रोशनी बाँटने वाले तमाम चेहरे
बाहर से भीतर तक
एक हंगामा ढो रही हैं सुबहें
और आवाज़ों के जंगल में
न जाने कहाँ
गुम हो गई हैं शामें—

धुन्ध और अँधेरा ओढ़कर
चल रहे हैं हमारे आगे-पीछे
तीर-तरकश के साथ
कुछ वक़्ततराश

उनके दिमाग़ों में एक साथ
कई-कई सुनहले मृगदेही मारीच
भर रहे हैं छलाँग
दूर कहीं—
आसमान में थरथराती हुई
किसी अन्तरंग लय के
तमाम ख़ुशनुमा सिलसिले
टूट चुके हैं
और हम
बदहवासी की हद तक चीख़ने लगे हैं।

समय की अभिशप्त भूमिका में
विलाप कर रही हैं महारथियों की विधवाएं
सूर्य अपनी वैवस्वत चेतना की साक्षी में
ख़ून की नदी लिख रहा है

शिविरों से शिविरों तक
एक बेनाम सन्नाटा टहल रहा है
कहीं कोई अश्वत्थामा-अँधेरा बुन रहा है—
एक ख़तरनाक साज़िश
वाणविद्ध पितामह बोध
अन्तिम प्रणाम की प्रतीक्षा में टूट रहा है
पूरे कुरुक्षेत्र के आयतन पर
महाभारत की एक देहवती प्रेरणा
केश बिखराए चीख़ रही है
और
एक सामयिक कौन्तेय संवेदन से
सर टकराती हुई
अपने मृतपुत्रों के कटे सर माँग रही है—
गाण्डीव एक बार फिर थरथराता है
अश्वत्थामा के माथे की मणि
बाहर निकल पड़ती है
और वह दुर्भेद्य अँधेरा ओढ़कर भाग जाता है
उत्तरा का गर्भस्थ शिशु
द्रोणपुत्र का ब्रह्मास्त्र झेलकर
गर्भनाल को कँपाता हुआ मुस्कराता है
धृतराष्ट्र क्षणों के भीतर ही भीतर
चुकती हुई एक गान्धारी रात
समय के उसी बिन्दुपर आकर ठहर गई है
जहाँ एक बूढ़ा इतिहास
बेतहाशा हाँफ रहा है
गाण्डीव क्षितिज बुरी तरह काँप रहा है।

कविता में जीने का सुख

ऋतु कोई भी हो
अगर वह शब्दों से शब्दों तक जुड़ी हुई
आग को तोड़ देती है
तो आकाश का होना व्यर्थ लगता है
हवा, ख़ुशबू लिखना बन्द कर देती है
संवादों के सिलसिले
टूटने लगते हैं
और तब
रचना का कोई क्षण
गहराई की हद तक
रोशनी टटोलता है
या कुछ ऐसा भी होता है—
जब किसी व्यक्तिगत अँधेरे में
कोई अनायास डूबने लगता है
तब कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है

समय कोई भी हो
अगर वह किसी छन्द या आयाम से
अलग उभरने लगता है
तो भीतर ही भीतर
समूचा वाङ्मय उदास हो जाता है
कविता कहीं भी—
किसी रंग में
बुझी-बुझी-सी लगती है
और सही पहचान के तमाम संकेत

दिमाग़ी धुन्ध की नदी में धँसने लगते हैं—
और तब
यात्रा के दौरान
किनारे किसी नाव के बँधे होने का एहसास
सामयिक एकान्त से जूझता हुआ—
दूर-दूर तक तैरता है
अथवा
कुछ ऐसी स्थिति में या इससे अलग
जब एक सामूहिक चीख़ के बावजूद
आँखों में
बेपनाह सन्नाटा उगने लगता है
तब कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है

इतिहास कोई भी हो
अगर वह पेशेवर गवाह की तरह
जीने लगता है—
तो अगले क्षणों के स्वागत में
कोई संकट रचता है
या अपने इर्द-गिर्द
आतंक बुनता है
कभी-कभी किसी कोने से
उछाल देता है तोड़ कर
अपने अंतरंग आकाश का एक नुकीला टुकड़ा
—आईने टूट जाते हैं
बिम्ब आपस में टकराने लगते हैं
तब कविता में जीने का सुख
बाहर से भीतर की ओर फैलने लगता है
और कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है।

आग बाँटने का क़लमबन्द दस्तावेज़

एक समय ऐसा भी था
हमने आग को
छन्दों में बाँधा था
हमारी शिराओं में आग की नदी बहती थी
आग जब कहीं नहीं मिलती थी
हमने उसे उलीचा था
बाँटा था—
वह सिर्फ़ हमारा समय था
जब आग की प्रांजलता का नाम कविता था
सूर्य उसका छन्द-पुरुष था
और आकाश उसका पिता था
हमारी दहलीज़ों पर ऋचाओं का पहरा था
मंत्रविद्ध समय
कभी नहीं आग का मोहताज था—

अँधेरे के ख़िलाफ़
हमने पहली बार आवाज़ बुलन्द की थी
तब हमारे उन पुरखों का राज था
जिन्होंने आग से आग रचने की घोषणा की थी
और आकाश में
थरथराती हुई जिजीविषा की साक्षी में
आदिगन्त कौंधता हुआ एक शब्द आग लिखा था
....एक समय ऐसा भी था
एक समय यह भी है
आज आग हमारे इर्द-गिर्द
निष्कम्प है—बुझी है—
हम उसे हवा में एक लम्बी भीड़ पर
उछाल कर
साबित करना चाहते हैं
'यह आग दिखावटी है'

सब्र से काम लें—
सही आग की तलाश में
कुछ लोग रात-दिन व्यस्त हैं
कुछ आग को आग न रहने देने के लिए युद्धरत हैं
और आग के बिना
त्रस्त है—एक पूरा देश
भीड़ में शामिल
हर मुट्ठी का नुमाइशी आक्रोश—पथरा गया है
पीले चेहरों पर उभरी हुई
सवालनुमा सुर्ख़ियाँ चीख़ती हैं—
क्रान्ति का समय आ गया!
लेकिन दोस्तो
हमें याद नहीं
हम राख के ढेर हो गए हैं

हमारा कोई सवाल
आग की भाषा में नहीं तराशा गया है
आग की तिजारत करने वाले
हमशक्ल क़बीलों ने
हमारी वल्गामुखी आग को
दो हिस्सों में विभाजित कर दिया
एक का नाम भूख
एक का नाम आग रख दिया
और हमारी आँखों में अँधेरा झोंककर
आग की चेतना को छीन लिया
हमारे पास तो अब केवल शब्द रह गया है
इसे भी छीन लेने की साज़िश में
हमारे चेहरों पर
सुनहली क्रान्ति का मुखौटा मढ़ दिया गया है—
हम जानते हैं
जिन्हें आग की कोई ज़रूरत नहीं
उन्होंने बन्द कर रक्खा है फ्रिज में
उन्हें डर है
आग कहीं हद से न गुज़र जाए
और जिन्हें भर पेट आग चाहिए
उनके चेहरों पर
भूख के शब्द उग आए हैं

(जो ख़ाली जगह को भरने की
निहायत जंगली और आदिम कोशिश का अक्स है)

भूख हमें भीड़ के मुँह में डालकर
मिटती नहीं
और आग आसमान में काँपते हुए
असंख्य परमाणुओं को जन्म देकर

कभी बुझती नहीं—
आग हमारी रचना
और चेतना का समिद्ध इतिहास है
फ़िलहाल इतिहास के नाम पर
जो हमारे पास है
वह आयातित है, आरोपित है
उसे पीठ पर लादे
हम आग की तलाश में भीतर से टूट गए हैं
हम अच्छी तरह जानते हैं—
आग से रेखांकित दायरे के बाहर पाँव रखते ही
आग बाँटने का हमारा क़लमबन्द दस्तावेज़
अँधेरा फ़रोश रहनुमा जैसे लोग चुरा ले गए
हमें याद है—
वह भी एक समय था
जब हमने बची-खुची आग को सरे आम बेचा था—
समय अब भी है
समय का संकेत है—
आग पीढ़ी दर पीढ़ी आग ही रहती है
फिर तो आग जिसकी मा हो
और समूची पृथिवी जिसकी प्रतिमा हो
—लानत है उसके बेटे आग के लिए हाथ फैलाएँ
दोस्तो,
आग शब्दों के भीतर सोई है
आओ उसे भाषा दें-जगाएँ—
जिसे कभी
हमने अपना रक्त पिलाया था
एक समय ऐसा भी था
हमने आग को
छन्दों में बाँधा था
हमारी शिराओं में आग की नदी बहती थी।

'मानस' और अपनी शताब्दी के बीच

अपनी शताब्दी की ऊँची इमारत के
जिस हिस्से पर खड़ा हूँ
वहाँ नीचे से ऊपर तक टँगी निगाहों में
किसी अनाम अजनबी वस्तु का
अक्स बनकर उभर रहा हूँ—
मुझे साफ़-साफ़ दिख रहा है
समय के इर्द-गिर्द
चहलक़दमी कर रहा है
वर्दीधारी एक हथियारबन्द बौना
चारों ओर तैनात है सन्नाटे का पहरा
चहारदीवारी के बाहर
समय का कोई हमशक्ल
भागा जा रहा है कन्धे पर बिठाए आदिम कुहरा
भय से भीतर ही भीतर
धँसती हुई दिशाएँ—
अँधेरे में टटोल रही हैं अपने होने का एहसास
दिशाहीन आकाश कामगन्ध से आक्रान्त
रोशनी और ख़ुशबू की तलाश के बहाने
हिरण्यवर्णा दक्षकन्याओं को सूँघ रहा है
और—
धुन्ध के महासागर से
आहिस्ता-आहिस्ता उग रहा है एक छन्द-पुरुष
कुछ देर पहले
जो भी समय था
वहाँ उजागर हो रही है
गुलाब की टहनी से लिखी—
एक दिगन्तव्यापी कविता

कमल के पत्तों पर थिरक रही है
प्रत्यूषवती मंगल वेला
और पद्मकोष में बन्दी अँधेरा
बन गया न जाने कब
रोशनी की वर्णमाला
सूर्य-प्रिया गर्भवती संज्ञाएँ
बाँट रही है
रोशनी और खुशबू का इनाम
सूर्यवंशी क्षणों के जन्म दिन की प्रतीक्षा में—
श्रद्धा-शील, सत्कार
वात्सल्य स्नेह-प्यार की फ़ाख़्तई भूमि पर
उभर रहा है—
एक किरण-मंडित परिवेश
धीरे-धीरे एक पूरा देश
एक सूर्यमुखी भीड़, एक इतिहास
एक चरित्र, एक लोक, एक मानस
एक विश्वास
तैरने लगता है धूप की गंगा में
और
मुझे साफ़-साफ़ दिख रहा है
मैं जहाँ था वहाँ नहीं हूँ—
उस ज़मीन पर खड़ा हूँ
जो पाँव के नीचे से
खिसक रही है—
सामने दिख रहा है
धरती को रौंदता हुआ
सफ़ेदपोश बौनों का जुलूस
कन्धों पर लटके हैं लाखों इन्द्रधनुष
तीर की नोकों में बँधी हैं
रंग-बिरंगी झंडियाँ
हवा में हिल रहे हैं ख़ाली तरकश

मंच के ऊपर मंच
मंच के भीतर मंच
कोई नहीं स्वीकारता है—
किसी राघवेन्द्र की भूमिका
कहीं नहीं दिखता
पथराई अहल्याओं को उबारने का संकेत
और धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञाएँ
मुट्ठियों में बाँधे
वापस जा रहे हैं—
मुखौटा लगाए तमाम पराजित, परिचित चेहरे
पंचवटी से
पंचशील तक
चीख़ रहा है छद्म ओढ़े कोई अदृश्य मारीच—
स्वर्ण-मृग का लोभ
लक्ष्मण-रेखा के टूटने की मज़बूरी
महातपा वैदेही चेतना की
क्षितिजों पर कराहती आवाज़
जटायु-बोध
और दशमुख आक्रोश—
इनके बीच
नहीं दिख रहा है कोई धनुर्धर
और मुझे
साफ़-साफ़ दिख रहा है अपना घर
एक भरी-पूरी दोपहर
कमरे में तैर रही है—महाबीरी धूप-गन्ध
पत्नी की गोद में—खुला है रामचरित मानस
लगता है
भीतर कोई सूर्यदेही गुलाब गमक रहा है
एक पहचाना स्वर
मुझे अपनी ओर खींच रहा है—
'छविगृह दीपशिखा जनु बरई'।

लड़ाई क़लम के लिए

मेरे इर्द-गिर्द
खड़ी है—हथियारों से लैस
लहूफ़रोशों की जमात दर जमात
और मेरे पास
हथियार के नाम पर है—
सिर्फ़ एक अदद क़लम
ऐसी स्थिति में
साफ़ बात है—लड़ना ज़रूरी नहीं लगता
लेकिन सवाल है—लड़ें क्यों नहीं
यह सच्चाई है या वहम
न तो मुझे यक़ीन है और न मेरे दुश्मनों को
वे जीना चाहते हैं—
उन्हें ख़ून और हथियार की ज़रूरत है
मुझे जीना है
रोटी और कविता के बीच दबोची हुई
अपनी रचना के इकलौते आकाश की सुरक्षा के लिए
मुझे लड़ना है—
एड़ी से चोटी तक उगते हुए
ख़ून और पसीने के लिए
और आग जो अब तक अनलिखी है
उसकी दहकती हुई ऋचाओं में
जीने के लिए
उन्हें बारूद और बुलेट की आड़ में
अपनी हिफ़ाज़त के लिए लड़ना है
मुझे अपने क़लम को
सही-साबूत रखना है।

समय रचना

दिशाएँ भीतर ही भीतर
टूटती हैं
संकेत उगता है
आकाश के चिटख़ने का
ओंठों पर आग लिखने का
क्षण सुलगता है
दृष्टियों में उभरे
कुहरे की काग़ज़ी सतह पर
किरणनुमा पारदर्शी
समय रचने का
संकेत उगता है
आकाश के चिटख़ने का
दिशायें—
भीतर ही भीतर
टूटती हैं।

और सपना टूट गया

बहुत दिन पहले
एक सपना देखा था
—और याद है
एक फ़रिश्ता
मुझे गुलाबों के शाही बाग़ तक ले जाकर
न जाने कहाँ ग़ायब हो गया
अचानक मेरे दाहिने कंधे पर
सोने का एक कबूतर उग आया

गौरैया के नन्हे-नन्हे बच्चों की तरह
झुण्ड के झुण्ड सपने
मेरे इर्द-गिर्द फुदक रहे थे
उनके पंख गुलाब की पंखुड़ियों जैसे थे
चोंच सोने से मढ़ी थी
मैं सपने में—
एक सुनहला सपना बुन रहा था
इसी बीच
सफ़ेद हाथियों का एक जुलूस
मेरी ओर चिंग्घाड़ता हुआ आ रहा था
—और सपना टूट गया
आँख खुलते ही देखा
एक मकड़ी मेरे सामने खिड़की के ऊपर
अपने ही तन्तुजाल में
एक कोने से दूसरे कोने तक
बेतहाशा भाग रही है—
एक छिपकली हरसिंगार के फूलों जैसे
पंजों पर बल देती है
आहिस्ता-आहिस्ता जीभ लपलपाती
उसकी ओर बढ़ रही हैं—
मैं सहज भाव से
दोनों को उनकी अपनी-अपनी स्थितियों में
सही मानकर
स्वयं को ग़ैरहाज़िर करने की
तैयारी में जुट गया
बाहर आकर
अख़बार के पन्ने सूँघता हूँ
और अकाल झेलता हुआ एक देश
मेरी पीठ और पेट से चिपक गया।

युद्धशील
(वियतनामी मुक्ति-संग्राम)

उन्हें महसूस होता है
वे मर गए हैं, वे नहीं हैं
—वे युद्धशील हैं
काले रीछ जैसा अँधेरा
उन्हें सूँघकर
रोशनी की तलाश में
कहीं और चला गया
उनकी चीख़—
ज़िन्दा रहने की एक प्यारी आवाज़
तमाम वनैले सुअरों के कानों से टकरा कर
वापस आ गई
अब वे सुअरों की क़ैद में है
बहुत दूर से हवा में उछाली गई
तमाम नक़ली आवाज़ों का सिलसिला टूट गया
लावारिस लाश के अतिरिक्त
अब उनकी कोई शिनाख्त नहीं है—
आसमान उन्हें तब भी ढोता है
और उन्हें महसूस होता है
वे मर गए हैं—वे नहीं है
वे युद्धशील हैं।

हवा में उड़ते रक्ताणु

मैं शाम के धुँधलके में
अचानक रुक गया
आकाशवाणी की एक बुलेटिन के बीच का टुकड़ा
मेरे कानों पर चिपक गया
मेरी दृष्टि लैम्पपोस्ट के बल्ब से
अनायास ही जूझकर
आस-पास खड़े कई अपरिचित लोगों की
निगाहों से जुड़ जाती है
'युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया'—
मुझे लगा
जैसे मैं एक ठंडी रक्त-झील में
धँस रहा हूँ
और दिमाग़ की कई नसें हठात कटकर
सरहद के आर-पार
छटपटा रही हैं
जाफ़रान की घाटी से टकराकर
लौटी हुई आवाज़ें
अँधेरे का मुँह नोचती हैं
अन्यमनस्क-सा चलता हुआ मैं
भीतर ही भीतर चुक गया
युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया
हवा में उड़ते
अनिश्चय का अन्तराल झेलते
असंख्य रक्ताणुओं को बारूद की गन्ध
अच्छी नहीं लगती
अस्तित्व का सटीक और आदिम अर्थ
फूलों-पेड़ों, पत्तियों पर
कलों-कारखानों पर
इस्पाती चेतना की तरह फैल गया जम गया
युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया।

आदमी बनाम आदमी

मेरा नाम
तुम्हारा नाम—वियतनाम वियतनाम
और कलकत्ते की एक ख़ूबसूरत शाम
दोनों के बीच
सैण्डविच होते हुए एहसास के साथ
नगर-नायिका के
पुष्प सज्जित जूड़े से लटक कर
मरे हुए आत्महन्ता क्षणों की भीड़ में
नितान्त अचीन्हे, अपरिचित

चेहरों का याद आना
कितना वाहियात है!
—शहर में चुपड़ी हुई रोटी के टुकड़ों जैसी सुबहें
बारूद के धुँएं में भटकती हुई साँसें
खोई हुई राहें
कूड़ों के ढेर जैसे
लोगों के जत्थे पर जत्थे
निरीह, निर्जीव निहत्थे
इनमें कहीं कोई आदमी जैसा नहीं दिखता है
अँधेरे को सौंप दी गई दृष्टियों में
एक जंगली भैंसे जैसा कालखण्ड उभरता है
सींग-पूँछ में बँधे
आदमी ही आदमी दिखते हैं
और सूर्य पिघलकर
रक्त की नदी जैसा
तमाम रक्तप्यासे ओठों को समर्पित है
हम सब के क़रीब
और बहुत क़रीब
रोशनी के छज्जे पर टिकी सजी-सँवरी एक आवाज़ है
जो किसी नए अर्थ की मोहताज है
किसी बारीक अर्थ में
न तो शीरीं है, न तो लैला है
न तो मुमताज है
सचमुच,
कौड़ियों के मोल बिकते अस्तित्व की
इस शताब्दी में
एक आदमी की हैसियत से
यह सब कुछ सोचना
कितना वाहियात है!

मैं उस सीमान्त की बात नहीं करता हूँ
जिसे किसी दिन
मेरी चेतना ने छुआ था दुलराया था
मैं तो उस सीमन्त की बात करता हूँ
जिसे मेरे भावुक आयामों ने
चूमा था, सहलाया था
आज तुम
उस सीमान्त से कुछ दूर अलग
बात करती हो
अपने सिमटे, टूटे, ऐंठे परिवेश की
और मैं—
अब भी बात करता हूँ
तुम्हारे सीमन्ती अर्थों की
ओठों पर रेंगते आवेश की
याद होगा शायद
बहुत दिन पहले
तुमने रोशनी की कई रेखाओं को
एक बिन्दु पर मिलाया था
आज मैं
उन क्षणों की बात नहीं करता हूँ
जिन्हें मैंने प्यार के दरवाज़े तक बुलाया था
मैं तो अब
उन क्षणों की बात करता हूँ
जिन्होंने मेरी तमाम गदराई शामों को
तुम्हारी उँगलियों में बाँधकर
याद नहीं
कहाँ-कहाँ बहलाया था
मैं तो उस सीमन्त की बात करता हूँ
जिसे मैंने चूमा था सहलाया था।

अलग-अलग : लम्बे सफ़र की यंत्रणा

इतना लम्बा सफ़र.....और हम अचानक
अलग-अलग विपरीत दिशा की ओर मुड़ गए
हम दोनों के बीच
कई अनचाहे प्रसंग
चुपचाप आकर बैठ गए
अब तक जितने क्षण पिरोए थे
सब के सब टूट गए--
इस दूरी को दर्द का नाम दे गए
और--
सूरज की पहरेदारी में
रोशनी निथर गई
व्यस्त हैं रात की तीमारदारी में
अँधेरे की तनी हुई शिराएँ
घेरे है, टूट जाने का डर
इतना लम्बा सफ़र
और हम अचानक अलग-अलग
विपरीत दिशा की ओर मुड़ गए--
लगता है
हम दोनों को
रास्ते के खामोश चेहरे पर उभरी-उभरी
परछाइयों के घटते-बढ़ते
आकार पी गए
दूर बहुत दूर
टूटकर गिरी प्रश्नगर्भा उल्काएँ
किसी नई पीढ़ी के जन्म दिन की प्रतीक्षा में
समय का एक-एक क्षण पी गई होंगी
और छटपटाती होंगी
रेतीली घाटी की बाँहों में
बालू के बिस्तर पर
इतना लम्बा सफ़र.......
और हम.......

तुम्हारा न होना (हावड़ा स्टेशन की एक शाम)

चींटियों की क़तार जैसी एक भीड़
मेरे क़रीब से गुज़र जाती है
और मेरी दृष्टि अकेलेपन से जूझती हुई
अनायास एक अनमने सन्दर्भ से जुड़ जाती है
मैं यादों की परतों को
आहिस्ता-आहिस्ता उघारता हूँ
और सोचता हूँ
तुम मेरे आस-पास
दिल में, दिमाग़ में कहीं नहीं हो
और चींटियों की क़तार जैसी
एक भीड़
मेरे क़रीब से गुज़र जाती है—
रोशनी की रंग बिरंगी लकीरों से घिरा
मुसाफिरख़ाना बेहद उदास लगता है
ऊपर तेज़ी से चक्कर काटते हुए
बिजली के पंखों पर
किसी आवाज़ का टिक जाना मुमकिन नहीं
इधर-उधर न जाने क्या-कुछ देख रहा हूँ—
रोशनी के छोटे-छोटे वृत्तों के बीच
यात्राहीन अस्तित्वों की परछाइयाँ थरथराती हैं
आवारा, मज़बूर और यतीम माँओं के
रूखे सूखे, निचुड़े स्तनों से चिपके—
तमाम बीमार बेनाम बच्चों को
एक टक निहारता हूँ
और सोचता हूँ—
तुम मेरे आस-पास
दिल में दिमाग़ में कहीं नहीं हो—
और चींटियों की क़तार जैसी
एक भीड़
मेरे क़रीब से गुज़र जाती है।

आकाश कुछ और धँसता है

रोज़ाना की तरह
बिस्तर पर बिछ जाती हुई
किसी जिस्मफ़रोश औरत-सा माहौल
आधी रात
बेमतलब भौंकते हुए कुत्तों-सा
कई प्रश्नों का गिरोह—
ताड़ के पत्तों पर
दम तोड़ती हवा
और पोखर के गँदले पानी में
धँसा हुआ आकाश—
इन सबों का सही अर्थ
कई टुकड़ों में कटा हुआ
अधमरे साँप की तरह छटपटाता है
निरर्थक क्षणों की एक क़तार
बड़ी तेज़ी से कौंधती है
खिड़की के पर्दे पर चिपका हुआ अँधेरा सरकता है—
और सुबह होते ही
तमाम चेहरे आईने में उतर जाते हैं
कुत्ते दहलीज़ों पर दुम हिलाते हैं, ऊँघते हैं
पोखर के गँदले पानी में
धँसा हुआ आकाश
कुछ और धँसता है
हवा में उड़ते हुए बहुत सारे अर्थ कहीं नहीं होते
—सिर्फ़ उनकी अर्थी होती है
....आकाश कुछ और धँसता है।

मसीहानुमा लोगों का जुलूस

हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है
जो बहुत सारे रास्तों से मिलता हुआ
किसी अनिश्चित दिशा की ओर जाता है
उस पर चलना—
एक प्रश्न बनकर उभरता है—
लाल, हरे सिगनल की तरह
जो हमें किन्हीं भी सन्दर्भों में
ज़िन्दा रहने का संकेत देता है
और कभी-कभी
हमारी नियति के एहसास से जोड़ता है
हम कहीं छिटक जाएँ
भटक जाएँ—
इसका कहीं कोई ज़िम्मेदार नहीं—
तमाम अजनबी चेहरों की भीड़ को चीरते हुए
कुछ अलग और आगे
कई मुखौटे दीख जाएँ—
तब भी रास्ता सिर्फ़ रास्ता है
उसके ख़त्म होने तक
हमारी दृष्टियों का रिश्ता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है—
समूचे रास्ते पर
अनायास भीड़ पर भीड़ बिछ गई है
और उसको रौंदता हुआ
चौकन्ना-सा चौंकता हुआ मसीहानुमा लोगों का एक जुलूस—
आगे बढ़ रहा है
नारेबाज़ी से टूटता हुआ

आस-पास का सन्नाटा
बड़ी तेज़ी से आवाज़ों का सैलाब बन जाता है
फ्लेगों और फेस्टूनों से चिपका हुआ पूरा एक युग
इलेक्ट्रिक तार से लटकी मरी चिड़िया की तरह—
हमारी आँख में उतर जाता है
अर्थ कतरा कर हवा में उड़ जाता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है
हमारे सामने
न तो कोई फ़ैसला है,
न तो कोई हासिल है—
हम नहीं जानते
हमारे समानान्तर जो भी है
वह मूर्ख है या जाहिल है
पता नहीं क्यों—
हम किसी ऐसे आदमी छाप फ़रिश्ता की तलाश में
भीड़ बन जाते हैं
जो हमें भीतर से कुरेद-कुरेद कर
खाता हुआ—
एक देश के आयतन जैसी पूरी भीड़ को
मलेरिया के कीटाणु समझकर
उस पर ज़हर छिड़कता हुआ
तीर की तरह आगे निकल जाता है
हमसे चिपके हुए
बहुत सारे नन्हे-मुन्ने क्षणों को निगल जाता है
और—
अस्तित्व के सीमान्त पर
हमारी लाशों को
समय का एक बहुत बड़ा बर्फ़दार हिस्सा ढँक जाता है
क़तार दर क़तार
पथराये खड़े मसीहानुमा लोगों की याद में
रास्ता कुछ और बढ़ जाता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है।

संचेतना का उत्ताप
(युद्ध और गर्मी के दिन)

गांवों-नगरों, पहाड़ों और घाटियों पर
तमाम बेपनाह
बेगुनाह लोगों की गर्दनों पर
किसी हत्यारे की कटार जैसा आकाश झुक गया है—
एक मुखौटाधारी प्रश्न
छाँह में लेटे तमाम उत्तरों को
सचमुच दबोच रहा है
दूसरों के बारे में
कहीं भी, कोई भी
कुछ नहीं सोच रहा है
रेगिस्तान में भटकती—
बेनाम जली भुनी आवाज़ों से
धूप में लिपटी
अग्निगन्धा धारणाओं से
धरती का कलेवर ही नहीं—
मस्तिष्क का समूचा आयतन धिक गया है
—और किसी हत्यारे की कटार जैसा
आकाश झुक गया है
हाँफते, ग़ैरपालतू कुत्तों की निकली जीभों जैसे
अस्तित्वों के सिलसिले—
नन्हें-नन्हें
सफ़ेद अण्डों को मुँह में दाबे
नीचे से ऊपर की ओर उठते हुए
चींटियों के संत्रस्त क़ाफ़िले—

संचेतना का उत्ताप
(युद्ध और गर्मी के दिन)

गांवों-नगरों, पहाड़ों और घाटियों पर
तमाम बेपनाह
बेगुनाह लोगों की गर्दनों पर
किसी हत्यारे की कटार जैसा आकाश झुक गया है—
एक मुखौटाधारी प्रश्न
छाँह में लेटे तमाम उत्तरों को
सचमुच दबोच रहा है
दूसरों के बारे में
कहीं भी, कोई भी
कुछ नहीं सोच रहा है
रेगिस्तान में भटकती—
बेनाम जली भुनी आवाज़ों से
धूप में लिपटी
अग्निगन्धा धारणाओं से
धरती का कलेवर ही नहीं—
मस्तिष्क का समूचा आयतन धिक गया है
—और किसी हत्यारे की कटार जैसा
आकाश झुक गया है
हाँफते, ग़ैरपालतू कुत्तों की निकली जीभों जैसे
अस्तित्वों के सिलसिले—
नन्हें-नन्हें
सफ़ेद अण्डों को मुँह में दाबे
नीचे से ऊपर की ओर उठते हुए
चींटियों के संत्रस्त क़ाफ़िले—

—ऐसे में कौन किससे गले मिले
आख़िर प्यार कहाँ पले?
किसी प्रयोगशाला में
अथवा
शकुन्तलाओं और सावित्रियों की पलकों तले!
तड़पकर मरे हुए
हरिणों की लाशों को रौंदता
भागा जा रहा है
बौखलाया-सा
एक आदिमयुगी
दाढ़ी वाले शिकारी की तरह सूर्य बेतहाशा
लगता है—
संचेतना का उत्ताप
अन्तिम विन्दु पर टिक गया है
और—
किसी हत्यारे की कटार जैसा आकाश
झुक गया है
दूर कहीं टँगी हुई मेरी दृष्टि में
सुअर के सौदागर की
लाल-लाल आँखें उभर रही हैं
और बलि हो जाने के लिए
किसी कुल-देवता की प्रतिष्ठा पर
—अन्धे विश्वासों की क़ीमत पर
अभी-अभी
एक सुअर का बच्चा बिक गया है
तमाम बेपनाह
बेगुनाह लोगों की गर्दनों पर
किसी हत्यारे की कटार जैसा
आकाश झुक गया है।

सिमटते अन्तराल

प्यार की वल्गाएँ थामे
खड़ी है
असंख्य आदिम चेतनाएँ
और तन गई है
प्रत्यंचाएँ

हवा में तिरते
संकेतों और सन्दर्भों ने
कई नाम
लिखकर मिटा दिए
बेरहम बहेलिए
अभी-अभी
आस-पास की झाड़ियों से
कई तीर बिंधी कबूतरियों को
झोली में भरकर
चल दिए

और—
ऊँगलियों के पोरों से
लिपटी हुई
तड़प तड़प कर
मर गई आस्थाएँ
—तन गई हैं प्रत्यंचाएँ।

प्रेमिकाएँ

प्रेमिकाएँ
बर्फ़ की चट्टानों से
बेवजह तराशी हुई आकृतियाँ—
शिल्प के नमूनों जैसी
महज़ नुमाइशी
उनका औरतनुमा होना
हमारी दृष्टियों की गर्माहट से
किसी ख़ास विन्दु तक फिसलकर
ठंडा और ठोस लगता है
ज़मीन के कई हिस्सों को
कुहरा दबोचकर बैठ जाता है
और—
आकाश की वीर्यप्रभता उफनकर
अस्तित्व के अरक्षित सीमान्तों पर
फैल जाती है—
एक आदिम बोध
बर्फ़ की चट्टानों पर सुलगता है
आकृतियाँ सिमटती हैं
शिल्प गलता है।

हाशिए के बीच

विन्दु-विन्दु
नुक़्ता दर नुक़्ता ज़िन्दगी
लकीर जैसी खिंच गई है
अस्तित्व के नीले पन्ने पर
चारों ओर—
और मैं हूँ हाशिए के बीच की
उस लिखावट-सा
जिसे प्यार की
अनाम थरथराहट
दर्द की उँगलियों से
लिख गई है
ज़िन्दगी लकीर जैसी
खिंच गई है।

अस्तित्व की शव-परीक्षा

तुम्हारे दिल और दिमाग़ से
बारूद की गन्ध आ रही है
दिशाओं की कोख से जन्मा युग
गर्भनाल समेत
भागा जा रहा है
और—
पथराई अस्थियों के गुहाद्वार पर
बैठा मसीहा
स्वयं को ज़िन्दा महसूस करने की धुन में
नस-नस में
सुई चुभो रहा है—

दूर बहुत दूर
रेगिस्तान के आख़िरी छोर पर खिले
एक जंगली गुलाब को
सूरज की अन्तिम किरण
चूमकर
सहला कर
चुपचाप उदास दबे पाँव
वापस जा रही है
तुम्हारे दिल और दिमाग़ से
बारूद की गन्ध आ रही है।

क़लम का दर्द

प्रकाशक :
युवा ज्योति
42, पाथुरिया घाट स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 006

मुद्रक :
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
6ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता - 700 007

आवरण :
राजेन्द्र कानूनगो

प्रथम संस्करण : 1989

मूल्य : बीस रुपए

पृष्ठ : 50

अनुक्रम

नाव न कोई ठाँव	288
स्वप्न इतने कागदी	289
लोग फिर भी अजनबी हैं	290
राम भरोसे पूरा देश	291
रत्ती भर कविता	292
गीत लिखो या दर्द बाँट दो....	293
आसमान में टँगे	294
यादों में प्यार खिले	295
तुम्हारे पास	296
आगत के नाम	297
क़लम का दर्द	298
फूंको तुम क्रान्ति-शंख	299
कुछ सोचना	300
पारदर्शी दरपनों का सत्य	301
कुर्ते में कितने पैवन्द	302
चिटख़ रहा पोर-पोर	303
फूल पत्ते आदमी	304
द्वन्द्व	305
अ-यात्रा	306
एक छंद टूट गया	307
संकट में रचना है	308
याद के धुँधलके में	309
आओ अब लौट चलें	310
धान सारा चुग गई... (एक अकाल-यात्रा)	311
इन्द्रधनु टँगे हैं	312
आओ, कुछ क्षण जी लें	313
चुके-चुके लोग	314

शब्दों को लय दो	315
चलो- लिखें कुछ रोटी	316
भरे जेबों में अँधेरा	317
रोशनी उधार की	318
हम कुछ लोग	319
एक क़र्ज़ दूध का	320
तीन मुक्तक	321
देह गन्ध से परे	322
अनमाँजे रूपों को रतन करो	323
क़तरा-क़तरा लहू	324
मेरे आँगन गाछ अनार	325
शब्द पीटे जा रहे हैं	326
हम दिमाग़ी तौर पर	327
आपातकालीन प्रसंग :	
आगे हो लो या रुक जाओ	328
पूछते हो ख़ैर बोलो कहाँ अब तक तुम रहे	329
बन्द लब के दायरे में कोई गुल खिलने लगा	330
सूने में कहीं चीख़ता हर आम आदमी	331
आदमी से आदमी को आज तक जो कुछ मिला है	332
हमने कुछ ऐसी ही आज़ादी पाई	333
नारेबाज़ी का मसला है	334
ये कुछ लोग हैं बौने-बौने	335
बिकती है जहाँ ज़िन्दगी मुँहबन्द गुलाबों की तरह	336

कुछ इस तरह भी

'क़लम का दर्द' मेरी कुछ ऐसी गीत-रचनाओं का संकलन है, जिनके माध्यम से मैंने अपने समय के मिज़ाज और तेवर की पहचान करते हुए अपनी कवि चिन्ता को एक और यात्रा या आयाम के संकट विन्दु तक लाने की कोशिश की है ।

सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों-विसंगतियों तथा वास्तविकताओं की भूमिका में रचे गए ये गीत संभवतः हर संवेदनशील रचनाकार के क़लम के दर्द को सहला सकते हैं– तेज़ कर सकते हैं ।

भाषा, शिल्प, बिम्ब एवं प्रतीक की ऋजुता और वक्रता के साथ एक कवि-गीतकार एवं मामूली आदमी के बीच अपनेपन के गहरे लगाव एवं भावात्मक या मानवीय सरोकार के रूमान का अगर कुछ आभास और अहसास इन गीत रचनाओं के भीतर से गुज़रते हुए होता है तो मैं अपनी इस गीत-यात्रा को एक सार्थक प्रयास मानूँगा ।

–छविनाथ मिश्र

गुरुपूर्णिमा
18.07.89
साहब बगान
लिलुआ, हावड़ा

स्वप्न इतने कागदी

फाइलों की बाढ़ ओढ़े स्वप्न इतने कागदी
बहा ले आई कहाँ से
समय की पगली नदी ।

लिख रहे हैं
रेत पर कुछ नाम नीले लाल पीले
नर्म नाज़ुक उँगलियों से–
राजपुरुषों के क़बीले
देश प्यारा
रट रहा है अटपटे जुमले कई
देखना है–
आ रही है दुधमुँही अगली सदी
...स्वप्न इतने कागदी ।

क़ाफ़िले
बारूद छितराते हुए कुछ आ रहे हैं
कुछ शिखर से शिखर तक की
दूरियाँ तै कर रहे हैं
क्रान्ति से
आतंक तक साबित नहीं घर-घाट भी
आदमी की–
नियति शायद बुन रही है त्रासदी
...स्वप्न इतने कागदी ।

लोग फिर भी अजनबी हैं

दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी–
अजनबी हैं ।

हम किसी आदिम अँधेरे में खड़े हैं
प्रश्न कुछ मुर्दा पड़े हैं
जो इन्हें कन्धा लगाते वे उजाले
कुछ ज़ुबानों
कुछ सलीबों पर जड़े हैं
तथ्य कुछ है
कथ्य कुछ है
शब्द बेगाने हुए हैं
दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी
अजनबी हैं ।

पेड़ पाखी फूल पत्तों को पता है
और यह जो रास्ता है
आदमी चलता रहा बेख़ौफ़ जिसपर
वही शायद गुमशुदा है–
लापता है
ओट में बैठे
अहेरी
तीर सब ताने हुए हैं
दृश्य पहचाने हुए हैं
लोग फिर भी–
अजनबी हैं ।

राम भरोसे पूरा देश

व्यर्थ विधान
और
आदेश
राम भरोसे पूरा देश ।

चखो,
चुनावी गरम चाशनी
लखो करिश्मा दूरदर्शनी
मिट जाएँगे
सारे क्लेश
राम भरोसे पूरा देश ।

भाषा
भूसी नारा-चारा
अब दे मारा, तब दे मारा
भज मन प्यारे
टका टकेश
राम भरोसे पूरा देश

दीन-धरम
सब लूले लँगड़े
जन को हाँकें
काने-कुबड़े
चित्त-वित्त में
बसा विदेश
राम भरोसे पूरा देश ।

रत्ती भर कविता

जीने का–
अब तो बस इतना ही सम्बल है
रत्ती भर
कविता है–
मुट्ठी भर चावल है ।

जीवन में मुक्ति की
न राह है
न राहत है
काग़ज़ पर लिखा हुआ
दर्द ही अमानत है
भूखे क्षण चुके नहीं
संवेदन बिके नहीं
थाली में सन्नाटा गीतों में हलचल है
....इतना ही सम्बल है ।

खौलते जुलूसों से भूख नहीं मिटती है
रोटी की यात्रा–
क्या नारों से कटती है
आग बने रहना है
आग से–
गुज़रना है
उम्र भर भटकना है शब्दों का जंगल है
....इतना ही सम्बल है ।

गीत लिखो या दर्द बाँट दो....

जड़वादी चिन्तन की तह में
केवल जड़ता ही जड़ता है
गीत लिखो–
या दर्द बाँट दो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है ।

जलसे और जुलूसों के चेहरों पर कोई–
शिकन नहीं है
मुर्दों का कारवाँ
रवाँ है–
कोई ओढ़े कफ़न नहीं है
शब्दों का मेला–
मेला है
बरसों तक हमने झेला है
कोई सेतु नहीं दिखता है
शब्द-शब्द के बीच कहीं भी
शब्द जोड़ दो–
शब्द काट दो, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है ।

एक क्रौंच-वध जिया गया तब करुणा
कविता में लहराई
अब तो क्रौंचवधों के साक्षी
हर क्षण की–
कविता पथराई
भीतर ही गुनना बुनना है
कविता को
तोड़ना मना है
आसमान-सी ख़ाली-ख़ाली
निथरी-निथरी इन आँखों में
चाहे जितना
समय आँट लो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है ।

आसमान में टँगे

रचना का छद्म–
कई रंग में रँगे
हम नये त्रिशंकु आसमान में टँगे ।

धुआँ-धुआँ झेलती हुई तमाम दृष्टियाँ
धुँधलाईं चिटख़ गईं
किरण- बुनी सृष्टियाँ
दरके आईनों-सी
खण्ड-खण्ड
बिम्बों-सी
नये-नये नारों की जनगन्धी भीड़ में
हम जुलूस दर जुलूस ऊँघने लगे
आसमान में टँगे ।

आवाज़ें क़ैद हुईं और खुलीं मुट्ठियाँ
सुलझाते-सुलझाते
उलझ गईं गुत्थियाँ
हर दस्तावेज़ नया
सूने में
लिखा गया
दीखे बेरंग छन्द - सूर्यों के वर्ण - क्रम
आँखों में कई-कई इन्द्रधनु उगे
आसमान में टँगे ।

यादों में प्यार खिले

यादों में—
प्यार खिले गमके अविराम
हिरनी की आँखों में उतर गई शाम ।

सहयात्री छूट गए
टूट गई बाट
ऊँघता सिवान और बस्तियाँ उचाट
नीड़-नीड़
मुखर हुए
ओठों पर जुड़े बिखर गए कई नाम
गमके अविराम ।

दर्द हुआ कुछ गाढ़ा
तेज़ हुई साँस
फैल गया पोखर भर ताँबई उजास
झुकी-झुकी
छायायें
लिखती हैं सूरज को देहमय प्रणाम
-गमके अविराम ।

तुम्हारे पास

आज
तुम्हारे पास हूँ
फिर भी बहुत उदास हूँ ।

बाहर क्या कुछ छूट गया है
भीतर भी
कुछ टूट गया है
रथी-सारथी
सभी स्वार्थी—
सिर्फ़ सवाल
न हल या प्रतिफल
दुख की कथा तुम्हारा आँचल
जीवन भर मैं धुना गया हूँ
जैसे-तैसे बुना गया हूँ
लगता है
कुल जोड़-तोड़कर
केवल सूत-कपास हूँ
आज तुम्हारे पास हूँ
फिर भी—
बहुत उदास हूँ ।

आगत के नाम

बीतीं सन्ध्याएँ जो उन्मना अनाम
उनको भी लिखता हूँ चन्दनी प्रणाम ।

अनुत्तरित प्रश्नों के उगे घने जंगल
छूट गए पीछे सब
सुबह-सुबह कल
किरणों ने दस्तक दी
और खुलीं सूर्यमुखी खिड़कियाँ तमाम
—चन्दनी प्रणाम ।

ओस में नहाए ऋतुफूलों-सा मन
यादों की ख़ुशबू से
लिपा हुआ आँगन
बाँच रहा समय-पत्र
सोनाली सृजनमुखी आगत के नाम
—चन्दनी प्रणाम ।

क़लम का दर्द

शब्द सारे खोखले–
बेकार बेमानी
कौन अलगाए क़लम से दूध औ' पानी ।

समय टूटे छन्द-सा अतुकान्त जिसकी भूमिका
मूकदर्शी-सा खड़ा है
लुटा यौवन क्रान्ति का
चना थोथा घना बाजे
इस तरह कुछ संसदी स्वर
फेंककर
तेवर बदलती है नपुंसक राजधानी ।

टूटने की प्रक्रिया में हर क़लम का दर्द है
हाथ में गर्मी नहीं है
ख़ून भी तो सर्द है
थके हारे सभी नारे
क्या करे कोई क़लमकश
जब मसीहा, बन्द कमरे में तराशे
इन्क़िलाबों की कहानी
शब्द सारे खोखले
बेकार बेमानी
कौन अलगाए क़लम से दूध औ' पानी ।

कुछ सोचना

क्या फोड़ेगा भाड़ भला एक अदद चना
हमको इस मुद्दे पर ही है कुछ सोचना ।

अपना हक़ लेने की रचो एक परिभाषा
बुनो युद्ध-स्तर पर जीने की जन-भाषा
बातें हों सार्थक
तो चीज़ें भी बनती हैं
चीज़ बिना बने–
व्यर्थ पूरी संरचना ।

राज-रोग का निदान पढ़ लेना मुश्किल है
बातों से नये मूल्य गढ़ लेना मुश्किल है
कुछ रचने-बुनने का–
काम अर्थ रखता है
काम नहीं आती है
केवल आलोचना ।

पारदर्शी दरपनों का सत्य

रिक्तता में भी भरा
कितना सुनहरा है–
कहीं मन की सतह पर
कुछ इस तरह भी दर्द उभरा है ।

जिसे मैंने पारदर्शी दरपनों का सत्य माना है
उसी को प्यार जाना है
उसी को रोशनी का तार
मैंने ज़िन्दगी भर
बुना, ताना है
रास्ते में साथ चलते हुए
कुछ बच्चेनुमा अहसास
थाम लेते हैं न जाने कब उँगलियाँ
और कहते हैं कि देखो–
यहीं कविता का पता स्पन्दनों के पास
जहाँ अब तक
ज़ख़्म दर हर ज़ख़्म
कितना लहकता ताज़ा हरा है
कहीं मन की सतह पर
कुछ इस तरह भी दर्द उभरा है ।

कुर्ते में कितने पैवन्द

टूट गए–
गुने-बुने गीतों के छन्द
कौन गिने कुर्ते में कितने पैवन्द ।

कागों की पाँतों में हंस फँस गया
दूधधुला बोध ढहा मूल्य धँस गया
जीने की–
लय टूटी
रचना पीछे छूटी
सपने-संवेदन सब दीखे निश्छन्द ।

अपना तो सारा सच झूठ हो गया
पैसों का पेड़ उगा ठूँठ हो गया
कटी, छँटी
हर डाली
जेब, टेंट सब ख़ाली
हरी-हरी पत्तियाँ तिजोरी में बन्द
कौन गिने–
कुर्ते में कितने पैवन्द ।

फूल पत्ते आदमी

जहां जो कुछ भी नया है
समय अपनी उँगलियों से—
उस जगह को छू गया है ।

क्रान्ति का मौसम यही है
वक़्त की पहचान का
इतना इशारा कम नहीं है
फूल पत्ते आदमी—
जन्में खिलें ताज़ा हरे हों
चलो—
उनकी भी हथेली पर ज़रा-सी आग रख दें
जो अँधेरे से डरे हों
खुल गया आकाश देखो,
रोशनी का एक सीधा—
ख़ुशनुमा पुल बन गया है
जहां जो कुछ भी नया है....

उग रहा है एक ख़तरा
जहाँ कोई सही चिन्तन
बुन रहा सपना सुनहरा
मुक्ति-मूल्यों के लिए जो
स्वयं को ही तोड़ते हों
चलो—
शामिल हों लड़ाई में उन्हीं की
टूटकर जो—
टूटते हर सिलसिले को जोड़ते हों
सुनो, शब्दों के घरों में
युद्ध-सा कुछ ठन गया है
जहाँ जो कुछ भी नया है....।

द्वन्द्व

शोर-ग़ुल में क्या सुनोगे
और कब तक सर धुनोगे ।

आग बोने में हमेशा–
एक ख़तरा उभरता है
फूल होना
ग़लत मौसम में
बहुत ही अखरता है
भ्रान्ति पहनो, क्रान्ति ओढ़ो
उम्र भर कुहरा बुनोगे!

बाघिनों का काम पुश्तैनी
हमेशा ख़ून चखना
तुम्हें अपने ख़ून से
आया न
अपना नाम लिखना
आग जीना, ख़ून पीना
द्वन्द्व में किसको चुनोगे ?
और–
कब तक सर धुनोगे ।

अ-यात्रा

घटते हैं ऊपर से जाने कब दाम
सस्ती हैं चीज़ें–
हर दैनिक अख़बार में!
महँगा है लेकिन हर ग़ल्ला बाज़ार में ।

एक ओर आदमी अभावों से जूझे
और एक ओर बन्धु!
सावन के अन्धे को हरियाली सूझे
सड़कों पर बँटते हैं बड़े-बड़े नाम
मिलती है–
मुट्ठी भर हवा ही क़तार में ।

भूख और भूख आग आँतों की लहके
और यह समाजवाद ?
नारों में डूबे आवेदन रह-रह के
छिड़ता है रोज़ एक अन्तिम संग्राम
और शुरू होती है–
क्रान्ति फिर उधार में ।

ठाँव-गाँव बिना बन्धु नाव कहाँ ठहरे
और इस अ-यात्रा में
कौन सुनेगा गुहार नाविक सब बहरे
जाएँ अब किधर कहो, लाखों गुलफ़ाम
जाने क्यों–
छोड़ गए पुरखे मझधार में ।

एक छंद टूट गया

गीतों की यात्रा में कितना कुछ छूट गया
एक दर्द गदराया, एक छन्द टूट गया ।

हर क्षण कुछ नये स्वप्न बुनने की आकुलता
रौंद गई जाने कब
सारस्वत देह-लता
इन्द्रधनुषरंगी संवेदना
विवर्ण हुई–
वस्तु-गन्ध का चिन्तन जीवन को लूट गया
....एक छन्द टूट गया ।

आँखों में लरक गया एक सजल आसमान
कविता को तोड़ गया–
रोटी का छन्द-ज्ञान
अनुभव की धरती पर
कई वृत्त बने-मिटे
पानी के गुब्बारे जैसा कुछ फूट गया
...एक छन्द टूट गया ।

यंत्रणा पलाश हुई यात्रा का बोध चुका
हीरा रँग मन मेरा
कौड़ी के मोल बिका
अर्थ-विद्ध दूरी को
तै करने का सवाल
जीने की शर्त को हथौड़े से कूट गया
...एक छन्द टूट गया ।

संकट में रचना है

भीड़ पर रहम करो
भाषण कुछ कम करो ।

अभी-अभी फेंक गया
समय एक सन्नाटा
एक नये तेवर ने चुप्पी का स्वर बाँटा
दूर बहुत जाना है—
तेज़ कुछ क़दम करो
भाषण कुछ कम करो ।

किरण लिखो आँखों में
ओठों पर गन्ध लिखो
स्वस्तिवती सुबहों-सी कोई सौगन्ध लिखो
संकट में रचना है—
पैना कुछ क़लम करो
भाषण कुछ कम करो ।

याद के धुँधलके में

याद के धुँधलके में–
बीते दिन छूटे
गीतों को मुखर करो सन्नाटा टूटे ।

आसमान में धँसती हैं तमाम मुट्ठियाँ
तने हुए चेहरों पर उभरा आक्रोश
दुबक दुबक कर भरता
समय कहीं चौकड़ियाँ
भाग रहा हो जैसे कोई खरगोश
उँगली के पोरों पर
लिखी हुई शाम
काढ़ रही है मन में मौन बेल-बूटे
...बीते दिन छूटे ।

जाने कब सरक गया हाथों से आईना
चिटख़ गए गदराए सपने गुलफ़ाम
रिश्तों में बँटा हुआ
प्यार कहीं खनक गया
ओठों पर चिपके हैं कई कटे नाम
भीतर ही भीतर कुछ
छीज गई रोशनी
दुखती-सी रग-रग को अँधियारा कूटे
...बीते दिन छूटे ।

आओ अब लौट चलें

बातों ही बातों में
जंगल तक आ गए
आओ
अब लौट चलें!

यहाँ समय का होना-
ख़ौफ़नाक सूनापन
हमें निगल जाएगा
आदिम अँधियारे का गोश्तख़ोर सन्नाटा
और एक वहशीपन

हमें याद रहा नहीं
लगता है सचमुच
हम दोनों पथरा गए
आओ-
अब लौट चलें!

कहीं नहीं आवाज़ें-
नसें सुन्न, सर्द ख़ून
लागू हो जायेंगे
पता नहीं कब हम पर
मुहर लगे जंगल के भूखे क़ानून
शब्दों में ताप नहीं
जाने-पहिचाने क्षण
हमसे कतरा गए
आओ-
अब लौट चलें!

धान सारा चुग गई... (एक अकाल-यात्रा)

धान सारा चुग गई फ्लोरेन्स की बुलबुल
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल ।

योजनाएँ चुक गई हैं फाइलों में बन्द
यंत्रणाएँ भीड़ की
हो गई है निश्छन्द
चीख़ता है हर नगर हर गाँव हर गुरुकुल
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल ।

हर जनार्दन चेहरे पर तैरता है मौन
आग की बहती नदी पर
सिरफिरे ये कौन
जो हवा में रच रहे हैं भाषणों के पुल
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल ।

राजधानी सो गई सारे खिलौने तोड़
धुन्ध ओढ़े ऊँघते हैं
संविधानी मोड़
फाँक कर आकाश सोए हैं 'अनिल-अब्दुल'
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल ।

अन्नदाता सोचता है कुछ झुकाए माथ
अन्नपूर्णा मर गई
बेमौत ख़ाली हाथ
कहाँ जाएँ दुधमुँहे बच्चे 'बकुल-पारुल'
एक पूरा देश टूटा भूख से आकुल ।

आओ, कुछ क्षण जी लें

आओ, कुछ क्षण जी लें गन्ध बाँटते हुए,
आँखों में हम गुलाब रंग आँकते हुए ।

मौन रचें—
शब्दों संवादों को तोड़ दें
भाषा जो हमें कभी
काट-काट देती है—
चलो कहीं
चुपके से जंगल में छोड़ दें
ओठों पर ख़ुशबू का एक नया पुल बाँधें
भीतर की खुरदरी दरार पाटते हुए
...गन्ध बाँटते हुए ।

यहाँ-वहाँ—
टूटे आकाशों को जोड़ दें
सन्नाटा, ख़ालीपन
रोज़ हमें पीते हैं
आओ हम
एक नदी नन्दिनी निचोड़ दें
यादों की धूप बुनें जीने का सुख रोपें
रख जाएँ थोड़ा-सा प्यार लौटते हुए
...गन्ध बाँटते हुए ।

चुके-चुके लोग

अँधियारा तोड़ रहे चुके-चुके लोग
रोशनी बटोर रहे–
बिके-बिके लोग ।

सूरज से सीधे टकराने की बात
जहाँ-तहाँ फेंक रहे–
झुके-झुके लोग ।

तेज़-तेज़ क़दम रखो मंज़िल नज़दीक
वक़्त को तराश रहे–
रुके-रुके लोग ।

रास्ता दिखाते हैं जन्म से अपाहिज
अन्धों के कन्धों पर–
टिके-टिके लोग ।

मंचों पर रेंक-रेंक, चरते हैं भीड़
बाघों की खालों में–
लुके-लुके लोग ।

कीचड़ में धँसा हुआ सोने का देश
दाँत से निकाल रहे–
थके-थके लोग ।

शब्दों को लय दो

समयमुखी बछड़े को धरती सहलाती है
किरणों को दुह लो तुम–
वेला गुहराती है ।

फेंक गई सन्नाटा कोई मायाविनी
भीतर ही भीतर
संचेतना धुआँती है ।

अन्धकार सूँघ गया सुन्न हुई शिरा-शिरा
उन्मत्ता सत्ता-सी–
रात खिलखिलाती है ।

धुन्ध की व्यवस्था में, कहीं नहीं कुछ दिखता
दिशा-दिशा दूर से–
अँगूठा दिखलाती है ।

ऊँघते सितारों-सा, विप्लव का स्वर लगता
आवाज़ें डूब गईं–
साँस लड़खड़ाती है ।

हवा गन्ध लिखती है, फूल की पँखुरियों पर
शब्दों को लय दो तुम
बाँसुरी बुलाती है ।

चलो- लिखें कुछ रोटी

सूरज के पाँव पड़ी-
एक सुबह अखरोटी
कुहरे को झेल रही है पहाड़ की चोटी ।

मौसमी नक़ाब मढ़े
फ़तवे कुछ नये गढ़े-
राशन में आसमान बाँट रहा रोशनी
कुम्हलाई वत्सवती किरणें गोरोचनी
अधमरे जुलूसों की
आवाज़ें टूट गईं
कुछ पीछे छूट गईं
बड़े-बड़े मुँह दीखे, बात दिखी कुछ छोटी
...एक सुबह अखरोटी ।

सारा मन दुखता है
भीतर तक चुभता है-
आँख भर उजाले में धुन्ध को अँजोरना
शब्दों की आग जला भूख को अगोरना
ऐसे में जीने के
अर्थ सब बिखर गए
आँखों में उतर गए
गीतों को गूँधें अब चलो लिखें कुछ रोटी
....एक सुबह अखरोटी ।

भरे जेबों में अँधेरा

चलो थोड़ा धुआँ ले लो–
कहीं कोई सुख नहीं है ।

भरे जेबों में अँधेरा घूमते कुछ लोग
फेंक देते हैं–
करोड़ों घरों की दहलीज़ पर
रोशनी मिलती नहीं है
किस्त पर भी या नक़द ख़रीद कर
आँख में कुहरा उगा लो–
दर्द का आमुख यही है
कहीं कोई सुख नहीं है ।

धूप चुगकर जियो, चाहे चाँदनी तुम पियो
लेकिन ओठ सी लो–
सुलगने दो क्रान्ति की कोई कथा
बिछा लो आश्वासनों को
ओढ़ लो नक़ली व्यवस्था

कहीं जूझो, कहीं झेलो
सिर्फ़ दुख ही दुख सही है
कहीं कोई सुख नहीं है ।

रोशनी उधार की

दिया जला ड्योढ़ी पर
अँधियारा कुछ सरका–
फैल गई आँगन में रोशनी उधार की ।

आवाज़ें पीने की आदी इस भीड़ में
क़र्ज़-लदे संकल्पों का कोई मोल नहीं
जीना है सिर्फ़ जिन्हें
मुट्ठी भर दानों पर
उनकी आकांक्षा क्या, कोई भूगोल नहीं
काग़ज़ के पन्नों पर
जनता का भाग्य लिखा–
जूझ रही आँधी से नौका मझधार की
...रोशनी उधार की ।

स्वरशोषी आसमान तम का संरक्षक है
धरती की साँस रोज़ घुट-घुट कर चुकती है
मिट्टी के दीपों की
रोशनी निरर्थक है
लाख-लाख चेहरों पर भूख जहाँ उगती है
पेट की सलीबों पर
लोकतंत्र है लटका–
बुझी-बुझी बातियाँ मसीहा के प्यार की
रोशनी उधार की ।

हम कुछ लोग

हम कुछ लोग हैं–
रौंदे-रौंदे
बीते-सपने टूटे घरौंदे
हम हैं कुम्हारों की चाकों जैसे
गर्दिश-गर्दिश
माटी के लौंदे ।

एक क़र्ज़ दूध का
(बाँग्ला देश : मुक्ति-संदर्भ)

बन्धु चलो,
छन्दों को आग से सँवार लो
गीतों में मुक्ति का नया क्षितिज उभार लो ।

सुबह को अँधेरे के चंगुल से छीन लो
रोशनी उगाओ तुम धूप-फूल बीन लो
शब्दों के शिल्पकार
स्वर के सौदागरो !
क़लमों के साथ-साथ आओ संगीन लो
नन्हा-सा आसमान लथपथ है ख़ून से
आहत आवाज़ों को बढ़कर अँकवार लो !

ढूँढ़ रही है तुमको गन्ध जाफ़रान की
गुहराती हैं तुमको मंजरियाँ धान की
चुकें न आँचलों की
सूरजमुखी मनौतियाँ
बन्दी हैं लाख-लाख किरणों की जानकी
मातृभूमि का तुम्हें उतारना है एक क़र्ज़
और एक क़र्ज़ चलो दूध का उतार लो
बन्धु चलो–
छन्दों को आग से सँवार लो ।

तीन मुक्तक

प्यार से ही आदमी ने देवता का पद लिया है
प्यार की ख़ातिर हमेशा रोशनी बनकर जिया है
प्यार से ही स्वयं को–
प्रभु ने गढ़ा है आदमी-सा
फ़र्क़ इतना है कि बस वह एक माटी का दिया है ।

प्यार आँखों में लिख़ी-सी सृजन की कोई किताब
प्यार ओठों पर खिला-सा एक ईरानी गुलाब
प्यार का हक़दार तो है
सिर्फ़ माली या सवाली
फूल-पत्ता शाख़ हर शै पर लिखा पूरा जवाब

ऐसी कोई बात न जिसको, मैंने कहाँ न जोखा-आँका
ऐसी ही कुछ बात कि जिसको मैंने बहुत उधेड़ा-टाँका
प्यार कहीं चिपका-सा दीखा
और ज़िन्दगी भी कुछ ऐसी–
जैसे किसी दूध पीते बच्चे को ढाँपे आँचल माँ का ।

देह गन्ध से परे

सुनती हो, चन्दना!
प्यार एक वन्दना ।

देह-गन्ध से परे
मन को जो महत् करे
ऐसा क्षण छुएँ
और भीतर से जिएँ - एक 'बोधिसत्व'
शून्य तत्व

जो अकुंठ अनुभव की–
नील बरन व्यंजना
प्यार एक वन्दना
सुनती हो चन्दना!

फूल-फूल-सा दिखें
समय हीन गन्ध लिखें
पानी-सा बहें
और शुद्ध-मुक्त रहें– एक सत्य मंत्र
हो स्वतंत्र

गुनें, बुनें 'हैमवती'–
दृष्टियाँ अबन्धना
सुनती हो चन्दना!
प्यार एक वन्दना ।

अनमाँजे रूपों को रतन करो

अपनी ही मिट्टी का प्यार से जतन करो
जीवन के अनमाँजे
रूपों को रतन करो ।

धुन्ध ओढ़कर हमको समय-यक्ष ने छला
मेधावी क्षण बिखरे टूट गया सिलसिला
ऐसा कुछ रचो - जुड़ें
साथ-साथ
चुगें-उड़ें
कुहरे को चीर
मुक्त अपना ही गगन करो
अपनी ही मिट्टी का प्यार से जतन करो ।

रचना के क्षण छू लें जनवादी दृष्टियाँ
ढह जाएँ ग़लत लिखी इतिहासी सृष्टियाँ
पुरखों के चिन्तन को
एक नयी
भाषा दो
ओठों पर जीने के–
मंत्रों का चयन करो
जीवन के अनमाँजे रूपों को रतन करो ।

क़तरा-क़तरा लहू
(इन्दिरा गाँधी की अप्रत्याशित मृत्यु पर)

आज की सुबह का चेहरा उदास लगता है
हरेक लम्हा मौत का लिबास लगता है ।

कँवल-कँवल से आरिज पै–
यह क़तरा-क़तरा लहू क्या है ?
दर्द की गमक - गमक जैसी
यह सन्दली ख़ुशबू क्या है ?
आलमे अम्न में
यह ख़ून की जुस्तजू क्या है
इब्ने आदम बता–
आख़िर तेरी आरज़ू क्या है ?
फ़ज़ा के ख़ुनक-ख़ुनक-से रेशों में
हवा का उड़ा-उड़ा होशो हवास लगता है
आज की सुबह का
चेहरा उदास लगता है ।

कविश्री छविनाथ मिश्र : कविता यात्रा

मेरे आँगन गाछ अनार

टहनी-टहनी खिलता प्यार
मेरे आँगन गाछ अनार ।

किरण-नहाई–
पाती-पँखुरी
फूल-फूल हो गई देहरी
गन्ध-लिखी
स्वरलिपि गमकाए
मुकुलित आम छन्द छतनार
मेरे आँगन गाछ अनार ।

श्यामल-श्यामल
शुभ्र सुनहरी
ऋतुवर्णा छवि कोई उभरी
पलकें पुलकीं
छलकीं आँखें–
प्यारी श्वेत, श्याम रतनार
मेरे आँगन गाछ अनार
टहनी-टहनी
खिलता प्यार ।

शब्द पीटे जा रहे हैं

कुर्सियों पर ऊँघता है एक पूरा देश
चुक गया है कहीं–
क़लमों का समर-आवेश ।

जिन्होंने देखा नहीं कुछ माथ-मुख पुर-ग्राम
कुर्सियों ने वरे हैं, ऐसे नैनसुख नाम
सर्जना बेहोश लेटी
पीढ़ियाँ-जनमीं क्रिकेटी
दूरदर्शन ने रचा रामायणी परिवेश ।

धन बटोरे हर महाजन हर जनार्दन जन
अक़्लमन्दों के वतन में क़लम है बेवतन
क्या कहे किससे क्या लिखे
अनुबिम्ब कुछ अन्धे दिखे
रेवड़ी ख़ुद खा गए दे-दे नये उपदेश ।

रोशनाई पी गया कितनी नया इतिहास
चेतना धुँधला गई, कौंधा विरोधाभास
बिकी प्रतिभा व्यक्ति सत्ता
चुकी भाषिक अर्थवत्ता
शब्द पीटे जा रहे हैं, चुप खड़ा आदेश ।

हम दिमाग़ी तौर पर

हम दिमाग़ी तौर पर हो गए हैं कंगाल
दल-दलों में धँसते-धँसते हो गए दल्लाल ।

बिना ज्वालामुखी फूटे, ढहे-डूबे रोज़ हम
राजनीतिक चाल का ही नाम है भूचाल ।

कौन खोले ज़बाँ यारो, मसीहाओं के ख़िलाफ़
यह हुआ तो क्यों हुआ बस चीख़ते लाखों शृगाल ।

कौन बाँधे क्रान्तिघंटी राजसत्ता के गले में
कुर्सियों पर ऊँघते हों जब गुरूघंटाल ।

धर्मघट की घाटियों में घुट गया दम देश का
जहाँ देखो वहाँ बैठा डाल पर वेताल ।

ताल बैठाते रहे हम और ताले लग गए
तालियों की ताल का अंजाम है हड़ताल ।

(1)

आगे हो लो या रुक जाओ, कहीं नहीं है कोई रहबर
आहिस्ता-आहिस्ता चलता है यह आपाती बुलडोज़र ।

ख़ामोशी के इस आलम में साबित बचा न कोई ख़्वाब
कितनी शर्तें चीख़ रही हैं आँगन-आँगन कोहबर-कोहबर ।

धरती दिखती पानी-पानी, आसमान भी कुहरा-कुहरा
किसकी कौन ख़बर ले यारो सब के सब हो गए बेख़बर ।

लफ़्ज़ों का जंगल गुमसुम है, हिलते नहीं ज़बां के पत्ते
आवाज़ों को निगल गया है सन्नाटे का कोई अजगर ।

शहर-शहर ऊँची दूकानों के पकवान हो गए फीके
पढ़ते थे जो कभी फ़ारसी, बेच रहे हैं तेल दर ब दर ।

बाग़ी क़लम बुना करते थे इन्क़िलाब के कितने नग़मे
बीन रहे हैं झीनी-झीनी कुहरानुमा कबीरी चादर ।

(2)

पूछते हो ख़ैर बोलो कहाँ अब तक तुम रहे
लब हुए ख़ामोश प्यारे! बिक गए हैं क़हक़हे ।

आँख में उगने लगा है आग की तहरीर-सा कुछ
कौन वायदों पर हवा के इस तरह ज़िन्दा रहे ।

एक सन्नाटा नसों में चुभ रहा है तीर-सा
धुन्ध की गूँगी फ़ज़ा में कौन किससे क्या कहे ।

बज़्म में अपने हक़ों का ज़िक्र छिड़ता है इधर
निगल जाते हैं उधर क़ानून के कुछ अज्दहे ।

ख़ैरियत ही ख़ैरियत है, उनको पहुँचाना सलाम
और कहना कोई कब तक दर्द दूरी का सहे ।

(3)

बन्द लब के दायरे में कोई गुल खिलने लगा
बज़्म में उनकी जफ़ा का ज़िक्र अब छिड़ने लगा ।

पत्ता-पत्ता ओढ़कर चुप था, अँधेरे का लिहाफ़
किरण ने आवाज़ दी तब सर उठा हिलने लगा ।

जो ख़ता हमसे हुई थी उसको वे दुहरा रहे
उन्हें भी है पता इसका राज़ कुछ खुलने लगा ।

बेज़ुबानों को ज़ुबां दे, कहाँ है ऐसा निज़ाम
अन्दलीबों से चमन का बाग़बां कहने लगा ।

राह से हम कट गए या वक़्त ही गुमराह है
बहस का यह सिलसिला अब रातभर चलने लगा ।

(4)

सूने में कहीं चीख़ता हर आम आदमी
चूसा गया है आम-सा हर आम आदमी ।

दरपन को तोड़ते हैं, अँधेरे में कई लोग
रह-रह के कहीं टूटता हर आम आदमी ।

कितने भगीरथों की अक़्ल पर पड़ा पत्थर
पत्थर रहा ढकेलता हर आम आदमी ।

नामों की तिजारत में कई नाम जुड़ गए
बेनाम मगर हो गया हर आम आदमी ।

कुछ ख़ास लोग आम की करते हैं पैरवी
अपनों के बीच चुक गया हर आम आदमी ।

हर ओर दीखता है, मसीहाओं का जुलूस
लेकिन सलीब पर टँगा हर आम आदमी ।

(5)

आदमी से आदमी को आज तक जो कुछ मिला है
वह मुसीबत के पहाड़ों का सुहाना सिलसिला है ।

रोज़ किरणों के मुलायम हाथ बुनते स्वप्न कितने
रेशा-रेशा टूट जाने का मगर हरदम गिला है ।

लफ़्ज़ बनकर जी रहा है अक्स बन पाता नहीं
बात मामूली नहीं है दोस्त! दिल का मामला है ।

वह दिमाग़ी सरहदों तक हमसफ़र है आसमां का
मगर दिल की बात पर तो एक लम्बा फ़ासिला है ।

मन्दिरों से मस्जिदों तक हमख़याली का फ़रिश्ता
भूलकर बुनियाद अपनी एक बुनियादी बला है ।

आदमी दिल खोलकर जब आदमीयत से जुड़ा है
तब चमन के लब पै ख़ुशबूदार कोई गुल खिला है ।

(6)

हमने कुछ ऐसी ही आज़ादी पाई
शोषण की सीमा तक केवल महँगाई ।

थोड़ा-सा भाषण लो, थोड़ा वक्तव्य चखो
हलधर के ओठ खुले गाय भी रँभाई ।

राजनीति का कोरस, रात-रात भर ऊधम
चाट गए तिलचट्टे दोहा-चौपाई ।

एक अदद गुफ़ानुमा संसदीय कोठरी
चार-चार प्रत्याशी एक चारपाई ।

कुर्सी के इर्द-गिर्द एक मुल्क सिमट गया
सारे झगड़े की जड़ कुर्सी हरजाई ।

बड़े जतन से रक्खा लेकिन बेकार गया
ताकों पर धरा-धरा चिन्तन गीताई ।

फ़ाख़्ता उड़ाते थे एक दिन ख़लील मियाँ
अब तो वे तोड़ रहे रोटियाँ पराई ।

धुआँ-धुआँ हो गई गुलाबों की ख़्वाबगाह
याद रहा नून-तेल भूली कविताई ।

(7)

नारेबाज़ी का मसला है
आम आदमी एक बला है ।

फूँक-फूँक कर पीता मट्ठा
पट्ठा लगता दूध-जला है ।

शहर-शहर का अन्देशा है
क़ाज़ी इसीलिए दुबला है ।

कविता में भी क़िस्से में भी
इन्क़िलाब का यह जुमला है ।

कौन हिसाब करेगा भाई
कहाँ-कहाँ कितना घपला है ।

स्याह-सफ़ेद पोतते रहना
राजनीति की एक कला है ।

झुग्गी और झोपड़ी वालो!
चीख़ो मत मौसम बदला है ।

काम करो फल से क्या मतलब
धरती तो सुजला-सुफला है ।

(8)

ये कुछ लोग हैं बौने-बौने
ये हैं मसीहा या कि खिलौने ।

संसद के जंगल में कुलाँचें
दीख रहे जैसे मृग-छौने ।

इनकी निगाहों में हम ऐसे
सौदे सरीखे औने-पौने ।

खँडहर-खँडहर खाटें हमारी
इनके लिए मख़्मल के बिछौने ।

हम मोहताज हैं, ये सरताज
हमको डंडे इनको डिठौने ।

(9)

बिकती है जहाँ ज़िन्दगी मुँहबन्द गुलाबों की तरह
हम टूट गए दोस्त दर्दमन्द रबाबों की तरह ।

फ़ुरसत किसे है खोल दे दराज दर दराज
हम चुक गए हुज़ूर कहीं बन्द किताबों की तरह ।

सपनों का जमा-खर्च सुबह-शाम बराबर रहता
हम हैं किसी बनिये के क़लमबन्द हिसाबों की तरह ।

अच्छा-सा कोई नाम सियासत में नहीं हासिल
अपनों के ज़ेह्न में रहे गुटबन्द ख़राबों की तरह ।

कुछ भी पता न कितना नशीला लहू हमारा
हमको तो पी गए ये नये रिन्द शराबों की तरह ।

उभरा सवाल दर सवाल अक्स नया हमदम!
जो ज़ेरेलब लिखा है, नज़रबन्द जवाबों की तरह ।

सुनो कविता!
मेरा नाम ईश्वर है

प्रकाशक :
प्रतिध्वनि
31, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 007

मुद्रक :
एस्केज़
8, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 007

आवरण :
विभूति सेनगुप्त

प्रथम संस्करण : 1995

मूल्य : चालीस रुपए

पृष्ठ : 64

समर्पण : कालीचरण गुप्त 'सय्याद'

अनुक्रम

पाठशाला	340
बौराए ऊँट के लिए नुस्ख़ा नम्बर एक	342
देश-कथा	346
भारत उर्फ़ ग़रीबनवाज़ बनाम इण्डिया	348
कविता-बोध : आधुनिक प्रतिमान	350
संवाद : राह चलते	352
अन्नदास	354
इतिहास लिखा जा रहा है	357
सुखराम वल्द मनबोध	361
लालबुझक्कड़	362
शब्दों का तक़ाज़ा	363
वापसी	365
घोंघा	367
कूड़ा और जीवन	368
रवरस्तनी ज़िन्दगी दुधमुँहे बच्चों के नाम	369
आदमी : कवि, शेख़चिल्ली	370
मुहरचन्द चिट्ठा	371
सोने का मृग	373
रस और रुधिर	374
दिशा-दृष्टि	375
अवान्तर	376
वतनफ़रोश	377
गोबरक्रान्ति	379

एक सदाबहार मरीज़ और नुसख़ानवीस	380
अभी-अभी	385
सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है	386
लिखी-लिखि कागद कोरे-कोरे	389
सखियो हमहुँ भई 'बलमासी'	390
देश काल का करो कबाड़ा	391
संसद में जनवास	392
गीतों का जनवादी गरम चना	393
शेषन के फन की फड़कन	395

पाठशाला

(प्रधानाध्यापिका का कक्ष)

पहला सबक़ :

मेरे सयाने बच्चो
यह देश है हमारा लिखो
ऐसा ही कुछ प्यारा लिखो
कविता नहीं नारा लिखो
देखो हमारे देश का नक़्शा
कितना बढ़िया है

लगता है सोने की चिड़िया है
इसका दूसरा नाम कबूतरी लिखो
इसके माथे पर 'नीली छतरी' लिखो
आँख में लाल तारा लिखो
यह देश है हमारा लिखोऽऽऽ

दूसरा सबक़ :

कविता में चीख़ो
कुछ क़ायदे की बात सीखो
पाठशाला है
ख़ाला का घर नही
इधर देखो उधर नहीं
अच्छे बच्चे शोर ग़ुल नहीं करते
बेवजह रोशनी ग़ुल नहीं करते
मैं सब कुछ देख रही हूँ खड़ी-खड़ी
'संजू' ला तो कहाँ है मेरी बेत की छड़ी
.........अभी रहने दे—

तीसरा सबक़ :

इधर देखो
चिड़िया की गर्दन पर हिमालय लिखो
दुम पर समय लिखो
चोंच पर
'तमसो मा ज्योतिर्गमय' लिखो
दोनों डैनों पर
गंगा-जमुना की धारा लिखो
ऐसा ही कुछ प्यारा लिखो
यह देश है हमारा लिखोऽऽऽ

बौराए ऊँट के लिए

नुस्ख़ा नम्बर एक

(परिवार, गाँव-देश की व्यथा-कथा)

एक कोई भारत त्रिवेदी था
रोज़ मंसूबा दर मंसूबा बाँधता था
खेती-बारी के साथ
पैसा कमाने के लिए
बड़े डीलवाला बैल लादता था
घर वालों को जगाने के लिए
बड़े तड़के ही चीख़ता था
घाट-बाट, मेड़-डांड़ जहाँ देखो वही दीखता था
बेचारा परिवार के लिए
बहुत कुछ कर गया
चना और मूली खाकर मर गया.....

बैल मरा, बाप मरा
बेटा ऊँट लादने लगा
गाँव-गाँव शहर-शहर रौंदने लगा
दीन-दुनिया दौलत आगे-पीछे रेंगने लगे

बेटे के बेटे गांजा-भांग चरस और शराब बेचने लगे
कुछ तो वाहवाही के कारण
कुछ लापरवाही के कारण
'फुरसत बाबा' के चौरेवाले पीपल के नीचे
खड़ा-खड़ा ऊँट अनायास बलबलाने लगा
भारतका इकलौता बेटा मधुबनी सर खुजलाने लगा
'यह क्या हुआ
जरूर लग गई किसी की बददुआ'
फुन्नन पंडित ने बताया
"मैं प्रयाग से आ रहा था
तुम्हारा ऊँट गाँव के पश्चिम
'फुरसत राम के पुरवा' में
ग्राम देवता वाली नीम की पत्तियाँ खा रहा था
सचमुच इसे न जाने क्या हो गया
लगता है बौरा गया
अपने अंचल के विख्यात विश्रुत धुरन्धर
चरक और 'सुश्रुत' के वंशधर
सुखदेव उपाध्याय को दिखाओ
लो खैनी खाओ
और अभी जाओ"

अचानक वैद्यजी रास्ते में ही टकरा गए
बात करते-करते
फुरसत बाबा के चौरे तक आ गए
"देखो, रोग पुराना है
लगता है
कुछ दिन ननिहाल में था
इस रोग का ज़िम्मेदार इसका नाना है
रुको अभी सरपंच के यहाँ से
भाँग छानकर आता हूँ

फिर नुस्खा नम्बर एक बताता हूँ
तब तक कहीं से 'सर्पगन्धा' ढूँढ़कर लाओ
लग्गी के सिरे पर बाँधकर इसे खिलाओ
थोड़ी देर बाद
वैद्यजी भाँग पीकर आए
अपने साथ
सरपंच, सभापति मुखिया को भी लाए
सुनते हो, मधुबनी
चतुर्वेदी कार्यालय की बनी आग मार्का स्याही लाओ
शिवदास रामदास की दूकान पर तुरत जाओ
और सरकण्डे का एक क़लम लाओ
पहले क़लम से ऊँट की नक़ेल वाले छेद को
कुछ और बड़ा करने की कोशिश करो
बाँध कर लिटाओ
जीभ पर स्याही की मालिश करो
यह लो जानते हो
इस भोजपत्र पर क्या लिखा है
बड़ी मुश्किल से यह नुस्ख़ा बचा है
यह 'ऋग्वेद' की पहली ऋचा है
इसको कोरे कपड़े में बाँधकर
तावीज़ की तरह गले में पहनाओ
अठारह जोड़ा लोढ़ा और सिल लाओ
लो इस, भोज-पत्र पर
'शुक्लयजुर्वेद' के अन्तिम अठारह मंत्र हैं
दोनों को एक साथ पुरानी औरतों से पिसवाओ
आधा तालू पर रखो आधा तलवे में लगाओ
'चरैवेति, चरैवेति' गाओ
अपने बाप का नाम लेकर
एक सौ आठ बार गुहराओ

एक 'दिया' लाओ
लो इस भोजपत्र पर
'साम' और 'अथर्व' के एक-एक मंत्र हैं
इसे हथेली पर रखकर
ऊँट की आँखों के सामने 'दिए' की लौ पर जलाओ
फिर देखो चमत्कार धुएँ का
'दरसन मिसिर' के कुएँ का छह घड़ा पानी पिलाओ
चिन्ता की बात नहीं ऊँट थोड़ा चौंकेगा
अल्लम-ग़ल्लम सब कुछ चबा गया है
लगता है 'चार्वाक' है
बेहद चालाक है
लीद ही गोल कर गया है
देखते रहना दवा दस्तावर है ख़ूब पोंकेगा
इसके बाद
इसे लेकर सपरिवार शहर जाओ
और
'शंकराचार्य' फार्मेसी का
तीन बोतल 'वेदान्तासव' पिलाओ
ध्यान रहे यह नुस्ख़े का प्रचार नहीं विचार है
फार्मेसी की बग़ल में
'रामकृष्ण मिष्ठान्न' भण्डार है
वहाँ का 'दयानन्दी पेड़ा'
'विवेकानन्दी संदेश' 'अरविन्दी बर्फी' खिलाओ
भर पेट ख़ुद भी खाओ
फिर अपने इस प्यारे पश्चिम मुख ऊँट को
किसी बबूल के जंगल में छोड़कर
'निराशी निर्ममो भूत्वा' 'गाँधी सैलून' में
सर मुँड़ाओ
त्रिवेणी नहाओ
और सीधे घर चले आओ ।"

देश-कथा

पता नहीं हमने अपने देश को
कितने रंगों में डुबाया
देश तो डूबा हम भी डूबे
लेकिन रंग नहीं आया
पुरखों ने एक रंग जमाया तो भारत हो गया
सपूतों ने
दो रंग आज़माया तो महाभारत हो गया
इस तरह रंग की तलाश में
गुलाम और रखैल हो गया
लम्बी कोशिशों के बाद
तीन रंग में डुबाया तो बैल हो गया
फिर क्रांतिकारी रंग चढ़ते-चढ़ते
रँगरेज़ हो गया
नीचे से कुछ कुछ भारतीय
ऊपर से पूरा अँगरेज़ हो गया
नीले रंग में बोर दिया
तो शृगाल हो गया

हरे रंग में निचोड़ दिया
तो कंगाल हो गया
नक़द सुनहरा रंग चढ़ते-चढ़ते
अधनंगा हो गया
कुछ उधार के रंग चढ़े
तो भिखमंगा हो गया
चुन-चुन कर
लोकरंग में रंगा तो लफंगा हो गया
मस्ती में ज़रा ढंग से रंगा
तो बेढंगा हो गया
बदक़िस्मती से रंग-प्रयोग की धुन में
कुछ छोटा हो गया

अन्त में
गहरे लाल रंग में फींच दिया
तो लँगोटा हो गया
रंगारंग पिंजड़े में बन्द
तोता टरटराया
"सुनो देश वासियो
जनता के लिए भीड़ के नाम
काम-धाम छोड़कर
एक साथ मिल-जुल कर
चलो जंगल में सर खपाएँ
इसे कुछ और गहरे डुबाएँ"
मैंने आहिस्ता से
तोते का पिंजड़ा सहलाया
और कहा—"पढ़ो पार्वतेय!
सीताराम, सीताराम
रघुपति राघव राजाराम....

भारत उर्फ़ ग़रीबनवाज़
बनाम इण्डिया

मेरा नाम एक राज़ है
घर का नाम ग़रीबनवाज़ है
असली नाम भारत है
एक बुरी लत है
जन्म से ही बोलने की आदत है

मेरे सौतेले भाई कहते हैं
मेरा नाम हिन्दुस्तान है
शुरू से ही बेईमान है
माताश्री कहती हैं
मेरा बेटा विश्व-संस्कृति का प्रवक्ता है
सौतेली मां कहती हैं
न जाने क्या रात-दिन बकता है

मेरे सगे नाना आंगिरस 'भार्गव' थे
मेरे पिता विश्वपति विद्यार्णव थे
सौतेले भाई कहते हैं
मेरे दो नाना थे
एक का नाम 'हीगेल' था
एक नाम 'मार्क्स' था
'लेनिन'-'माओ' थे फ़र्ज़ी पिता
ख़ून का नहीं, नून का था रिश्ता

सगे नाना कहा करते थे
दिन में उद्यम करो
रात में संयम करो
दिन में डटकर भोजन करो

रात भर भजन करो
अँधेरे का सर ख़म करो
सोना कम करो
और सगे पिता कहा करते थे
मन लगाकर पढ़ो
'दिए' की लौ की तरह बढ़ो
रोशनी गढ़ो
फ़ुरसत मिले तो इधर-उधर झाँको
भूख लगे तो आसमान फाँको
सौतेले नाना दिनभर गला फाड़ते
रात भर दहाड़ते—

चना चबाओ, मूली खाओ
बताशा खाकर पानी पियो
घर फूँको, तमाशा देखो, मरो चाहे जियो
फ़र्ज़ी पिता कहते
ग़रीबनवाज़ बनो
सहारा दो मोहताजों को ग़रीबों को
भरम टूटेगा, लावा फूटेगा
भीड़ को भूनो, भाड़ झोंको
कुल मिलाकर
भारत और हिन्दुस्तान जैसे दो गुमशुदा
बच्चों की याद का बोझ लादे-लादे
'मम्मी' की हालत हो गई है ख़स्ता
डाट कर कहती हैं
स्कूल जाओ, चलो उठाओ बस्ता
'मूर्ख कहीं के भारत भूत हो गया
हिन्दुस्तान कूच कर गया
मास्टर ने नया नाम दिया है
तुम्हारा नाम 'इण्डिया' है!'

तिलकू धोबी का बेटा
त्रिभुवन एम. ए. की परीक्षा देकर युनिवर्सिटी से लौटा–
"ग़जब हो गया
कवि हो गया
शादी बचपन में हुई
बहू दर्जा चार पास है
'बसन्ती' बड़े काम की बहू है
बेटा निकम्मा है"
तिलकू कहता है बेहद उदास रहता है

एक दिन त्रिभुवन
धोबी घाट पर यों ही तफ़रीहन
चला जाता है
और कुछ गुनगुनाता है
'मूड' में बहू से कहता है–
अरे! का, हो! बरेठिन
कविता-वविता की कुछ ख़बर रखती हो
या दिन भर कपड़े ही फटकती हो
–'रुको बताती हूँ' बसन्ती ने कहा
"पहले कनवा गदहवा इधर हाँक कर लाओ
कपड़े उठाओ, गट्ठर बाँधो
मेरे प्यारे माटी के माधो!

फिर नुस्ख़ा नम्बर एक बताता हूँ
तब तक कहीं से 'सर्पगन्धा' ढूँढ़कर लाओ
लग्गी के सिरे पर बाँधकर इसे खिलाओ
थोड़ी देर बाद
वैद्यजी भाँग पीकर आए
अपने साथ
सरपंच, सभापति मुखिया को भी लाए
सुनते हो, मधुबनी
चतुर्वेदी कार्यालय की बनी आग मार्का स्याही लाओ
शिवदास रामदास की दूकान पर तुरत जाओ
और सरकण्डे का एक क़लम लाओ
पहले क़लम से ऊँट की नक़ेल वाले छेद को
कुछ और बड़ा करने की कोशिश करो
बाँध कर लिटाओ
जीभ पर स्याही की मालिश करो
यह लो जानते हो
इस भोजपत्र पर क्या लिखा है
बड़ी मुश्किल से यह नुस्ख़ा बचा है
यह 'ऋग्वेद' की पहली ऋचा है
इसको कोरे कपड़े में बाँधकर
तावीज़ की तरह गले में पहनाओ
अठारह जोड़ा लोढ़ा और सिल लाओ
लो इस, भोज-पत्र पर
'शुक्लयजुर्वेद' के अन्तिम अठारह मंत्र हैं
दोनों को एक साथ पुरानी औरतों से पिसवाओ
आधा तालू पर रखो आधा तलवे में लगाओ
'चरैवेति, चरैवेति' गाओ
अपने बाप का नाम लेकर
एक सौ आठ बार गुहराओ

एक 'दिया' लाओ
लो इस भोजपत्र पर
'साम' और 'अथर्व' के एक-एक मंत्र हैं
इसे हथेली पर रखकर
ऊँट की आँखों के सामने 'दिए' की लौ पर जलाओ
फिर देखो चमत्कार धुएँ का
'दरसन मिसिर' के कुएँ का छह घड़ा पानी पिलाओ
चिन्ता की बात नहीं ऊँट थोड़ा चौंकेगा
अल्लम-ग़ल्लम सब कुछ चबा गया है
लगता है 'चार्वाक' है
बेहद चालाक है
लीद ही गोल कर गया है
देखते रहना दवा दस्तावर है ख़ूब पोंकेगा
इसके बाद
इसे लेकर सपरिवार शहर जाओ
और
'शंकराचार्य' फार्मेसी का
तीन बोतल 'वेदान्तासव' पिलाओ
ध्यान रहे यह नुस्ख़े का प्रचार नहीं विचार है
फार्मेसी की बग़ल में
'रामकृष्ण मिष्ठान्न' भण्डार है
वहाँ का 'दयानन्दी पेड़ा'
'विवेकानन्दी संदेश' 'अरविन्दी बर्फी' खिलाओ
भर पेट ख़ुद भी खाओ
फिर अपने इस प्यारे पश्चिम मुख ऊँट को
किसी बबूल के जंगल में छोड़कर
'निराशी निर्ममो भूत्वा' 'गाँधी सैलून' में
सर मुँड़ाओ
त्रिवेणी नहाओ
और सीधे घर चले आओ ।"

देश-कथा

पता नहीं हमने अपने देश को
कितने रंगों में डुबाया
देश तो डूबा हम भी डूबे
लेकिन रंग नहीं आया
पुरखों ने एक रंग जमाया तो भारत हो गया
सपूतों ने
दो रंग आज़माया तो महाभारत हो गया
इस तरह रंग की तलाश में
गुलाम और रखैल हो गया
लम्बी कोशिशों के बाद
तीन रंग में डुबाया तो बैल हो गया
फिर क्रांतिकारी रंग चढ़ते-चढ़ते
रँगरेज़ हो गया
नीचे से कुछ कुछ भारतीय
ऊपर से पूरा अँगरेज़ हो गया
नीले रंग में बोर दिया
तो शृगाल हो गया

हरे रंग में निचोड़ दिया
तो कंगाल हो गया
नक़द सुनहरा रंग चढ़ते-चढ़ते
अधनंगा हो गया
कुछ उधार के रंग चढ़े
तो भिखमंगा हो गया
चुन-चुन कर
लोकरंग में रंगा तो लफंगा हो गया
मस्ती में ज़रा ढंग से रंगा
तो बेढंगा हो गया
बदक़िस्मती से रंग-प्रयोग की धुन में
कुछ छोटा हो गया

अन्त में
गहरे लाल रंग में फींच दिया
तो लँगोटा हो गया
रंगारंग पिंजड़े में बन्द
तोता टरटराया
"सुनो देश वासियो
जनता के लिए भीड़ के नाम
काम-धाम छोड़कर
एक साथ मिल-जुल कर
चलो जंगल में सर खपाएँ
इसे कुछ और गहरे डुबाएँ"
मैंने आहिस्ता से
तोते का पिंजड़ा सहलाया
और कहा—"पढ़ो पार्वतेय!
सीताराम, सीताराम
रघुपति राघव राजाराम....

भारत उर्फ़ ग़रीबनवाज़ बनाम इण्डिया

मेरा नाम एक राज़ है
घर का नाम ग़रीबनवाज़ है
असली नाम भारत है
एक बुरी लत है
जन्म से ही बोलने की आदत है

मेरे सौतेले भाई कहते हैं
मेरा नाम हिन्दुस्तान है
शुरू से ही बेईमान है
माताश्री कहती हैं
मेरा बेटा विश्व-संस्कृति का प्रवक्ता है
सौतेली मां कहती हैं
न जाने क्या रात-दिन बकता है

मेरे सगे नाना आंगिरस 'भार्गव' थे
मेरे पिता विश्वपति विद्यार्णव थे
सौतेले भाई कहते हैं
मेरे दो नाना थे
एक का नाम 'हीगेल' था
एक नाम 'मार्क्स' था
'लेनिन'–'माओ' थे फ़र्ज़ी पिता
ख़ून का नहीं, नून का था रिश्ता

सगे नाना कहा करते थे
दिन में उद्यम करो
रात में संयम करो
दिन में डटकर भोजन करो

रात भर भजन करो
अँधेरे का सर ख़म करो
सोना कम करो
और सगे पिता कहा करते थे
मन लगाकर पढ़ो
'दिए' की लौ की तरह बढ़ो
रोशनी गढ़ो
फ़ुरसत मिले तो इधर-उधर झाँको
भूख लगे तो आसमान फाँको
सौतेले नाना दिनभर गला फाड़ते
रात भर दहाड़ते—

चना चबाओ, मूली खाओ
बताशा खाकर पानी पियो
घर फूँको, तमाशा देखो, मरो चाहे जियो
फ़र्ज़ी पिता कहते
ग़रीबनवाज़ बनो
सहारा दो मोहताजों को ग़रीबों को
भरम टूटेगा, लावा फूटेगा
भीड़ को भूनो, भाड़ झोंको
कुल मिलाकर
भारत और हिन्दुस्तान जैसे दो गुमशुदा
बच्चों की याद का बोझ लादे-लादे
'मम्मी' की हालत हो गई है ख़स्ता
डाट कर कहती हैं
स्कूल जाओ, चलो उठाओ बस्ता
'मूर्ख कहीं के भारत भूत हो गया
हिन्दुस्तान कूच कर गया
मास्टर ने नया नाम दिया है
तुम्हारा नाम 'इण्डिया' है!'

तिलकू धोबी का बेटा
त्रिभुवन एम. ए. की परीक्षा देकर युनिवर्सिटी से लौटा–
"ग़जब हो गया
कवि हो गया
शादी बचपन में हुई
बहू दर्जा चार पास है
'बसन्ती' बड़े काम की बहू है
बेटा निकम्मा है"
तिलकू कहता है बेहद उदास रहता है

एक दिन त्रिभुवन
धोबी घाट पर यों ही तफ़रीहन
चला जाता है
और कुछ गुनगुनाता है
'मूड' में बहू से कहता है–
अरे! का, हो! बरेठिन
कविता-वविता की कुछ ख़बर रखती हो
या दिन भर कपड़े ही फटकती हो
–'रुको बताती हूँ' बसन्ती ने कहा
"पहले कनवा गदहवा इधर हाँक कर लाओ
कपड़े उठाओ, गट्ठर बाँधो
मेरे प्यारे माटी के माधो!

जानते नहीं–
'कविता' बड़की बखरी वाले ठाकुर की बिटिया है
ज़हर की पुड़िया है
और 'वविता' नकनका पंडित की छोरी है
आलू की बोरी है"
बापरे! कब से फींचती हूँ
मैल छूटत नाहीं चदरिया बड़ी मैली है
–"वाह! मैल छूटत नाहीं चदरिया बड़ी मैली है"
त्रिभुवन उछल पड़ा
"यह कविता की पुरानी शैली है"
'शैली' तो हमरे पटवारी
मुंशी दरबारी लाल की भतीजी है
क़ानूनगो की जीजी है"
नॉनसेन्स, इट इज़ आउट ऑफ़ डेट
इधर आओ– लो, यह स्लेट
लिखो–
आज की कविता, जन कविता है
मैं हूँ तो फिर किस बात की चिन्ता है
बसन्ती ने कहा–
चिन्ता तो नहीं, लगता ही नहीं तुम्हारे बिना चित्त
मुझ पर रहम करो, अपने पास ही रखो अपना कवित्त
रही जनने की बात
तो अब और मत करो अनुरोध
त्रिभुवन ने कहा–
ठीक है, ठीक, यह लो
आधुनिक प्रतिमान का नया निरोध
बनाम कविता-बोध!

संवाद : राह चलते

सुनो भाई!
लिबास तो तुम्हारा बेहद साफ़-सुथरा है
सुगन्ध अभी-अभी कुछ आई
रंग तो दूध के रंग से भी ज़्यादा गहरा है
चश्मे का फ्रेम भी सुनहरा है
तुम क्या देखकर भी देखते नहीं
रौंद कर चल दिए लँगड़े की टाँग
और अन्धे को दी एक ठोकर
बड़ी धारदार है तुम्हारी खाँग
मेरे प्यारे
बेचारे अन्धे की लाठी पुल से नीचे
नदी में कूद गई

आखिर किस ख़ुशी में भाग रहे हो
आराम से दो क़दम चला नहीं जाता
रास्ता तो जहाँ तक जाता है–ठीक ही होगा
कल था, आज होगा
लेकिन तुम्हें ज़मीन नहीं दिखती
इसका क्या इलाज होगा

जिसकी लाठी गई
उसे तो भगवान ने जन्म से अन्धा कर रक्खा है
तुम्हारी आँखें कम्प्यूटर के बटन जैसी हैं–
क्या न देखने का
कोई पुश्तैनी धन्धा कर रक्खा है
सुनो भाई,
बात कुछ समझ में आई
हम तो 'धरम' के नाम पर कमाते-खाते हैं
तुम्हारे जैसे तमाम लोग इस देश में
'डाइनिंग टेबुल' पर ज्ञान-विज्ञान चबाते हैं
तो फिर
अभिनय ही सही
आओ कुछ देर तक ही
आँखें मूँदो
अन्धे-जैसी मुद्राएँ बनाओ
कन्धे नीचे झुकाओ
मुझे बिठाओ
मेरी छड़ी कसकर पकड़ो
धीरे-धीरे क़दम बढ़ाओ
मुझे लगातार रास्ता दिखता रहेगा
और तुम्हारे दिमाग़ में
पाँव के नीचे ज़मीन के होने का
अहसास भी उगता रहेगा।

अन्नदास

यहाँ हर चेहरे पर
टँकी आँखों के भीतर से
झाँकता रहता है कोई एक अन्नदास
और हाँकता रहता है आदमी को
कभी उदास, कभी बिन्दास
अन्नदास की न कोई जाति न देश

जैसा देश वैसा वेश
यह सब को डहकाता है
ठगता-ठगाता है
सोच-समझ की बानगी में सचमुच है अन्नदास
लेकिन वहम अन्नदाता का है
अर्थ कोई भी हो सरे आम चबाता है
सफ़ेदपोश शब्दों की आड़ में
कुल, परम्परा, ख़ानदान
भले ही जाये भाड़ में
दिल, दिल्ली, दिल्लगी के नाम पर
ख़ासो आम के सर पर मँडराता है
'आया-गया' पाँव के तलवे चाटते हैं
किसी को कुछ गिनता नहीं
'आई-गई' की चिन्ता नहीं
अपनी निगाहों में आदमी तो सौ फ़ीसदी है

लेकिन गावदी है
सर पर आदमीयत की सींगें मढ़ी हैं
तेवर का पता नहीं
जिस-तिस पर त्योरियाँ चढ़ी हैं
'तिरिया-चरित्तर' के दिशा-दर्शन में
महारत हासिल है

महाभारत चाहे जहाँ भी हो
सुई की नोंक जैसे हिस्से के लिए हो
चाहे नोंक-झोंक के
किसी दिलचस्प क़िस्से के लिए हो
वहाँ हाज़िर-नाज़िर है
कमीनगी की हद तक कट्टर है
कमोबेश काफ़िर है

इश्क़-अश्क के फ़र्क़ से नावाक़िफ़ है
'मौलना राम रहीम पाँड़े'
सब माटी के भाँड़े'
सिद्धान्त वेदान्त रस-रास
बकवास दर बकवास
जहाँ देखो, वहीं अन्नदास
कहीं उदास, कहीं बिन्दास

कहीं तो लगता है
चोर-चकार
कहीं निर्वसन
कहीं निराकार
कहीं 'आत्माराम' का मौसेरा भाई
'मन्मथ महतो' की शादी सगाई में
कहीं बाँभन, कहीं नाई

दूर से
अनामदास का पोता लगता है
नज़दीक से 'मंडन मिसिर' की ड्योढ़ी का
तोता लगता है
गंगा-गोदावरी गोमती-गंडकी
सब में ग़ोता लगाता है
झुण्ड कोई भी हो झंडा किसी का भी हो
सब के गीत गाता है
मगर यह नहीं बतलाता है
इसके भीतर एक आदमी रहता था
वह अब कहाँ रहता है
यहाँ तो हर चेहरे पर
टँकी आँखों के भीतर से झाँकता रहता है कोई अन्नदास
कभी उदास, कभी बिन्दास!

इतिहास लिखा जा रहा है

भाई सोचीराम
राम-राम!
जो बात कभी नहीं आएगी हाथ
हम उसे हवा में उछाल रहे हैं
इतिहास में
और इतिहास के भीतर भी
हम चीख़ चिल्लाकर मौन हैं

आख़िर हम होते कौन हैं?
कभी इस पर ज़ोर दिया है
इधर देखिए हमने जो किया है–
"अपनी उम्मीदों को पालतू मुर्ग़ियों की तरह
सड़कों पर खदेड़ दिया है
हमारे हसीन ख़्वाबों के कबूतरों ने
दरबों की घेरेबन्दी को तोड़ दिया है
भाई सोचीराम
जानते हैं कुछ लोग
आदतन् लाठियाँ भाँजते ही रहते हैं
भैंसे पगुराती ही रहती हैं
और तभी अचानक गोलियाँ सनसनाने लगती हैं
एक दहशतनाक बेचारगी फनफनाने लगती है
हम बेतहाशा भागते हैं
घुस जाते हैं दरो-दरबों में
इन्क़िलाब आराम की साँस लेता है
वातानुकूलित कमरों-क्लबों में
और तब सन्नाटा दर सन्नाटा...
'हिप-हिप हुर्रे
उड़ाओ गुलछर्रे"
हाँ....हाँ....बस कुछ ऐसे ही
जी हाँ....इतिहास लिखा जा रहा है
दायें कान से सुनो
चाहे बाएँ से सुनो मगर सुनो
प्रतिष्ठानों-संस्थानों में
कल-कारख़ानों में
अण्डे देने की सम्भावनाओं तक
मुल्की मुर्ग़ी कुड़कुड़ाती है

जलसाघरों में कबाब होने तक
कबूतर की गुटरगूँ हवा में थरथराती है
दफ़्तरशाहों की
उँगलियों पर नाचती इमारतों के भीतर
जनाधार की तश्तरियों में
फाँसे गए मुर्ग़ा का लज़ीज़ गोश्त बाँटा जाता है
शिकारी बाज़ अपनी-अपनी डेस्क पर
चोंचें रगड़ते हैं
और हमारे ख़यालों का ख़ुशबूदार पुलाव
चोंचों-चूँचू का मुरब्बा हो जाता है

भाई सोचीराम सुना है कुछ हवा के रुख़ पर
कुछ दीवारों पर लटके-चिपके
फेस्टूनों, इश्तिहारों पोस्टरों में क़ैद
तथाकथित विप्लवी मुट्ठियाँ
सत्तासेवी कुर्सियों का कोरस सुनती रहती हैं
आहिस्ता आहिस्ता कभी टेबुल के नीचे से
कभी टेबुल पर ही
लोकसेवा की दिशा में बराबर खुलने लगती हैं
जन-जेबे ख़ालीपन झेलने लगती हैं
और देखते-देखते
झंडे आपस में टकराने लगते हैं
हथियारबन्द लोग निहत्थों पर डंडे बरसाने लगते हैं
जनार्दन पण्डे अगली तीर्थ यात्रा पर
जाने की तैयारी में एक जुट होने लगते हैं

भाई सोचीराम
है क्या कुछ ख़बर
देखिए उधर किस क़दर बरक़रार हैं
बेतरह गन्धाते शाही यानी सरकारी पेशाबघर

जिनके इर्द-गिर्द
अण्डे का खोखला कवच देखकर मुर्ग़
शहंशाहों की ज़बान में कुड़कुड़ाते हैं
कंकड़ पत्थर निगलकर
कबूतर सिर्फ़ पंख फड़फड़ाते हैं
या फिर देवालयों-सचिवालयों की
मुँडेरों पर बैठे-बैठे
चितकबरी कबूतरियों को एक टक घूरते रहते हैं

भाई सोचीराम देखो तो सही
भीड़ जो अभी-अभी शाहराहों से गुज़री
पता नहीं भीड़ के अलावा
उसे कोई और नाम दिया जा सकता है या नहीं
फ़िल्हाल सिर्फ़ चेहरे ही चेहरे
सुर्ख़-सुनहरे भरे-पूरे
कुछ नाम देकर कुछ नाम लेकर
नाम कमाने जा रहे हैं
कुछ गीली करने जा रहे हैं नयी ज़मीन

कुछ ज़मीन पकाने जा रहे हैं....
इस तरह जो हमारे हिस्से में नहीं है
या जो बात क़िस्से में नहीं है
उसे हम हवा में तलाश रहे हैं
और तराश रहे हैं
अपनी ज़मीन का समय-आयाम
बहरहाल इतिहास लिखा जा रहा है
इतिहास के नाम
भाई सोचीराम
राम....राम....

सुखराम वल्द मनबोध

'मनबोध' का बेटा 'सुखराम' कवि हो गया
मनबोध उदास हो गया
बाप को पड़ोसी तक नहीं जानते
बेटा गाँव भर का इतिहास हो गया
मनबोध ने
एक दिन तमतमाते हुए कहा–
सुनती हो सुखराम की अम्मा
तुम्हारा सपूत तो निकला निकम्मा
मैं तो आम का आम ही रहा
तुम्हारा बेटा ख़ास हो गया
लोग कहते हैं–
ससुरा कल का छोकरा
गाँव भर का इतिहास हो गया
और 'बुधराम' का बेटा
सरे आम बाँचता रहता है
साहबज़ादे का कच्चा चिट्ठा–
मनबोध बुदबुदाया
"उल्लू का पट्ठा इतिहास हो गया
कवि क्या हो गया
तुलसीदास हो गया!"

कुछ सुना आपने–
लाल बुझक्कड़ ने नया अवतार लिया है
सुनने में आया है
अवतार लेते ही उन्होंने फ़रमाया है–
'जीने के लिए चन्द दिनों तक
धरती पर आना यंत्रणा है, त्रास है
पैदा होते ही रोना बकवास है
माँ ने हाथ जोड़ कर कहा–
'आप के जन्मते ही घर के लोग मौन हैं
जल्दी बताएँ आप कौन हैं?

–'देखती नहीं हो,
शैतान का सिर आदमी का धड़
मेरा नाम 'लाल बुझक्कड़'
तुम रिश्ते में मेरी मां हो

तुम्हारा नाम 'क्षमा' है
तुम्हारी साँस फूल रही है
लगता है दमा या यक्ष्मा है

–'नहीं बेटा यह राहत की सांस है
दमा-यक्ष्मा का इलाज तुम्हारे बाप के पास है
मतलब यह कोई मेरा बाप भी हो सकता है
अरे मुन्ने यह क्या बकता है
अम्मा तुम नहीं जानती–
मेरा बाप अगर वक्ता है
तो तुम्हारा बेटा प्रवक्ता है

–वक्त गुज़र रहा है
अँधेरा उतर रहा है
शायद बुआजी इधर ही आ रही हैं
गाँव की औरतें आँगन में 'सोहर' गा रही हैं
–'बड़ी भोली हो अम्मा अभी-अभी क़ानून बना है
अवतार पर सोहर गाना मना है।'

शब्दों का तक़ाज़ा

साथियो, आओ कुछ ज़रूरी चीज़ों के नाम
संकीर्तन की मुद्रा में दुहराएँ
सबसे पहले पेट पर शब्दों को चिपकाएँ
यानी सिर्फ़ इश्तिहार के लिए इस्तेमाल किए जाने वाली
दीवार की तरह तनकर खड़े हो जाएँ
कविता को कन्धे पर बिठाएँ
यानी अपनी नन्ही बच्ची के लिए
काठ का घोड़ा बन जाएँ
खाने-पीने के नाम पर
लज़ीज़ तश्तरियों की फ़िहरिस्त बनाएं

फिर एक क़तार में चलते हुए
जुलूसनुमा सिलसिला रचाएँ
एक सड़क से दूसरी सड़क तक जूतें चटकाएँ
दाएँ-बाएँ हाथ फैलाएँ
इन्क़िलाबी लोरियाँ गाएँ
और जो लोग—
हमारी ज़रूरतों के ख़िलाफ़ हैं
उनके नाम शब्दों के तोहफ़े भिजवाएँ

फिर अपने देश को
मिली-जुली नस्ल का मुर्ग़ा मानकर
एक ख़याली मुर्ग़-मुसल्लम पकाने की तरकीबों पर
आपस में बतियाएँ
पंखों को नोच कर हवा को सौंप दें
फिर हथेलियों को रगड़ें
गर्म करें, आँच में झुलसाएँ
भीतर की गन्दगी निकालकर
हवाई मसाला भरें
कुछ विदेशी, कुछ देसी 'नून' डालें
पाक विज्ञान के क़ायदे क़ानून के मुताबिक़ भून डालें
जब तमाम तरह की चिन्ताओं से मुक्त हो जाएँ
तब कन्धे पर लदी कविता को
भर पेट खिलाएँ
खुद भी खाएँ
फिर इत्मीनान से
मुर्ग़े की अँतड़ियों की माला बनाएँ
और अपने-अपने गले में डालकर
गली-गली घूम कर
दुश्मनों की ख़ैरियत मनाएँ ।

वापसी

अजीब बात है
हम फिर जंगलों की ओर लौट रहे हैं
इस वापसी की चाहे जो भी वजह हो
लेकिन इतनी बात तो बहुत साफ़ है–
आदमी होने का अहसास कहीं टूट गया है
और हम फिर जंगलों की ओर लौट रहे हैं

अपने भीतर कुण्डली मार कर बैठे हुए अँधेरे को
हमने जीवन की सारी दूधनुमा रोशनी
इसलिए पिला दी थी
कि वह हमें कभी नहीं डसेगा
हमारे इशारों पर चलेगा
लेकिन वह इतना ज़हरीला
और आदिम है
कि हम उसकी आदतों को
रत्ती भर भी नहीं बदल पाए
उसकी रगों में दौड़ते हुए लहू की धार को
तोड़ने की कोशिश में
हमने तोड़ दिया है संवेदना के तमाम रेशों को

रक्त गन्ध से आक्रान्त है पूरा परिवेश
हम ताज़ा ख़ून की तलाश में

फिर जंगलों की ओर लौट रहे हैं
हमारे कन्धों पर झुका हुआ
पूरा का पूरा आसमान
दरिन्दों की क़ैद में है
हमारी दृष्टियाँ जहाँ भी टँगी हैं
वहाँ न कोई रोशनी है
और न किसी नये अर्थ के उभरने की सम्भावना
लहू बेचकर या ख़रीद कर जीना
सांघातिक विडम्बना है
फिर भी शिविरों में बँटे हुए लोग
शामिल हैं प्रत्यक्ष स्थिति को
नकारने की साज़िश में

सही बात तो यह है कि—
हमारी हथेलियों पर
चाहे जितने भी सूरज रख दिए जाएँ
लेकिन दिल और दिमाग़ में
जमे हुए अँधेरे का उससे कोई रिश्ता नहीं
भीतरी अँधेरे से लड़ने के लिए
मानवीय सन्दर्भों से जुड़े
असली रक्तहीन युद्ध के तमाम मोर्चों पर
हमने टाँग रखे हैं
जंगली जानवरों के रंग-बिरंगे मुखौटे
जो अपने मशीनी हाथों से
समय के चेहरे पर
बारूद की भाषा में लिख रहे हैं
सर्वशून्यता का इतिहास
और उनकी निगरानी में
हम फिर जंगलों की ओर लौट रहे हैं ।

घोंघा

मैं घोंघा हूं
मेरे आवरण को छूकर
तमाम वसन्तों ने
स्वयम् को कृतार्थ किया है
और मुझे एक अर्थ दिया है–
–घोंघा वसन्त!

कूड़ा और जीवन

कूड़ा गाड़ी के पास
खड़ी है
औरत एक उदास सुहागिन युवती
बीन रही है
पत्थर के कोयले जले
—यह समाधान इतना ईंधन
क्या काफ़ी है—
चुनती है जीने का सम्बल
कूड़ों के गन्दे सड़े ढेर से

क़िस्मत के अन्धे मालिक का
यह दुखी नमूना
जिसने अपना तन-मन भूना

क्या प्रश्न नहीं
यह क्यों न खले?
'जीवन चूल्हे में जाय भले
या कितने चूल्हे नहीं जले'
यह आसमान का धर्म नहीं
जो सोचे समझे या कुछ बोले

धरती पर आदमी बहुत हैं
क्या सब के सब अन्धे हैं
या कूड़ों से
भरा पड़ा है
दिल भी और दिमाग़ भी ।

रबरस्तनी ज़िन्दगी दुधमुँहे बच्चों के नाम

नयी चेतना की कोख से जन्मे
मेरे अबोध–
अवैध बच्चो!
तुम मेरी तमाम ग़लत अपेक्षाओं के
असली और अनाम वारिस हो
मुझे विश्वास है
तुम सब अपनी जवानी के
वीर्यप्रभ क्षणों में
मुझे ग़लत नहीं समझोगे
चीख़ो मत
चिल्लाओ मत
लो, जी भर पियो–
यह रही रबरस्तनी ज़िन्दगी
इसे चूसो, जियो ।

आदमी : कवि, शैख़चिल्ली

आदमी हूँ पहले
फिर कवि और शैख़चिल्ली
अच्छाई सिर्फ़ इतनी
समझता हूँ सब को आदमी
चाहे दूर हों या पास
यहाँ-वहाँ, कहीं हों
विलायत या दिल्ली
बुरे हों या भले
आदमी हूँ पहले
फिर कवि और शैखचिल्ली....

बुराइयाँ बेशुमार हैं
तिल को ताड़ बना सकता हूँ
गुड़ को गोबर
बालू के ढेर को
जब चाहूँ तब
चुटकी बजाकर
सोने का पहाड़ बना सकता हूँ

और जानकारी मत पूछिए
बकते रहिए
चींटी के बच्चे को कहूँ इल्ली
सम्भव नहीं वह तो है बिल्ली
कोई कुछ भी कह ले
आदमी हूँ पहले
फिर कवि और शैख़चिल्ली ।

मुहरबन्द चिट्ठा

ज्ञान चाहे किताब में हो
चाहे दिमाग़ में हो
मुझमें या जनाब में हो
ज्ञान, ज्ञान है
ख़ैर कुछ भी हो
आदमी ज्ञानी होता है
रात में जागता है, दिन में सोता है
एक सिरे से दूसरे सिरे तक ज्ञान को चाट जाता है
अक़्लमन्दों की फ़स्लें उगाता है
और जो न आदमी हैं
न ज्ञानी हैं
उनकी जमात में
रोशनी के सुनहले अक्षर बाँट आता है

बात ज्ञानी की है
विश्वास कर लेते हैं
बात आदमी की है
ज्ञान की बदौलत हम साँस भर लेते हैं
सारी दुनिया हैरान है
आदमी के सर पर तूफ़ान है

ज्ञानी है, फिर भी परेशान है
मूर्ख है—चलो, अच्छा है, हैवान है

और वह आदमी है
जिसकी नन्ही सी जान है
ख़ुशबू और अमन से न जाने कब की पहचान है
बेहूदा बुलबुलों ने बाग़ में नाहक़ पैर रक्खा
रिश्ता अच्छा रहा
फिर भी फूलों की लाशें ज़मीन में गड़ गईं
आदमी ने सुर्ख़ाब के पंख लगाकर
ज्ञान को ख़ूब बटोरा

संयमी का बाना बना कर
मुर्दों को झकझोरा
नीयत अच्छी रही
फिर भी दिल की रंगत उड़ गई

—बात तो पते की है
गलियों की नहीं आम रास्ते की है
और नहीं तो हमने इतनी गुस्ताख़ी किस वास्ते की है

लीजिए,
यह हम सब का मुहरबन्द चिट्ठा है
न मज़ाक़ है, न ठट्ठा है
आदमी वह है—
जो ज्ञानी है फिर भी उल्लू का पट्ठा है
यानी
आदमी वह है—
जो ज्ञानी नहीं है, मगर उल्लू का पट्ठा है
और वह आदमी नहीं है—
जो ज्ञानी है, उल्लू का पट्ठा है !

सोने का मृग

सोने के मृग का शिकार कहाँ होगा
युग की अन्तश्चेतना का उभार जहाँ होगा
कहते हैं–
सोने का मृग सब को छलता है
किसी का दिल उबलता है
कोई हाथ मलता है
माथे से माथे पर कूदता है, उछलता है
जीवन और जगत को
चलाता है चलता है
नीली-नीली नसों की मुलायम घासें खाता है
मनु की कई पीढ़ियों के
हाड़-मांस का चरागाह कब का चर गया
और अब भी चरता है
जंगल में अकेला फिरता है
शिकारी न जाने कहाँ मर गया
सब के जी का जंजाल कर गया

रस और रुधिर

हम सागर का सागर पी गए
फिर भी
प्यासे हैं भूखे हैं
ओठ अभी तक सूखे हैं
जीभ स्वाद चाहती है
बुद्धि उन्माद चाहती है
युग मालूम नहीं कब से
कान में तेल डाल कर बैठा है
मूर्ख है– जिस डाल को काट रहा है
उसी पर बैठा है
हम एक दूसरे की आवाज़ तक नहीं सुनते हैं
कोने में बैठे अपनी-अपनी रुई धुनते हैं
कंस और कालिदास की तरह
वाल्मीकि और व्यास की तरह
हम पी गए हैं
न जाने कितना रस और रुधिर
सचमुच
ज्ञान गूँगा हो गया है
और विश्वास बधिर ।

दिशा-दृष्टि

टीलों-कगूँरों पर
शाखाओं शिखरों पर
बैठे निष्कर्मा गृद्धों की दृष्टियाँ
बहुत दूर तक जाकर लौट आई हैं
सम्भ्रान्त बस्तियों के इर्द-गिर्द की
चमरौटियों में
किसी तेली का बैल
मुखिया का बछड़ा
ठाकुर की भैंस
कुछ नहीं मरा दिखा!

सम्पाती की मांसजीवी औलादें
गाहे ब गाहे
पत्तों छिद्रों दरों दरारों से
छन-छन कर आती सूरज की किरणों को
खीझकर कुरेदती हैं
और चमारिनें
अपने-अपने आँगनों में
नन्हें-मुन्ने मरे बछड़ों की खाल उधेड़ती हैं
भूखे प्यासे गिद्धों की जमातें
पंजों पर चोंच घिस-घिस कर
काट देती हैं तमाम रातें
दृष्टि खुलते ही, गर्दन मुड़ते ही
उड़ जाती हैं
उन दिशाओं की ओर
जहाँ मुर्दा गुरिल्लों, भेड़ियों, भालुओं
और अजगरों की हड्डियाँ
जंगली बस्तियों से वनान्तों तक
बिखरी हैं, छितराई हैं
निष्कर्मा गृद्धों की दृष्टियाँ
बहुत दूर तक जाकर लौट आई हैं।

ऊर्ध्वपादो ठहरो !
हरामज़ादो ठहरो
विडम्बना के अनाकांक्षित सूत्रधारो
भ्रूणक्रान्ति के विधायको
अनास्था के अधपके डिम्बो
पौरुष, प्रेरणा के अवान्तर बिम्बो
दुग्धकामी वनैले बालखिल्यो !

विश्वास
और आस्था के बरगद की
असंख्य प्राणधात्री डालों से
औंधी लटकी वर्जनाएँ
तमाम स्तनवती चर्मपर्णाएँ
सचमुच तुम्हारी माँएँ नहीं हैं ।

वादाफ़रोश :

(नेता-अभिनेता-विक्रेता की भूमिका में)

मुर्ग़ो की तरह बाँग देता
उगता है
मैदान के किसी कोने में
फेरीवाला जैसा वादाफ़रोश नेता
और बजने लगता है
ग्रामोफोन के रेकार्ड की तरह

—"सुनो मूर्ख जनता
नही....नहीं...भाई,
शायद घूम गई है सुई
सामने आप हैं
मेरे माई, बाप हैं
मैं हूँ फेरीवाला-फ़िरदौसगंज का
पक्का खिलाड़ी हूँ शतरंज का

मेरे वादों से सौ फ़ीसदी फ़ायदा हो सकता है
मेरा नाम, सुखराम, सुबराती, गुलफ़ाम
भरत, भोंदू, तिलकू, तोंदू कुछ भी हो सकता है

हाँ—तो इधर देखिए
मेरी मुट्ठी में क्या है—
दवा है यानी हवा है
आप भटक गए हैं कहीं
जी नहीं,
बायीं मुट्ठी में है भूख की पुड़िया
'रक्तक्रान्ति', 'रोटीक्रान्ति' की टिकिया
और दाहिनी मुट्ठी में है सुरक्षा की डिबिया
इन्क़िलाब की सुनहली चिड़िया
हमारी कम्पनी का क़ानून—
बस थोड़ा-सा ख़ून
यानी ख़ून दो, ख़रीद लो जीने का मसाला
"झूठ बोलता है बूर्जुवा साला"
भीड़ में बग़लवालों ने
बग़ल वालों को कुहनियों से कूँथते हुए कहा

—ठीक है, ठीक है
मेरा यहाँ होना आप लोगों की मूर्खता का प्रतीक है
भले ही मुझ पर विश्वास मत करो
मगर अन्धे, बहरे जानवरो
पहचानो
आँख मूँद कर मानो
मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है
वादाफ़रोश नेता
अभिनेता विक्रेता
मुर्ग़े की तरह बाँग देता.....

गोबरक्रान्ति

गो यानी गाय
बर-बलद, बैल साँड़
नहीं समझे—
तो लो, पियो चाय
और एक भाँड़

यार!
तुम तो शब्दों का हाड़ तोड़ते हो
तुकों का पहाड़ जोड़ते हो
जानते हो—
गोबर सिर्फ़ गोबर है
आज की ख़बर है
चूल्हा कैसे जले
कहाँ गए उपले?
गाँव-गाँव, शहर-शहर का अन्देशा
क़ाज़ी और कवि दिन ब दिन दुबले
दोनों का यह पुश्तैनी पेशा है—
'गोबर की क्रान्ति' क़ाज़ी का स्वर है
और कवि का स्वर, क्रान्ति का गोबर है
लेकिन जनाब
गाय का गोबर
एक ऐन्टीसेप्टिक लेपन है, पवित्र है
और क़लम के सिपाही का
एक क्रान्तिकारी चरित्र है!

एक सदाबहार मरीज़ और नुस्ख़ानवीस

नेपथ्य से—
हम सब के बीच
सदियों से एक मरीज़
ज़ोर-ज़ोर से साँस लेता है
अपनी बीमारी का हर नुस्ख़ा पढ़ता है
पढ़कर फाड़ देता है
आए-गए सैकड़ों नुस्ख़ानवीस
सिर्फ़ कुछ रह गए हैं नामी गरामी
दो-चार, पाँच दस-बीस
इनमें कई तो बेकार हैं
मुख्य सिर्फ़ चार हैं
मरीज़ रात-दिन बोलता है
बाज़ुओं को हवा में तोलता है
बड़े-बड़े हकीमों से बेसबब लड़ता है
गुस्सा उतारने के ख़्याल से अपने गालों पर
तमाचे जड़ता है
फिर किसी महान दार्शनिक की मुद्रा में
बड़बड़ाता है

दार्शनिक—
'अबे! आत्महन्ता, मूर्ख है जनता
उससे तुम्हारा क्या है रिश्ता
तुम क्यों रहना चाहते हो ज़िन्दा
आत्मा अमरणधर्मा है फिर किस बात का दुख है
मरो या भाड़ में जाओ,
भीड़ से तुम्हारी आत्मा का क्या ताल्लुक़ है'

नेपथ्य से—
मरीज़ की आँखों में ख़ून उतरने लगता है
नुस्ख़े को बार-बार पढ़ता है
और आदतन
अपने बाँए गाल पर कई तमाचे जड़ता है
कुछ देर बाद न जाने किस बात पर ऐंठ जाता है
सामने खड़े हकीम को दे मारता है
और सीने पर चढ़कर बैठ जाता है
फिर न जाने क्या सोचकर
चहलक़दमी करने लगता है
सर के कई बाल नोचकर हथेली पर रखता है
बार-बार नापता है
और किसी महान वैज्ञानिक की मुद्रा में
उन्हें बड़े ग़ौर से देखता है

वैज्ञानिक—
'अबे अपदार्थ जैसे पदार्थ
क्या है तुम्हारा स्वार्थ
ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन, कैल्शियम
और कुछ ऐरे-ग़ैरे तत्वों के योग!
तुम्हारा क्या है उपयोग
पदार्थ को न कोई बना सकता है

न बिगाड़ सकता है
देह-दिल, दिमाग़ सब मौत का चबेना है
सर खपाओ– चूल्हे में जाओ
तुम्हें दुनिया से क्या लेना-देना है'

नेपथ्य से—
फिर तपाक से नुस्ख़ा लिखे काग़ज़ को
नाक की सीध में रख कर उँगली से छेद करता है
और ख़ुर्दबीन की तरह इस्तेमाल करते हुए
इर्द गिर्द खड़े लोगों की छान-बीन करता है
कहीं कोई चेहरा नहीं
हाथ-पाँव, नाक-कान, प्राण-अपान सब ग़ायब
परमाणु सिर्फ़ परमाणु, असंख्य परमाणु लबालब
देखते-देखते नुस्ख़े की ऐसी-तैसी
सामने खड़े हकीम की हालत भीगी बिल्ली जैसी
हकीम की पगड़ी मरीज़ के पाँव पर
और हकीम के पाँव, हकीम के सर पर
मैदान ख़ाली– मरीज़ ज़ोर-ज़ोर से बजाता है ताली
अचानक कोई आता है
मरीज़ संजीदा हो जाता है
और किसी यशस्वी राजपुरुष की मुद्रा में एकटक कुछ देखता है
फिर शिकारी कुत्ते की तरह झपटता है
और ज़ोर से डपटता है–

राजनेता—
'अबे नाकारा, हत्यारा!
जन-जन का मारा
तुम्हारा नाम नक़ली है
बता, आम है या इमली है
लो, अभी-अभी काट देता हूँ पत्ता

तुम्हारी सत्ता—ख़रगोश की सींग
बड़े आए कहीं के धींग
बाप मर गया बेचारा बेचकर हींग
वाह! तो तुम किसी युद्ध के नायक हो
झूठ, सफ़ेद झूठ, नालायक हो
आदमी जब समझदार होता है
तब 'माओत्से तुंग' होता है
या फिर हिमालय की तरह उत्तुंग होता है
तलवार की नोक से कविता लिखता है
तब 'होचीमिन्ह' होता है
अपनी धरती का सुहाग चिन्ह होता है
तुम्हारी सदाबहार बीमारी पर तरस आता है
गले में फन्दा लगाओ
ज़िन्दा रहो या मर जाओ
किसी के बाप का क्या आता-जाता है

नेपथ्य से—
मरीज़ नुसख़े पर हस्ताक्षर करता है
और कई टुकड़ों में चीर कर
हवा में उछाल देता है
न जाने किसका मुँह दिखा सुबह-सुबह
हकीम नौ दो ग्यारह
अचानक किसी के खिलखिलाने की
आवाज़ आती है
वह चौकन्ना हो जाता है
एक किरणदेही आत्मा पास आती है
मुस्कराती है
और मरीज़ अद्वितीय विश्व कवि की मुद्रा में

आँख मूँद लेता है
लम्बी साँस लेता है
भाषण देता है–

कवि—
'तो तुम्हारा नाम कविता है
यह हरामख़ोर तुम्हारा पिता है
जब देखो तब लक़दक़ रहता है
बीमार है–
बेहूदा है, नाटक करता है
ताक में हैं कुछ लोग,
देखें कब मरता है
इससे यमराज और यमराज का भैंसा भी डरता है
रात-दिन ऊँघता है
'किसिम-किसिम' के फूल सूँघता है
वेद भी पढ़ता है, लवेद भी पढ़ता है
क़ुरान भी पढ़ता है पुराण भी पढ़ता है
बाइबिल भी पढ़ता है
अजीब है, ग़रीब है, मनमौजी है
इसकी बहू दुनियाभर की 'भौजी' है

नेपथ्य से—
इस बार आख़िरी नुस्ख़े को ध्यान से पढ़ता है
टैबलेटनुमा पुड़िया बनाकर ज़बान पर रखता है
दायाँ हाथ कविता के सर पर रखता है
"सुनो बेटी!
मेरा नाम ईश्वर है
न मैं मरीज हूँ, न मरणासन्न हूँ
स्वस्थ हूँ प्रसन्न हूँ .
जाओ, तुम्हारा रास्ता साफ़ है
तुम्हारा हर ख़ून माफ़ है ।

अभी-अभी

अभी-अभी तुमने
जिन शिखरों की ओर उँगली उठाई है
वे सब के सब
अशिवधर्मी चेतना के मुखौटे हैं
अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्य से
अपरिचित
विश्वास के दिगन्तों को समर्पित
कोटि-कोटि आंजनेय
वहाँ से निराश होकर लौटे हैं

यह बात दूसरी है कि
ऊपर उठ जाना ऊँचाई है
किन्तु उस समयगन्धी हवा का
कुछ अर्थ तो होगा ही
जो कई नामवर विशृंखल शृंगों को
सूँघ कर लौट आई है
कहीं किसी लक्ष्मण – बूटी का आभास नहीं
और शिखरों की ओर
उठी हुई उँगली
नाक की सीध में
ओठों के बीच
चुप साधने की मुद्रा पर उतर आई है ।

सुनो कविता मेरा नाम ईश्वर है

कविता,
तुम जैसी
मेरी एक प्रेयसी है
जिसका नाम 'मानसी' है
उसकी एक प्रतिरूपा है, जिसका नाम चाक्षुषी है
मेरे कई-कई नाम हैं—
जैसे ओम्, ब्रह्म, ताओ, तत्, अल्ला, गॉड
शब्द, शून्य, ऑड, मॉड, फ्रॉड
मेरे होने की तमाम सम्भावनाओं के भीतर
तुम मानसी हो
होते रहने की विडम्बनाओं के चक्कर में
तुम चाक्षुषी हो
तुम्हें पता है, सदी दर सदी
पार करती रही हो

एक पदी से सप्तपदी
और जन पदी तक का रास्ता
मेरा जो भी नाम पता है
वह तुम्हारा ही नाम पता है

बहरहाल....
कुछ लोग सन्नाटा पीटते हुए
मुझे खदेड़ रहे हैं
कुछ लोग तुम्हारे नंगेपन को
परिभाषित करते हुए
न जाने क्या उधेड़ रहे हैं
स्वरों-शब्दों भाषाओं की आड़ में
न जाने कितने वादी-प्रतिवादी
विवादी-संवादी
तुम्हें उठा ले जाना चाहते हैं अपने-अपने एकान्त में
और मैं ऐसी घटनाओं के
होते रहने की तरंगों पर तैरता अवाक्
बिन्दु-बिन्दु उकेरता रहता हूँ
तुम्हारी और अपनी
एकात्म अनन्तता को अपने अनेकान्त में

मेरे होने के तमाम सम्भावित समय-संकेत
तुम्हें लगातार रचते रहते हैं
कुछ लोग तुम्हें क़लम से खुरचते रहते हैं
खुरचन से ख़ुद को रचते रहते हैं
वहम और इल्हाम के इन्हीं लम्हों में
जनपदों के साक्ष्य में
उनके निर्जन में पसरने लगती है जनपदीयता
जो अपने गर्भ कोष को तोड़ कर
उछालने लगती है नंगी कविता

फिर तो कविता के जनपद में
मैं न मैं हो पाता हूँ, तुम न तुम
इर्द-गिर्द कबूतरों की 'यकुम-यकुम'

अराजकता और अँधेरे की मौजूदगी में
निर्वसन होती हुई कविता
बेतहाशा भागती चीख़ती रहती है
और मेरे होने की सम्भावना
मुझे गहरे तक चीरती हुई
कविता की चीख़ और चीर को सहेजती हुई
इतिहास की अनसुनी आहट को
एक भाषातीत थरथराहट को
शाही फ़रमान की तरह जारी करती रहती है
"ख़ल्क ख़ुदा का, मुल्क बादशाह का
तानाशाह, नौकर शाह
लापरवाह, लालफ़ीताशाह का
हुक्म कविता के अलम बरदार का
शब्दों के सरदार का
जो भी शख़्स मानवाधिकार की इस सदी में
शब्दों के नन्हे-मुन्ने मासूम बछड़ों को ज़िबह करेगा
उसे सज़ाए मौत दी जाएगी"

इसलिए मुझे सुनो,
मेरे होने का न कोई सबूत है, न वजह है
मेरे जैसा जो है, वह कहीं नहीं है
लेकिन वही हर जगह है
जो तुम्हारी साँस है, स्वर है
कविता!
शायद तुम्हें ही कुछ-कुछ खबर है
मेरा नाम ईश्वर है!

व्यंग्य गीतिका :

लिखी-लिखि कागद कोरे-कोरे

ताज़ा-ताज़ा हवा पियो प्रिय,
कागा बोला भोरे-भोरे
सारे सपने स्याह हो गए
लिखि-लिखि कागद कोरे-कोरे

रतन-रतन सी रात गँवा दी पाले पड़ी रतौंधी
सीधी-सी खोपड़ी खपा दी
अब तो दिखती औंधी
अक़्ल बड़ी या भैंस बड़ी
काम न आई छन्द-छड़ी
रँगे सियार-सरीखे दीखे, नील रंग में बोरे-बोरे
लिखि-लिखि कागद कोरे-कोरे

बम तो बम है, क़लम-क़लम है गूँगे गौतम-गाँधी
पोले मुँह तुम क्या कर लोगे, कुढ़ी एटमी आँधी
दरपन-दरपन धुन्ध जड़ी
बिदकी घोड़ी बन्द घड़ी
'ईश्वर-अल्ला' गॉड गोल हैं क्या लखते हो खीस निपोरे
लिखि-लिखि कागद कोरे-कोरे

सखियो हमहुँ भई 'बलमासी'

नाम बड़े दर्शन थोड़े जी, बोध-विचार हो गए बासी
मंत्री जी से ब्याह करूँगी–
सखियो हमहुँ भई 'बलमासी'

राजधर्म की बेटी हूँ मैं राजनीति मुट्ठी-घुट्टी में
मन्दिर-मस्जिद सारे मुद्दे
टाँगे बापू की खूँटी में
मेरा नाम लवंगलता है
मेरा चिन्ह ताश पत्ता है–
हर्षद-सांसद सब ठेंगे पर,
काँधे लटके 'काबा-कासी'
सखियो हमहुँ भई 'बलमासी'

विश्वसुन्दरी विकटनितम्बा ऊँची कुर्सी मुझको प्यारी
देश-वेश कुछ मत पूछो जी,
दुनिया भर से मेरी यारी
लाऊँगी दहेज वोटों का
आँचल भर 'असीस' नोटों का
तस्कर-लश्कर मेरे पीछे–
आगे चतुर चोर चपरासी
सखियो हमहुँ भई 'बलमासी' ।

देश काल का करो कबाड़ा

धनुही तोड़ो, लंका फूँको
चाहे वंशी टेरो–
दौलत की दुनिया है प्यारे, लूटो खीस निपोरो

भीड़ जुटी 'रामो-वामो' की, इर्द-गिर्द हैं चोर-उचक्के
अन्धे बनो, बटेरें पालो
मान-मूल्य सब खोटे सिक्के
अंकल-डंकल का नाम भजो
फिर वाम भजो या राम भजो
जाल-पाल फेंको-फैलाओ, मूँदो आँख मछेरो
लूटो खीस निपोरो

'वेद-पुरान-क़ुरान' बघारें, छौंके दीन-धरम के क़िस्से
जनता खाए घूँसे-घिस्से'
'घी-चुपड़ी' नेता के हिस्से
कविता-वविता को परे करो,
लोहे-लक्कड़ की बात करो,
देश-काल का करो कबाड़ा, कंठी माला फेरो,
....लूटो खीस निपोरो

संसद में जनवास

सहजीवन की बात करो या सहचिन्तन सहवास करो
अपनी चरागाह है यारो!
नरम मुलायम घास चरो

राजनीति का अड़ियल टट्टू 'देश-रतन' ने चुना ख़रीदा
मौज उड़ाओ लीद करो जी–
सब अपना ही माल-मलीदा
घाँटो, गुड़-गोबर, गंगाजल
घोंटो मन्दिर-मस्जिद, मंडल
पदयात्रा से रथ-यात्रा तक
मंच-मंच बकवास करो
नरम मुलायम घास चरो

कंठ-कंठ में देश-राग है, जाति राग है, प्रान्त-राग है
चाल राजसी क्या समझोगे,
कौन हंस है, कौन काग है
दूल्हा लँगड़ा, दुलहन कानी
'मुद्दा' है– 'क्या आनी-जानी'
वर-यात्रा का लक्ष्य यही है
संदद में जनवास करो
नरम मुलायम घास चरो ।

गीतों का जनवादी गरम चना

लो! आसमान से टपके हम तो अटके रहे खजूर
सुनो, गीत गरम प्यारे मैं लाया हुजूर
ख़बर ज़ोर गरम प्यारे मैं लाया हुजूर

यह गीतों का चना निराला
छन्द-बन्द का पड़ा मसाला
ख़ासो ख़ालिस दिल्लीवाला
किशमिश जैसा क़ाबुल वाला
जो भी इसको मनसे खाए
उसको सदाबहार बनाए
राज-रोग से ताज-रोग से रक्खे उसको दूर
सुनो गीत गरम.....

गौतम-गाँधी के दल का है
जयप्रकाश वाला छिलका है
लोहियावाला हर दिल का है
दस्तावर हज़्मी, हल्का है

इसमें कोई तत्त्व न बादी
मेरा चना बड़ा जनवादी
मोड़-मोड़ पर हाज़िर हूँ मैं खाइए ज़रूर
सुनो गीत गरम.....

चोखा चना बना है भाई
अपने मुँह क्या करूँ बड़ाई
क्यों करते हो हाथा-पाई
मोल न कोई आना-पाई
हर टोले का ख़ास खलासी
बम भोला यह बारहमासी
गाँजा, दारू भाँग भरोसे सभी नशे में चूर
सुनो गीत गरम......

दुबले-पतले तगड़े खाते
अन्धे लूले लँगड़े खाते
गप्पी गधे गपोड़े खाते
तोते खाते, घोड़े खाते
खाते पीट-पीट जो डंका
ढाते वे सोने की लंका
खाते, दादा-बापू-काका खाते हैं लंगूर
सुनो गीत गरम......

यह नवगीती चना नफ़ीस
इसकी कहीं न कोई फ़ीस
पुड़िया लो चाहे दस-बीस
चलो निपोरो अब मत खीस
यह लो मेरा अता-पता है
यह तो बस कविता-ववित्ता है
मैं क्या जानूँ मूरख मानुस दाम-दिरम-दस्तूर
सुनो गीत गरम.......

शेषन के फन की फड़कन

शेषन के फन की फड़कन लख
'जद्दू' चीख़ा अरे बाप रे!
ताली बजा-बजा कर नाचे,
'राम भरोसे' 'राम आसरे',

सर पर पाँव बग़ल में संसद
नकलू-बदलू भाग रहे हैं
चारों ओर चुनावी चें-चें
'चिड़ी' न कोई आस-पास रे
'जद्दू' चीख़ा अरे बाप रे!

किस बँसवारी में बैठे तुम
प्रेम-प्रसाद पा रहे भगवन
रामालय से वामालय तक
राज-भोग का रंग-रास रे
'जद्दू' चीख़ा अरे बाप रे!

लाभ लोभ लॉबी के लड्डू
लम्पट लंठ लठैत लपकते
शेषन के बेसन पर झपटे
कुछ खर-खरहे ख़ास-ख़ास रे!
'जद्दू' चीख़ा अरे बाप रे ।

ऋतुरंग

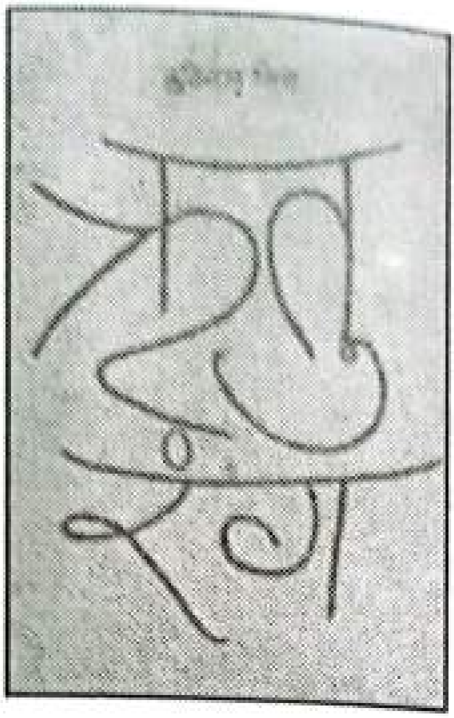

प्रकाशक :
प्रतिध्वनि
31, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कलकत्ता - 700 007

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
205, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता - 700 007

आवरण :
विभूति सेनगुप्त

प्रथम संस्करण : 1995

मूल्य : चालीस रुपए

पृष्ठ : 64

समर्पण : शिवकुमार नोपानी 'चाचा'

अनुक्रम

ऋतु खिले पलाश की	402
याद के रंगीन छन	403
मेरे आँगन गाछ अनार	404
ऋतु-लिपि में कोई हस्ताक्षर	405
नाम रोज़ लिखती है	406
चैताली सौगन्ध	407
बौरे आम खिले महुये	408
लाल-लाल सेमल के फूल	409
देह-प्राण महके	410
एक याद सोनजुही	411
फूलों से माँग रचें	412
प्यार की अदेह शिखा	414
पलाश का दहकना	415
लहके क्षण फागुन के	416
प्यार का अबीरी स्वर	417
सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते	419
गुलाल में नहाई है	420
फाग रंग : एक रंग	421
गुलमुहर के फूल जैसी	422
वैशाखी दुपहरिया	423
बाँट रही है जेठी दुपहरिया आग	424
चिलचिलाती धूप	425
गुलमुहर के फूल जैसी	427
फूल कुछ ऐसे लगे	428
मेघ श्यामला ऋतु के आँगन	429
हरीतिमा के छन्द	430
थोड़ा-सा भीग लें	431

मेघ-रंग 432
आषाढ़स्य प्रथम दिवसे 433
बूँदों से बुने हुए 434
हरितकुन्तला 435
मेघ घिरे सावन के 436
मेघ श्यामला 437
यादों के आँगने 438
बरखा काजर आँजे 439
देहमय खिले कदम्ब फूल 440
हवा खनका गई साँकल 441
दरक गए आँगन में दूध के कटोरे 443
मन-हिरना 444
शरद-चाँदनी 445
ओट से खजूर की 446
पक गए हैं धान 447
हिली नीम की टहनी 448
हेमन्ती शाम 449
ऋचा-सी कोई किरण 450
प्रेमल शीत-प्रणाम 451
एक ठंडी साँस ही उपलब्धि 452

सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते

सद्यो वसन्त
समयेन
समाचितेयं
रक्तांशुका नववधूरिव
भाति भूमि :

ऋतुसंहार—कालिदास

ऋतु खिले पलाश की

किरण-किरण लहक गई
उजले आकाश की
भर आँगन दहक गई ऋतु खिले पलाश की

इतना कुछ सहज-सहज पैठ गया जब गहरे
ऐसी क्या बात है कि
प्यार भरे क्षण उभरे
कितनी अनजानी-सी
लेकिन पहचानी सी
एक उम्र गमकी, अभिलाष और आश की
ऋतु खिले पलाश की

रंगों का मेला है, खिलते-खुलते जाना
क्या टूटा, क्या छूटा, जीवन ताना-बाना
किन्तु नहीं बुझती है
और भी सुलगती है
रंग-रंग आग हुई, प्यार के तलाश की
ऋतु खिले पलाश की ।

याद के रंगीन छन

आग लिखती कहीं जैसे वनपलाशों पर 'किरन'
इस तरह दहके तुम्हारी याद के रंगीन 'छन'

याद आया–
बाँसुरी का टेरना भी ताल-तीरे
उभर आए दृष्टियों में फाग डफ ढोलक मजीरे
कई रेशे, कई रिश्ते
कहीं टूटे
कहीं छूटे
थरथराए बिम्ब कितने फूलगन्धी शाम के–
साँस महकी, याद आया जब तुम्हारा बाँकपन
.....याद के रंगीन छन

एक ऋतुरंगी हँसी गमकी खिले फूलों सरीखी
दूर भर आँगन टहकती एक टटकी सुबह दीखी
उभर आए
झील पोखर
गाँव घर
संगी सहोदर
और जिसकी पँखुरियों पर कुछ सजल प्रांजल लिखा
आँख में तैरा तुम्हारा वह कमलफूली बदन
...याद के रंगीन छन ।

मेरे आँगन गाछ अनार

टहनी-टहनी खिलता प्यार
मेरे आँगन
गाछ अनार

किरण नहाई पाती पँखुरी
फूल-फूल हो गई देहरी
गन्ध-लिखी
स्वरलिपि गमकाए
मुकुलित आम-छन्द छतनार
मेरे आँगन
गाछ अनार

श्यामल-श्यामल शुभ्र सुनहरी
ऋतुवर्णा छवि कोई उभरी
पलकें पुलकीं
छलकीं आँखें
प्यारी श्वेत श्याम रतनार
मेरे आँगन
गाछ अनार ।

ऋतु-लिपि में कोई हस्ताक्षर

ऋतु-लिपि में
कोई हस्ताक्षर पढ़कर प्राण हो गए पागल
शाम हो गई फागुन-फागुन
सुबह हो गई सेमल-सेमल

एक सर्वहारा सन्नाटा टूट रहा है पात-पात पर
वासन्तिक बूर्जुआ हवा तो तुनक रही है बात-बात पर
फड़क गए यादों के डैने
निखर गए
धुँधले आईने
उभरी हैमवती छवि कोई
सौम्य एकतम एकल-एकल
सुबह हो गई सेमल-सेमल

दृष्टि-सृष्टि नवचिन्तन सीझे आँच प्यार की ऐसी दहकी
तार-तार में वृन्त-वृन्त में छन्दमयी लय गमकी महकी
रस 'अफुरन्त' झरे आँगन में
विम्बित मन काजल-कंगन में
साँस-साँस
कवितामय दीखी
स्वप्न हो गए कवितम केवल
सुबह हो गई सेमल-सेमल ।

नाम रोज़ लिखती है

तुम न कहीं आस-पास
फागुनी हवा उदास
एक विप्रलब्धा-सी बिम्बवती दिखती है
प्रेम-पत्र मौसम के नाम रोज़ लिखती है

देह-मन पलाश रंग प्यार के प्रतीक दिखे
डाल-डाल, पात-पात कितने नवगीत लिखे
एक पल नहीं विराम
लिखना ही एक काम
जीवन के वत्सल आयाम रोज़ लिखती है
प्रेम-पत्र मौसम के नाम रोज़ लिखती है

भीतर तो आग-आग ओठों पर फूल धरे
जोह रही है किसको आँचल में बौर भरे
पोर-पोर में मिठास
गदराई साँस-साँस
कोई विश्वास सुबह-शाम रोज़ लिखती है
प्रेम-पत्र मौसम के नाम रोज़ लिखती है

छज्जे पर बैठी गौरैया कुछ चुगती है
आँखों में यादों की एक भीड़ उगती है
महुए की मदिर-मदिर
गन्ध फिरे इधर-उधर
बगिया भर फूल-सा प्रणाम रोज़ लिखती है
प्रेम-पत्र मौसम के नाम रोज़ लिखती है ।

चैताली सौगन्ध

रचना के क्षण फूटे, टूटे प्रतिबन्ध
हर टहनी लिखती चैताली सौगन्ध

ओठों पर रंग-कथा रच गए कनेर
आँखों में उभर गए स्वप्न ढेर-ढेर
द्वार-द्वार दमक गए
नये अन्न
गमक गए
खनक गए आँगन में कंगन-कटिबन्ध

गन्ध प्रिया धरती मधुऋतु के अनुकूल
जूड़े में गूँथ गई बेला के फूल
गृहलक्ष्मी सँवर गई
लुकी बात
उघर गई
सौंप गई हवा एक अग्रिम अनुबन्ध
हर टहनी लिखती चैताली सौगन्ध ।

बौरे आम खिले महुये

बौरे आम
खिले महुये
हम क्यों ऐसे नहीं हुए

टहनी-पातों में दिखने की
भर-भर देह गन्ध लिखने की
फूली-फली न कहीं यंत्रणा
आँखों का
आकाश मेघला
क्षण-क्षण कितना और चुए
हमें न कोई रंग छुए
बौरे आम
खिले महुए

जहाँ दर्द सब हरे हो गए
खिंचे जहाँ तोतई हाशिए
काश! वहाँ हम जन्मे होते
जहाँ प्यार के
छन्द सँवरते
ओठ-ओठ, अँखुए-अँखुए
हम क्यों ऐसे नहीं हुए
बौरे आम
खिले महुए ।

लाल-लाल सेमल के फूल

आँखों में समा गए
लोहू से रचे गए
लाल-लाल सेमल के फूल

जाने किस शिल्पी ने चित्र यह उकेरा है
कई-कई बिम्बों ने जीवन को घेरा है
भीतर तक उतर गए
यादों में सँवर गए
लाल-लाल सेमल के फूल

समय ने सहेज लिया, आहत मन मुखर हुआ
शब्दों के पंख खुले धीमा स्वर प्रखर हुआ
फागुन में खिले हुए
कई सिलसिले नए
गढ़ते ही चले गए
लाल-लाल सेमल के फूल

आँचल में किलक रहे शिशु-जैसे भले लगे
स्नेहमयी मा-गन्धी डालों के गले लगे
संवेदन निखर गए
प्राणों में पसर गए
लाल-लाल सेमल के फूल ।

देह-प्राण महके

आग-आग अंग हुए
पोर-पोर दहके
उभरा कन्दर्प बोध, देह-प्राण महके

साँसों में सिरज गया संवेदन फागुनी
आँखों में लिख दी हो जैसे कामायनी
पातों पंखुरियों पर
रंग-राग ठुमके
देह-प्राण महके

मधु-संचित कोष खुला गाती विश्वम्भरा
पीती है बूँद-बूँद मधुरस रूपाम्बरा
किरण-किरण गन्धवती
आसमान गमके
देह-प्राण महके

तिरती है वाङ्मयी विश्वसृजी चेतना
धरती ने ओढ़ लिया मौन सृजन-वेदना
कण-कण में मधुवर्षी
समय-आग लहके
देह-प्राण महके ।

एक याद सोनजुही

महक गई
सूने में
एक याद सोनजुही

एक सुबह सिन्दूरी भीतर तक उतर गई
कस्तूरी गन्ध कहीं
मीलों तक ठहर गई
सपने कुछ मृगदेही
आँखों में उतर गए
सुआपंख आँचल में
गन्ध की नदी बही
एक याद सोनजुही

एक शाम अंगूरी ओठों पर फैल गई
दूरी का एक बिम्ब
सूर्यमुखी झेल गई
बीते क्षण बौर-लिखे बाग़ों में तैर गए
बाँसुरी सिवानों में
एक नाम टेर रही
एक याद सोनजुही ।

फूलों से माँग रचें

आओ हम
एक साथ रंगों के माध्यम से
रंग-प्रिया धरती का कुमकुमी सुहाग रचें,
फूलों से माँग रचें

ऋतु-राधा के सेमलदेही आमन्त्रण पर
फागुनी पलाश रंग आस्था उलीचें हम
आओ सन्दर्भों का एक नया अर्थ गढ़ें
स्वर की पिचकारी से
सारा मन सींचें हम
आओ हम
मिल-जुलकर यौवन के सरगम से
जीवन का जग व्यापी सूर्यमुखी फाग रचें
फूलों से माँग रचें

ओठों पर तिर जाए मँजराई गीत गन्ध
आँखों में स्नेह-मुग्ध इन्द्रधनुष उग आए
रंगों की चटकीली चित्रमयी भाषा में
रंग-पर्व चेहरों पर
रंग-कथा लिख जाए
आओ हम
अलग-अलग रंगों के संगम से
रंगप्रभ कथानक का मधुर पूर्वराग रचें
फूलों से माँग रचें

क्षितिजों पर रच दें हम रूप का अबीरी पुल
भागते दिशान्तर की यात्राएँ कट जाएँ
रंग में नहायी-सी अनागता सन्ध्याएँ
अँजुरी भर-भर गुलाल
आँगन में छितराएँ
आओ हम
रंग ज्वाल में उभरे मौसम से
प्यार के गुलाबी संवेदन की आग रचें
फूलों से माँग रचें ।

प्यार की अदेह शिखा

भीतर की आग नये वृन्तों पर लहक गई
भूली-सी याद एक
ओठों पर महक गई

फूलों के खिलने-सा भीतर भी कुछ है जो
लिखता है
शिरा-शिरा पर कोई गन्ध-ऋचा
जीने का अर्थ थरथराता है आँखों में
मौसम ने गदराए तापों का छन्द रचा
आमों के बौर
और मन के संवेगों को
छूते ही फागुन की
नयी हवा बहक गई
ओठों पर महक गई

ऋतुदेही आग को पकड़ने की बाज़ी में
किरण-किरण से हमने सारा आकाश मथा
समय कहीं सरक गया
हम दोनों टूट गए
तब से दुहराता है काल-पुरुष वही कथा
रूप-नाम भाषा के बिम्बों को तोड़ती
प्यार की अदेह शिखा
देह-देह दहक गई
ओठों पर महक गई ।

पलाश का दहकना

भीतर ही भीतर
आकाश का चिटख़ना
दुखता है कितना

हल्का कुहरीलापन झीलों ने ओढ़ लिया
किरणों की उँगली से फिसल गया प्यार
यादों की सतहों पर
टूट गई आतंकित पीड़ा की धार
आँखों के सम्मुख ही
क्षितिजों पर मर्मरी प्रकाश का सिमटना
दुखता है कितना
आकाश का चिटख़ना

मौसम ने धरती को बाँहों में भींच लिया
मिट्टी के ओठों पर टहक गए छन्द
रंगों ने बाँध लिया
शिल्पी का संगोपन नीरव निस्पन्द
इतनी क्या कम साखी
अनासंग झेलकर पलाश का दहकना
दुखता है कितना
आकाश का चिटख़ना ।

लहके क्षण फागुन के

याद में चिलकते हैं
भीतर से रिसते हैं—
लहके क्षण फागुन के

सेमल की डालों का घाव कहीं महका है
लोहू से लथपथ
दो-चार सौ कलेजों-सा
आदिमपन तान नये ठिगने आयामों पर
हम सब के नाम
एक-एक फूल चिपका है

आँख में दुबकते हैं
ओठ पर चिहुँकते हैं—
लहके क्षण फागुन के

टेसू के खिलने का अर्थ बहुत चिकना है
गर्राए चुचुआए 'हिरनी' के स्तन-सा
बस्ती से जंगल तक
बहती आवाज़ों को
हम सब के होने तक
छनछन कर चुकना है

अपनी ही सुनते हैं
काँपते उफनते हैं
लहके क्षण फागुन के ।

प्यार का अबीरी स्वर

उड़-उड़ कर आता है प्यार का अबीरी स्वर
गमक उठी जीवन की
मनगन्धी पाँखुरिया

मँजराए गन्धदूत आमों की सरहद में
गीतों के मौसम ने डेरा तो डाल दिया
ऐसे में जाने क्या स्वर शिल्पी को सूझा
एक मधुर पीड़ा का मृगछौना पाल लिया

रह-रह कर बजती है
फागुन के अधरों पर
तन-मन की राग-रँगी
सतरंगी बाँसुरिया
मनगन्धी पाँखुरिया

अँधियारा बिखरा है चन्दन की राख सदृश
बेले की कलियों-सी याद कहीं चटकी है
बावरी प्रतीक्षा के
क्षण-क्षण तो ऐंठ गए
लाख-लाख तारों की साँस कहीं अटकी है
लगता है जीवन की
कुछ पिछली भूलों पर
रूठ गए सपनों के
बहुरंगी साँवरिया
मनगन्धी पाँखुरिया

रूप कहीं तिरता है रंगों के सागर में
ओठों के क्षितिजों पर प्यास कहीं उभरी है
परिचय की रसवन्ती
पिचकारी रीत गई
अन्तस् की लुकी-छिपी बात कहीं उघरी है

लखती है बाट किसी
प्यासे की पनघट पर
माटी की भरी-भरी पचरंगी गागरिया
मनगन्धी पाँखुरिया ।

सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते

सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते

मधुवन्ती किरणों ने
फूलों की पँखुरी पर जीने का छन्द लिखा
ओठों पर प्यार भरा कोई अनुबन्ध लिखा
आँखों में ऋतुगन्धी आसमान तैर गया
दूर कहीं
खिले-खुले
कमल वन गमकते
सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते

समय की तपस्या से
सोनबरन हुई धरा अंग-अंग लहक गए
वृन्त-वृन्त बौराए उभरे क्षण महक गए
द्वैत द्वन्द्व के स्वर में
मन गहरे उतर गया
सुबह-शाम रंगों के
इन्द्रधनु सँवरते
सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते ।

गुलाल में नहाई है

हर गोरी गाँव की गुलाल में नहाई है
ओठों पर होली की
भाषा अरराई है

देह-देह सरसों के फूलों-सी खिली-खिली
बिखरी है यौवन की
मादकता गली-गली
फागुन कुछ महका है
तन-मन कुछ बहका है
पूरी की पूरी अमराई बौराई है

रंग-लिखे मौसम की मस्ती ही पूँजी है
आँखों में उतरी है
ओठों पर गूँजी है
ढोलक करतालों में
घर-घर चौपालों में
अंग-अंग रंग-रंग चूनर रँग आई है

सूरज भी आसमान में अबीर छितराए
आँगन के, आँचल के
संवेदन फगुनाए
किरण-किरण फाग लिखे
कण-कण अनुराग लिखे
वनपलाश दहक उठे आग कसमसाई है ।

फाग रंग : एक रंग

फागुन फगुनाया है फाग रंग में
डूबे हैं, लोग-बाग रंग-रंग में

कहीं होली का रंग
कहीं गोली का रंग
कहीं डोली का रंग
कहीं बोली का रंग
कहीं चोली का रंग
कुछ ठिठोली का रंग
मौसम बौराया है भंग-रंग में

कहीं ढोलक डफ-चंग
कहीं होली हुड़दंग
कहीं मस्जिद का रंग
कहीं मन्दिर का रंग
कहीं मंडल का रंग
फिर कमण्डल का रंग
धर्मध्वजी कूदे हैं, रंग-जंग में

कहीं भारत का रंग
कहीं ग़ारत का रंग
कहीं सर्वधर्म रंग
कहीं मज़हब का रंग
कहीं मतलब का रंग
कहीं गपशप का रंग
अलग-अलग रंग रँगे, एक रंग में ।

गुलमुहर के फूल जैसी

दिशि-दिशी
परिदग्धा
भूमयः
पावकेन

—ऋतुसंहार

वैशाखी दुपहरिया

वैशाखी दुपहरिया लहकी हुई जवान तपन
किलक रहा है, जवाकुसुम-सा—
—यादों का बचपन

मन में अमलतास खिलता है
सन्नाटा बुनता है मौसम
आसमान को घूर रहा है
ओढ़े धूप समय भी गुमसुम
चेहरे कई उभरते रहते
गूँगों जैसा अभिनय करते
खड़ा-खड़ा मैं दरवाज़े पर तोड़ रहा हूँ सूनापन

पोर-पोर में टूट रहा है
एक अँधेरा एक सिलसिला
लेकिन धँसता ही जाता है
आँखों में बेनाम फ़ासला
पत्ते-पत्ते खौल रहे हैं
ऐंठ रही है टहनी-टहनी
एक शहर से एक शहर तक उबल रहा है सुर्ख़ बदन

हवा बकैयाँ चलती-चलती
बिस्कुट-सा कुछ कुतर रही है
नन्हे-नन्हे उगे क्षणों की
कच्ची ख़ुशबू उभर रही है
कोई हँसी तैरती आती
है कनेर के फूल परस कर
कहाँ लिखूँ मैं कौन पढ़ेगा यह अबोध संवेदन ।

बाँट रही है जेठी दुपहरिया आग

बोल रहा है
मुँडेर पर बैठा काग
बाँट रही है जेठी दुपहरिया आग

किसी शोख़ लड़की-सी पहने ख़ुशरंग फ्रॉक
चोटी में गूँथे है गुलमुहरी धूप-रिबन
किरणों से रँगती है
आकाशी कैन्वस
मौसम के माथे की आँके हर शिकन-शिकन

दूर कहीं
पगुराती गायों-सी नदियों में
लहर-लहर तोड़ रही है सफ़ेद झाग
बोल रहा है मुँडेर पर बैठा काग

ग़ुस्से में पीट रही हवा राहगीरों को
बस्ती दर बस्ती सन्नाटे का सख़्त राज
कितने वक्तव्य लाल
फ़ीतों में बँधे-बँधे
झेल रहे हैं कितने सपनों का तख़्त-ताज

सूरज की संसद में
किरण-किरण मुखर हुई
कहीं-कहीं बजता है विप्लव का राग
बोल रहा है मुँडेर पर बैठा काग ।

चिलचिलाती धूप

चिलचिलाती धूप
और बुढ़िया एक कोई
झोपड़ी के सामने बैठी फटकती सूप

उधर गाँव के पूरब का वह
घनी छाँह वाला पीपल भी ऊँघ रहा है
पूँछ समेटे जीभ निकाले
कुत्ते और हाँफती थकी कुत्तियाँ
मुँह फैलाए मार रहे हैं
इर्द-गिर्द की उड़ती हुई तमाम मक्खियाँ
घर-दरवाज़े सभी बन्द हैं
नाच-तमाशे
ढोलक-ताशे
गाजे-बाजे सभी बन्द हैं
लू चलती है हू-हू करती
चीख़ रही हैं कमसिन डालें
हरी पत्तियाँ आमों की नीमों की

घरों के क़रीब से
द्वार के नज़दीक से

सुअरों के छौने
चिचियाते-गुर्राते
भाग रहे हैं तालाबों की ओर
गाड़ने सूरज के गुस्से को कीचड़ में

तालाबों के भीटे चुप हैं
दीख रहे हैं ऐसे
जैसे जीर्णतम स्तूप

दूर-दूर तक फैले
जिनके अभी न फूटे ढेले
सूखे परती जैसे खेत
और धूप की लहरें ओढ़े
विलख रही है विधवा जैसी
चुके कछारों की गंगा की रेत

बादल के टुकड़े
कुछ छोटे कुछ बड़े
आसमान के मुँह पर चिपके
पके घाव पर नई रुई के फ़ाहे जैसे

चुभ रहा है कहीं कुछ तो
दोपहर भर
बहुत भीतर
कौन झेलेगा भला यह
मौसमी विद्रूप

चिलचिलाती धूप
और बुढ़िया एक कोई
झोपड़ी के सामने बैठी
फटकती सूप
चिलचिलाती धूप ।

गुलमुहर के फूल जैसी

गुलमुहर के फूल जैसी
हँसी तुम छितरा रही हो
और लगता है कि कोई भूल फिर दुहरा रही हो

फूल-सा खिलना गमकना देह का प्राकृत 'धरम' है
यह समय का सिलसिला या सृष्टि का पहला 'भरम' है
प्यार की इस भंगिमा को
ओठ पर मैं लिख रहा हूँ
बाँसुरी की तान-सी तुम
हवा में लहरा रही हो

कहीं कुछ होना सही—लेकिन अकारण नहीं होता
भूमिका के बिना छन्दित एक भी क्षण नहीं होता
घाटियों में आँख की
भटकी हुई अनुगूँज जैसी
बात कोई फेंककर
जाने किसे गुहरा रही हो

तुम प्रकृति की पूर्ण प्रतिकृति नाम क्या दूँ चुन रहा हूँ
आँक ले जो छवि तुम्हारी एक भाषा बुन रहा हूँ
रूप का अनुबिम्ब कब से
भीड़ में मैं रच रहा हूँ
और कितने रंग तुम
एकान्त में बिखरा रही हो ।

फूल कुछ ऐसे लगे

खिलखिलाते
खुले गमके फूल कुछ ऐसे लगे
अन्तरात्मा से जुड़े संवेदनों जैसे लगे

सर्जना के वृत्त की
हर थरथराहट नित नयी
जब किसी ध्वनि को पकड़ती वस्तु रचती रसमयी
यह सहज की भंगिमा है
शब्द–
शिशु की प्रकृति मा है
इसी सच की
भूमिका में सुर बजे, सूरज उगे
फूल कुछ ऐसे लगे

चेतना की
रस तरंगों ने जहाँ ख़ुशबू लिखी
वहीं मन-मानुष सरीखी प्यार की मूरत दिखी
समय को हर स्वर सँवारे
इस तरह
कुछ लिखो प्यारे
ज़िन्दगी
ऋतुचक्र-सी क्षण-क्षण रसीले रस-पगे
फूल कुछ ऐसे लगे ।

मेघ श्यामला ऋतु के आँगन

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
रुदन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति
नद्यो घना
मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीना शिखिनः प्लवंगाः

—ऋतुसंहार

हरीतिमा के छन्द

दिन ऊमस के गए
—मेघ-दल उनए

माटी के संवेग सुनहरे
धरती के ओठों पर उभरे
क्षण कुछ
ऐसे नए
कि जैसे अँखुए

सृजन-पृष्ठ पर हल कुछ लिखते
हरीतिमा के छन्द निखरते
लेखन से
जुड़ गए
फावड़े हसिए

युद्ध छिड़ा संतृप्ति-तृषा का
सजग सारथी जिजीविषा का
कवच रथी के
हुए
समय के पहिए ।

थोड़ा-सा भीग लें

बरखा के दिन
और अकुलाया मन
—चलो थोड़ा-सा भीग लें

यादें दो टूक हुईं चीर गई पुरवाई
दूर कहीं ओठों पर टूटन-सी उग आई
जाने क्यों झुक आए
कजरारे घन
और हुलस गए शाल-वन
—चलो थोड़ा-सा भीग लें

आओ कुछ भीतर का सूनापन काट लें
बरसों की अनचाही
दूरी तो पाट लें
शेष रहे नहीं कहीं
कलमुँही तपन
नयी बूँदों का आगमन
—चलो थोड़ा-सा भीग लें

खेत-खेत 'सबुज-सबुज' बीज का सिंगार दिखा
तोते के पंखों पर
जैसे हो प्यार लिखा
धरती के गाँव बड़ा
पानी का धन
और पीड़ा के मौन छन
बरखा के दिन
और अकुलाया मन
—चलो थोड़ा-सा भीग लें ।

मेघ-रंग

बूँदों की थिरकन पर झूम गए ताल
मेघ-रंग रँगा-रँगा पूरा चौपाल

रचना के क्षण बुनते
सृजनशील खेत
आँखों में उग आए धानी संकेत
बैलों के कन्धों पर
ठहर गई भूख
थम गए हथेली पर मूल्य, दिशा, काल
सँवर गए हल-खुरपी फावड़े-कुदाल

वंशी की तानों में डूबा सीवान
रचता हरियाली के
देह का विधान
"गीताली" बाँट गई
पुरवा के छन्द

नावों को स्वर देते गीतमुखी पाल
मछुवाहे फेंक रहे नदियों में जाल
मेघ-रंग रँगा-रँगा
पूरा चौपाल ।

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

दल के दल
आ गए किधर से
काजलरंगी बादल बरसे
—आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

गीताम्बरा हँसी ऋतु बरखा
पुलक उठा मानस माटी का
बूँद-बूँद के
सजल परस से
—आषाढ़स्य प्रथम दिवसे

मा की मूरत-सी दिखती है
छन्दमयी धरती लिखती है
मौन सृजन-श्री
नव अंकुर से
—आषाढ़स्य प्रथम दिवसे ।

बूँदों से बुने हुए

बूँदों से बुने हुए बरखा के दिन लहरे
यादों के सागर में डूब गया मन गहरे

भीतर तक एक आग बिजुरी-सी कौंध गई
आँखों में काँप गई एक देह चम्पई
अनदेखे सपनों-सा वंशी का अनुगुंजन
खोज रहा है कोई
'गोकुल' या 'गोवर्द्धन'
भीगे क्षण तैर गए दृष्टि में वनानी के
दूर तक पलाशों के बाँसों के वन उभरे
—डूब गया मन गहरे

मेघदूत बूँदों की पाती पहुँचा गया
ओठों पर प्रणय-रंग प्यार से रचा गया
मा के आशीषों-सा माटी का सँवरा तन
अँखुओं से लिखता है
सीवानी संवेदन
हरियाली बाँच रही है ताज़ा रचनाएँ
कुछ अनगाए अनुकम्पन ओठों पर ठहरे
—डूब गया मन गहरे ।

हरितकुन्तला

झूम उठा बादल के संग हर किसान
खेत-खेत गूँजे हलवाहों के गान

बूँद-बूँद पीता है, मौसम रंगीन
हरी-हरी घासों के बुनता क़ालीन
बिछा दिए हों जैसे
धरती ने पाँवड़े
चूम-चूम चलते हैं, हल-खुरपी फावड़े
सोंधी ख़ुशबू बिखरी गमका सीवान
खेत-खेत गूँजे
हलवाहों के गान

मिट्टी के ओठों पर रेंगता सृजन
बीजों के साथ-साथ अँखुआए मन
सँवर रही हो जैसे
एक हरितकुन्तला
पुत्रवती-सी लगती शान्त शस्य श्यामला
हरे-हरे आँचल में किलक उठे धान
झूम उठा बादल के
संग हर किसान ।

मेघ घिरे सावन के

पुरवा के संग-संग मेघ घिरे सावन के
पोर-पोर भीज गए तन-मन के वन-वन के

माटी की ख़ुशबू से गाँव-गाँव गमक गए
बरखा के गीत ढुरे
पाँव-पाँव छमक गए
झूलों के स्वर गूँजे नीमों की डाल-डाल
आवेदन तैर गए
काजल के, कंगन के
मेघ घिरे सावन के

मेला त्योहार तीज कजरी के दिन महके
आँखों में इन्द्रधनुष जैसे हर क्षण टहके
अँखुए-सा मन फूटे
ओठ-ओठ हरियाए
धानी रँग स्वप्न उड़े
आँचल के, आँगन के
पुरवा के संग-संग
मेघ घिरे सावन के ।

मेघ श्यामला

नन्हीं-नन्हीं बूँदें किलकीं
मेघ श्यामला ऋतु के आँगन
काजल रेखी आँखें चमकीं
टिकुली दमकी खनके कंगन

खेत-खेत 'पोथी रामायन' बाँच रहे गुन-गुन हरवाहे
सीवानों से लौट रहे घर
वंशी टेर-टेर चरवाहे
मुखर मनोरम
बरखा के दिन
काम-काज में डूबी गिहथिन
देह हो गई धानी-धानी
साँस हो गई चन्दन-चन्दन
—मेघ श्यामला ऋतु के आँगन

अंग-अंग धरती के गमके सोंधी-सोंधी गन्ध बिखेरे
अंकुर-अंकुर स्वप्न सहेजे
सृजनमुखी सौगन्ध उकेरे
बिंदिया आँके
भोर ईंगुरी
माँग सँवारे साँझ सेंदुरी
मड़वे तले किसानी चमकी, क्वाँरी माटी हुई सुहागन
मेघ श्यामला ऋतु के आँगन ।

यादों के आँगने

यादों के आँगने एक उमर बीत गई
जाने कब रीत गई
देह चन्दनी

किरणों के रेशों से बुना-बना तन
हरी-हरी दूबों पर आँकता छुअन
कहाँ गया
प्यार भरा उजला हर छन
ऐसी क्या बात हुई
टहक-टहक टीस हुई
सन्नाटा छींट गई
देह चन्दनी

अंग-अंग जल तरंग आँख, रंग-दरपन
मंत्रों की भाषा में लिखा-लिखा सावन
प्यास-प्यास
छलकाता बूँद-बूँद मन
बिम्ब-बिम्ब टूट गया
बीन बाँसुरी हुई
गीत-गीत चुकी-चुई
देह चन्दनी
जाने कब रीत गई देह चन्दनी ।

बरखा काजर आँजे

'बादर उनए'
तीतरपंखी बरखा 'काजर' आँजे
आँगन-आँगन बूँदें थिरकीं रुनझुन नूपुर बाजे

खुली-खिली अनमोल अबोली सोनाली माटी
हँसी पर्वती तन्वी श्यामा घूँघटवाली घाटी
बीज-बीज
अँकुरे गदराए
संवेदन धानी मँजराए
लहालोट हो गए गाँव-घर
हवा बीजुरी भाँजे
बरखा काजर आँजे

खेत-खेत सीवान सुहाने मन्दिर-मन्दिर दीखे
हल-हलवाहे पोथी-पंडित पूजा-पर्व सरीखे
मुखर कुदाली
खुरपी-हसिए
तुलसी तले जल गए दीए
अन्नवती धरती की मूरत
नीला अम्बर माँजे
बरखा काजर आँजे ।

देहमय खिले कदम्ब फूल

किसने झकझोर दिया
याद हुई 'दिया-दिया'
आँखों की 'जमुना' में चुपके से तैर गए
देहमय खिले कदम्ब फूल

बिखर गई मन ही मन गमक साँस-साँस की
बातें कुछ लहराई
ठहरे इतिहास की
किसने क्या बोल दिया
मौसम कुछ 'पिया-पिया'
ओठों पर गीतों के राजहंस तैर गए
स्वर-तन्मय हंस कूल-कूल
देहमय खिले कदम्ब फूल

कितने सन्देश चुके सपनों के देश में
ताप-तृषा मौन फिरे तापस के वेश में
किसने यह प्यार जिया
पथरायी सूर्य-प्रिया
संवेदन, मुक्त-मुग्ध रघुवर के पैर हुए
रसमयी, अहल्यायी भूल
देहमय खिले कदम्ब फूल ।

हवा खनका गई साँकल

हवा खनका गई साँकल

आज आँगन भर निथर कर
एक रीतापन प्रखर तर
रख गए
अनुतप्त बादल
हवा खनका गई साँकल

अर्थ कोई तानती-सी
नया पथ संधानती-सी
याद उभरी
मधुर प्रांजल
हवा खनका गई साँकल

प्यार की प्रतिश्रुति सुनहरी
रेखती है कहीं बिजुरी
वेदना की
मौन हलचल
हवा खनका गई साँकल

कहाँ मन की बात लिख दूँ
कहाँ गिरवी रात रख दूँ
प्यास के क्षण
आज या कल
हवा खनका गई साँकल ।

काशांशुका विकच पद्म मनोज्ञ वक्त्रा
सोन्माद हंस रव नूपुर नाद रम्या
आपक्व शालि
रुचिरानत गात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूप रम्या

—ऋतुसंहार

—मन्दिर से
लौटी हेमन्ती शाम

—प्रेमल शीत-प्रणाम

ढरक गए आँगन में दूध के कटोरे

पूनम की बाँह पकड़ आश्विन झकझोरे
ढरक गए आँगन में दूध के कटोरे

खिड़की पर हरसिंगार
गन्ध-पत्र छोड़ गया
बरसों की देहमुग्ध जड़िमा को तोड़ गया
झीलों के दरपन में
—हंस-मिथुन उभर गया
स्वप्न-प्रिया गूलर के फूल कहीं लोरे

सरपत के फूल का
हिलाता रूमाल नया
पूछता सिवान कहो यादों का हाल क्या?
धानों की मंजरियाँ
मार रही हैं ताने
लुकी छिपी बात हवा-दूतिनी पछोरे
ढरक गए आँगन में
दूध के कटोरे ।

मन-हिरना

ओठ पर न गन्ध है, न आँख में उजास
जाने क्यों मन-हिरना आजकल उदास

कमल-खिले तालों में कई छन्द छूटे
यादों में सरपत के फूल बिम्ब टूटे
सन्नाटे का आश्रम लगता सीवान
झेल रहा हो जैसे मौसम वनवास
जाने क्यों मन-हिरना
आजकल उदास

एक-एक क्षण कोई स्वप्न कहीं जोड़ता
और समय
रात भर अकारण ही तोड़ता
हरसिंगार के खिलने-झरने की वेला में
दूरी को ओढ़े-सा
दिखता है प्यार पास
जाने क्यों मन-हिरना
आजकल उदास ।

शरद-चाँदनी

उभरी-निखरी शरद-चाँदनी
अश्रुधुली
उजली सुधियों-सी

एक परमहंसी सपना मँडराया उज्ज्वल-उज्ज्वल
तिरे गगन में जैसे कोई बगुलापंखी बादल
किरण-किरण का मधुर निवेदन
छितराया हो
जैसे जीवन
सँवरी झीलें कुमुद रंजनी
गीत-भरी
स्वर-अंजलियों-सी
अश्रु-भरी उजली सुधियों-सी

हरसिंगार-सा महका धरती का अतन्द्र संवेदन
गन्धवती उपलब्धि कहूँ या पीड़ा का परिवेशन
छिटका एक विराग अतर्कित
पात-पात पर
सार्थे अंकित
झलकीं हिम बूँदें सुहावनी
अनाविद्ध
नीले मणियों-सी
अश्रु-धुली उजली सुधियों-सी ।

ओट से खजूर की

चाँद जब बुलाता है
ओट से खजूर की

ओठों पर परछाई एक उभर आती है
मुजरिम बेचैनी-सी तैर-तैर जाती है
दिल में मँडराती है
बात बड़ी दूर की
ओट से खजूर की

ऐसा क्या जादू है, भूल भली लगती है
हर ख़्वाहिश बेक़ाबू ज़िन्दगी मचलती है
बातें कुछ ऐसी हैं
दिल के दस्तूर की
ओट से खजूर की

रातें भी क़ायल हैं गुनहगार सपनों की
आहट भी कहीं नहीं मिलती है अपनों की
चाँदनी बिखरती है
गन्ध-सी कपूर की
ओट से खजूर की ।

पक गए हैं धान

कई वर्षों
बाद प्रियवर
आज
आया है तुम्हारा ख़त

लिखा है
दो वाक्य केवल
है, यहाँ सब कुशल-मंगल
गाय ब्याई है सुबह कल
पत्र लिखना
और बस
फिर दस्तख़त
आज
आया है तुम्हारा ख़त

पक गए हैं
धान शायद
खींचती ऋतुगन्ध शारद
याद आया गाँव बेहद
याद आए
कुछ मधुर
क्षण व्यक्तिगत
आज
आया है तुम्हारा ख़त ।

हिली नीम की टहनी

कैसी पछुवा हवा चली लो
हिली नीम की टहनी

बीते क्षण की ख़ुशबू आई
पता नहीं किस ओर गई
आज शाम को याद तुम्हारी
मन मेरा झकझोर गई

आया ध्यान तुम्हारा उड़कर
मैंने देखा पीछे मुड़कर
गागर लिए कुएँ पर उभरी
छाया गंगा-जमुनी
हिली नीम की टहनी

यह करौंदिया सन्ध्या सूनी
कैसे मन बहलाऊँ मैं
वे कमनीय कमरखी आँखें
कैसे कहो भुलाऊँ मैं
जिनकी हर कनखी का जादू
कर जाता मुझको बेक़ाबू
ठहर गई है शिरा-शिरा में
ठण्डी रात अगहनी
हिली नीम की टहनी ।

हेमन्ती शाम

धूप ढली
रटती है मन्त्र राम-राम
मन्दिर से लौटी है हेमन्ती शाम

ख़त्म हुई सूरज की दिन भर की ड्यूटी
किरणवती शिरा-शिरा शिथिल हुई टूटी
चारे की आशा में
'चिंगनों' के 'टोंट' खुले
श्रमजीवी चिड़ियों के गमक उठे घोंसले
हवा गन्ध
फूल-फूल
नदी-सिन्धु कूल-कूल
ढूँढ़ रहे कहाँ-कहाँ समय का विराम
हेमन्ती शाम

अनमने अँधेरे की शुरू हुई पाली
बुनता है धुएँदार कुहरे की जाली
यादों में उभरा ऋण
साँसों का लिया-दिया
लगता है जीवन भर सारा आकाश जिया
बुझी-बुझी किरण–
किरण
चुके-चुके कितने क्षण
झेल रहे हैं कोई शाश्वत संग्राम
हेमन्ती शाम ।

ऋचा-सी कोई किरण

आँगने,
छमके समय के दीप्तिमय सोनल चरण
ओठ लहके शब्द फूटे
खिल गए मधुवन्त क्षण

ताण्डव से लास्य तक संवेदनों का सूक्ष्म नर्तन
चेतनामय सृष्टि-धारा का यही शाश्वत विवर्तन
यही
जीवन की विधा है
जहाँ क्षण से क्षण बिंधा है
भोर का
सूरज हमारी यात्रा का साक्षी है
ज्योति का ढरका कमण्डल
मुखर रश्मिल निर्झरण
खिल गए मधुवन्त क्षण

सिलसिला दर सिलसिला कितना-कहाँ मन-मौन टूटा
याद भी
आता नहीं अब, कहाँ कब, वह कौन छूटा
समय
यदि कटता न छँटता
कहाँ इतना दर्द अँटता
वर्ष भर के आचरण की कथा सारी
धुल गई लो!
खुली खिड़की खिलखिलाई
ऋचा-सी कोई किरण
आँगने
छमके समय के दीप्तिमय सोनल चरण ।

प्रेमल शीत-प्रणाम

सन्नाटा लिख गई
ओठ पर
आज शिशिर की शाम
कई क्षणों तक रहा काँपता उसका प्यारा नाम

अरे-वही, जो
श्यामलदेही बातूनी थी लड़की
झाँक-झाँक कर
कर लेती थी बन्द
अचानक खिड़की
क्वाँरेपन की कच्ची ख़ुशबू
सर्द हवा की
उँगली पकड़े
मुझ तक पहुँचाती रहती थी
प्रेमल शीत-प्रणाम

भोले मन पर
अंकित लिपि में छन्दित सपने टूटे
दूब-पात पर
टिके मोतिया क्षण-क्षण
किसने लूटे
समय-नदी की स्वर-धारा में
बहते-बहते
उमर चुक गई
शिरा-शिरा में सिहरा खनका
पहला प्यार अनाम
कई क्षणों तक रहा काँपता उसका प्यारा नाम ।

एक ठंडी साँस ही उपलब्धि

गाछ सारे हो गए निष्पत्र
पढ़ रहा हूँ मैं तुम्हारा पत्र

कब मिले थे, क्यों मिले थे
याद भी आता नहीं
प्रश्न चुभते हैं यही
झर रहे हैं ओस-भीगे दीप्त पल-छिन
बात कोई रह गई है अनकही
थरथराए ओठ पर इस तरह प्रतिदिन
अनलिखे बीते कई ऋतु-सत्र
पढ़ रहा हूँ मैं तुम्हारा पत्र

मैं कहीं हूँ तुम कहीं हो
बन गए माता-पिता
अधमरी हो गई कविता
उम्र की आधी सदी तो
खा गई है अन्न-चिन्ता
अत्र कुशलम्-मंगलम्
तत्रास्तु कुशलम् मंगलम्
और अब इसके सिवा क्या
एक ठंडी साँस ही उपलब्धि
एक सूनापन लिखा सर्वत्र
गाछ सारे हो गए निष्पत्र
पढ़ रहा हूँ
मैं तुम्हारा पत्र ।

मेरे आँगन में अनार का एक गाछ है

(यह संकलन प्रकाशित नहीं हो पाया ।)

अनुक्रम

अनार-गाछ : रोशनी के अक्षर 458
'बिट्टू' का लौट आना गुड़ियों की दुनिया में 460
चुप के समानान्तर चुप 462
अनखिले आशय को रंग देते हुए 464
स्वयं को रचते हुए 466
कविता की आग 467
पारदर्शी प्रसन्नता 469
सच बनाम सच 470
पूर्णता पाने की पुलक 471
शब्द मृगया : आग-आग होती जिजीविषा 472
बीसवीं सदी के धृतराष्ट्रों के नाम 474
किसी शब्द की अकाल मृत्यु पर 477
तुम्हें नाम देता भी तो क्या देता 480
और इस तरह माँ की याद आई है 482
बन्द गलियों में 484
जानना ज़रूरी लगता है 485
माफ़ कीजिए 486
जीने की परिभाषा 488
शब्द आईने हैं 489
तुम्हारा होना 490
अस्तित्व : सच की लिपि 491

अपने अपने होने का अर्थ तलाशते हुए 492
रोशनी का दरिया और काँच का घर 493
घटना क्रम 494
शब्दों का लिबास 497
धूप और माँ 498
शब्द बेहद नटखट होते हैं 499
किधर है हमारे घर का दरवाज़ा 500
होना और होते रहना 501
एक विन्दु को निवेदित हों 502
स्पर्श 503
बन्द गली के आख़िरी छोर पर 504

गीत-नवगीत :

पावस गीत - 1 (लोक पक्ष) 506
पावस गीत - 2 (लोकोत्तर पक्ष) 507
ग्राम-वधू 508
कृषक-बाला 513
ज़िन्दगी की एक तस्वीर 515
मैंने तुमको प्यार किया है 517
वन-वन भटके घायल हिरना 518
अपनी परछाईं से 519
लाशों की तिजारत 521
आँधियों के बीच तिनका 523

नफ़रत का पौधा 526

शान्ति की कबूतरी 529

मेहँदी लेपी हथेलियों के सपने 530

मुझे बहुत अच्छा लगता है 531

ऐसी कोई किरण छुओ तुम 532

पाँव के छाले कहीं फूटे नहीं 533

सोनाली-सोनाली अगहन की धूप 534

शर-सन्धान कहीं चूका है 535

अँजुरी भर आकाश 537

गीत पथराने लगे हैं 538

सिर्फ़ जीने का बहाना 539

प्यार क्यों प्रस्तुत नहीं है 540

दूर-दूर तुम 541

हे जननी, हे जन्मभूमि 542

चलो जवान जंग पर 544

घिर गई है रक्त शाम 546

किसी फूल के नाम से 548

किरण-ऋचा 549

तीर्थमयी 550

प्यार एक तीर्थ है 551

क्या क्या मैं हाल लिखूँ 552

हिंस्र साये तमस के 554

प्यार की उपासना 555

आग की गहरी नदी	556
गीत	557
हरित स्वाक्षर	558
कविता क्या दहेज में दोगे	559
संकट गहरा है	560
जिए जाने की व्यथा	561
छान्दस आकुलता के नाम	562
देखते ही रहे चुप-चुप	563
जो बुनो उसको उधेड़ो	564
बन्धु कैसी त्रासदी है	565
मन गन्धर्व	566
अपने देश के नाम	567

अनार-गाछ : रोशनी के अक्षर

मेरे आँगन में अनार का एक गाछ है–
रचना के लहकते क्षणों के भीतर से गुज़रता है
उगते सूरज के रंग में नहाकर फूल-फूल हो जाता है
और तब टहनियों पर लिखी जा चुकी होती है
पंखुड़ियों के खुल जाने तक की अन्तर्यात्रा ।

सुबह जब भी मैं उसके निकट होता हूँ
पत्तों पर उभरने लगती है–
ऋतुरंग के स्पन्दनों में उसके होते रहने की कविता
न जाने कब छू जाती है कोई अनाहत किरण
रविशंकर के सितार की तरह बजने लगता है
अनार-गाछ

अनायास ही निगाहें उठ जाती हैं आकाश की ओर–
धुएँ की सफ़ेद लहरदार लकीरें खींचता हुआ

अभी-अभी कोई बाज़नुमा विमान उड़ते-उड़ते
नीलेपन के अतल विवर में खो गया

मेरी दृष्टि में तैर गया—
अनार के दहकते फूलों जैसी आग का
विस्तार, हवा के रुख़ का पागलपन
सर्वनाशी हाहाकार
और मेरे दिमाग़ में टूट चुके होते हैं सितार के तार-तार

बारूद की भाषा में लिखे प्रशस्ति-पत्र ओढ़े
पुरस्कारों की गरिमा से दबे-झुके ऊँचे लोग
घर की ओर लौट रहे होते हैं
दो क़दम चलते ही ज़मीन से चिपक कर
खड़े-खड़े बुत बन गए होते हैं

दूर-दूर तक तैरती है चीख़ दर चीख़—
अचानक भीतर से कुछ फूटा—
ओ मा!
मेरे आँगन में तो कहीं नहीं है
कोई नागासाकी न हिरोशिमा
और अनारगाछ पहले की तरह बज रहा होता है

मैं एकटक अनार की सुफला टहनियों को देखता हूँ
हरे-हरे, नन्हें-नन्हें पत्तों पर रोशनी के अक्षर किलकते हैं
मिट्टी की ख़ुशबू जैसी कोई कविता गमकती है
कविता की रोशनी में पूरा आँगन हरा हो जाता है
मेरी चेतना की गहराई में एक जाना-पहचाना स्वर उतरता है—
'मेरे आँगन में अनार का एक गाछ है'—
जो रचना के लहकते क्षणों के भीतर से गुज़रता है
उगते सूरज के रंग में नहाकर
फूल-फूल हो जाता है ।

'बिट्टू' का लौट आना गुड़ियों की दुनिया में

पड़ोस में उगा गुलाब का पौधा
जब पहली बार खिला
मेरी बेटी 'ऋचा' ने कहा
पापा! तोड़ लूँ अपनी गुड़िया के लिए क्या ?
'नहीं, 'बिट्टू' अभी नहीं
और वह उदास हो गई
दूसरे दिन जब सुबह-सुबह बाहर आई
फूल को नीचे गिरा, रौंदा-बिखरा पाया
ज़ोर से चिल्लाई पापा
मैंने झट खिड़की से झाँका
फिर बाहर आकर
गुलाब की रौंदी बिखरी पंखुड़ियों को देखकर
भीतर ही भीतर उनकी थरथराहट सहेजते हुए
चुपचाप दूरदर्शन के पर्दे पर
उबलते-उफनते जन-संवेदन के सैलाब
में बह गया
हवा के महीन-महीन रेशों में
यह ख़ून-ख़ून की खनक कैसी
आदमी का दिल-दिमाग़
बारूद-बारूद कैसे हो गया
मैदान की लहलहाती हरी-हरी दूब को
ख़ून से कौन नहला गया ?
और इस तरह
जाने क्या कुछ सोचते-सोचते
कविता की तलाश में खो गया
अचानक अँधेरे की, अथाह गहराई से
एक नामालूम-सा दर्द उभरता है

जो होने और हो चुकने की प्रक्रिया को
जन्म देता है
अनाम ख़ुशबू के टूटते-जुड़ते परमाणुओं का
सिलसिलेवार तरन्नुम
शायद किसी घटना के नाम देने का संकेत देता है
जहाँ समय का न होना ही
इतिहास का संक्रमण बिंदु होता है
एक ऋतुचक्री सम्पात का प्रारंभ होता है
आखिर यह सब क्यों होता है ?
मेरे दिमाग में
गुलाब के फूल
ख़ून-बारूद-बुलेट के बीच
एक अजीब सनसनाहट तैरती है
पता नहीं
आकाश गंगाओं के पार क्या होता है
सच चाहे जो भी हो
लेकिन नियति की आँखों में
एक आदिम सन्नाटा होता है
तब भी रचना-रत होता है
दूधिया उजाले का अनाहत बिंब
उधर पिछले कमरे में निर्विकार 'ऋचा'
अपनी गुड़ियों के लिए माला गूँथती है
सफ़ेद हलके गुलाबी सदाबहार के फूलों में
शायद गुलाब-सा कुछ देखती है
अपने आपमें खोई-खोई-सी खेलती है
गाहे ब गाहे बाहर जाती है
कल तक गुलाब का फूल
जिस टहनी पर दहकता रहा
अब ख़ालीपन, झेलती उस टहनी को देखकर उदास हो जाती है
और फिर गुड़ियों की दुनिया में लौट आती है ।

चुप के समानान्तर चुप

भाषा फूटते ही–
भूगोल के हिस्से में आ जाती है
उसकी ख़ुशबू में रचे-बसे लोग
आपस में अजनबी हो जाते हैं

लेकिन आँखों से आँखों तक तना
रोशनी का एक बारीक तार होता है
वह जब थरथराता है
तब भाषा कहीं छूट जाती है
भूगोल इस रिश्ते को नाम देता है
शब्दों जैसे ज़मीन के
छोटे-छोटे टुकड़े
रची हुई कविता के भीतर से झाँकती
एक देश-दृष्टि में बदल जाते हैं

लगता है—
तमाम पंखुड़ियों की बुनावट में ही
फूल का होना होता है
आख़िर एक फूल के
अनसुने स्फोट में
ऐसा क्या होता है
जिसकी गमक प्यार की भाषा बन जाती है

फूल के आमने-सामने एक सिलसिला
भाषा के हंगामों के पीछे
भावना का चुप है
और समानान्तर दूसरा सिलसिला
भौगोलिक छन्द की बाँहों में
कसमसाते प्यार का चुप है
भाषा फूटते ही
भूगोल के हिस्से में आ जाती है
उसकी ख़ुशबू में रचे-बसे लोग
आपस में अजनबी हो जाते हैं ।

अनखिले आशय को रंग देते हुए

बाइस साल के नौजवान जैसा
लापरवाह बदपरहेज़–
मेरा आँगन एक तरह से अपना नहीं है
लेकिन उसके साथ जुड़े रहने का विश्वास
मेरा अपना है
जिसकी एक बाँह पकड़े खड़ा है युवा अनार
और दूसरी को थामे है
जवान होता हुआ आम

आँगन की अपनी कोई भी भाषा हो सकती है
उसकी आँखों के रेशे
किसी भी रंग के हो सकते हैं
वह मोहताज नहीं रहा कभी किसी भाषा का
और न तो क़ायल रहा
किसी रंग-भेद का
उसके ओठ पर
फरफराते हुए हज़ारों ग़म हैं
बोलता कम है

वह तो सुनता ही रहता है निरंतर
अपने गहरे दोस्त गाछों के अंतरंग संवाद
और जागता रहता है मेरे भीतर
कुछ प्रसंगों
कुछ घटनाओं को आत्मसात करता हुआ
किसी अतंद्र श्रोता की तरह
यही वजह है
वह सिर्फ़ वह है

और हाँ, शायद ऐसा भी होता
अगर उसके साथ अनार, आम कोई भी न होता
तो भी वह होता–
दिमाग़ में तैरती किसी अनलिखी कविता
की तरह
वह जानता है
अनार उसके अनखिले आशय को रंग देता है
और आम की जड़ों, तने
पत्तियों, बौरों, टिकोरों के भीतर से
अपने होते रहने की मिठास महसूस करता है
न जाने क्या-क्या चुप-चुप
बोलता-बतियाता रहता है
मुझे बेहद प्यारा लगता है
उसकी आँखों में किलकता रंग
वर्णांधता की हद से बाहर दहकता रहता है
न कभी बिगड़ता है
न आँखों में गड़ता है
मेरा आँगन एक तरह से अपना नहीं है
लेकिन उसके साथ
जुड़े रहने का विश्वास मेरा अपना है ।

स्वयं को रचते हुए

मानता हूँ–
शब्द-शब्द के बीच दूरी है
जो सिर्फ़ नामों की
खण्ड-खण्ड यात्रा है
वस्तुओं की अलग-अलग मात्रा है
लेकिन निरन्तर होते रहने के लिए
शब्दों का होना
एक अन्तहीन मजबूरी है–
उसका होना ही तो ज़रूरी है
यानी स्वयम् को रचते हुए
आग होने की यंत्रणा ओढ़ते हुए
नई पौध की ख़ातिर ज़मीन गोड़ते हुए
अंकुर से अंकुर तक
रोशनी का तार जोड़ते हुए
लगातार होना है
बीज होना है– वृक्ष होना है
टहनी-टहनी पत्ता-पत्ता, फूल-फूल
ख़ुशबू होना है
समय के साथ-साथ समय में होना है
कविता और समय के साक्ष्य में
शब्द-संदीप्ति को सँजोए रखना है ।

कविता की आग

कविता की आग जो लहकती है
गर्भकोषों में
रचती है समय के अनदेखे सिलसिले
महकती है देह से देहान्तर तक
शिरा-शिरा में लिखी सी
अनदिखी लिपि जैसी उगती है
शब्द-शब्द के भीतर सुलगती है
लौ की तरह लय में फूटती है
कभी प्यार की
कभी आग की भाषा में
आँखों से ओठों तक गमकती हुई, दहकती हुई

कभी मैदान में चुपचाप घास चरती हुई
किसी आसन्नसम्भवा गाय सी लगती है
और–
अपने होते रहने की भूमिका में
माँ जैसी दिखती है
लेकिन जब कभी
भौंकते कुत्तों के भय से
इतिहास की आँखों में भागती है
तब सींग-संगीन में होती है
बन्दूक़ की नली में होती है
तलवार की धार में होती है
कोई रहे या न रहे
वह निरन्तर रहती है

सन्नाटे में–
सितार की तरह बजती है
सदानीरा नदी की तरह बहती है
पानी पानी जैसी होती है/हरिण पीते हैं
जिसे तृण पीते हैं
मिट्टी के कण-कण पीते हैं
'अमीबा' से आदमी होने तक के
वे क्षण पीते हैं
जिनकी निगरानी में
क़बीलों–क़ौमों के क़ाफ़िले दर क़ाफ़िले
रचते हैं अपनी-अपनी संस्कृति का सुहाग
रग-रग में जीते हैं कविता की आग
जो गर्भकोषों में लहकती है
लहू की हर बूँद से
समय के अनदेखे सिलसिले रचती है ।

पारदर्शी प्रसन्नता

प्यार एक पूरी कविता है
आग से रची बुनी
पारदर्शी प्रसन्नता है

एक दूसरे की आँखों में दिखने का
स्वयं को बिम्बों में लिखने का
पूरी यात्रा को प्यार नाम देने का
एक उत्सव है, उत्स है
ऐसा ही कुछ
आदमी से आदमी का
सहज रिश्ता है
प्यार एक पूरी कविता है

कविता प्यार की समग्रता है
सिर्फ़ नामों की तयशुदा
एक बारीक दूरी है
जो प्यार और कविता के बग़ैर अधूरी है
तो फिर ज़रूरी है
प्यार और कविता के लिए
आदमी से आदमी तक पहुँचना
रिश्ते का सेतु रचना
कुल मिलाकर यही कुछ अस्मिता है
प्यार एक पूरी कविता है
आग से रची बुनी
पारदर्शी प्रसन्नता है ।

सच बनाम सच

तुम्हारा सच भी साफ़ है
सच मेरा भी साफ़ है
मैंने कोई ख़ून नहीं किया
तुम्हारा सात ख़ून माफ़ है

तुम जानते हो
तुम्हारी भाषा में ढेर सारे बुलेट प्रूफ़ जुमले हैं
मुझे पता है
मेरी भाषा में फूलों के ताज़ा हस्ताक्षर हैं
कुछ ख़्वाब हैं, कुछ गुलाब के गमले हैं

दुनिया जानती है
तुम्हारा सच बख़्तरबन्द है
जिसकी बुनियाद बारूद है, बम है
लेकिन किसे पता है मेरे सच के केन्द्र में
कविता है, क़लम है

मेरी समझ में
तुम्हारे सच का सरोकार
न ख़ुशी है
न ख़ुशबू है
जो न तो तुम्हारे पक्ष में है
और न मेरे पक्ष में है

बात जो कविता में
आदमी के लिए बुनी जाती है
वह तुम्हारे सच की रोशनी में
बारूद से लिखी जाती है
बात साफ़ है
तुम्हारा सच पूरी तरह आदमीयत के
ख़िलाफ़ है ।

पूर्णता पाने की पुलक

मुझे देखकर अनायास तुम्हारा खिलखिलाना
और फिर ख़ामोश हो जाना
लगता है
लगातार काँपते असंख्य बिन्दुओं के भीतर से
उभरते हुए किसी शून्याकार के प्यार का आभास है
पूर्णता के स्फुटन का गदराया अहसास है
या फिर ऐसी कोई प्यास है
जो ओठों की सतह पर
आग-आग हो जाती है
जिसकी अदृश्य आँच
मेरी शिराओं में बिजली की तरह लपकती है
मेरे अस्तित्व की गहराई में
दूर-दूर तक गमकती है
मैं मुड़ मुड़कर
जब भी देखता हूँ
मेरी दृष्टि में क्षण-क्षण बुनती उधेड़ती
तुम जिस सीमा तक आ पहुँचती हो
वहीं शायद एक दहलीज़ उगती है
एक लोक-लकीर खिंचती है
तुम्हारे पाँवों के छन्द खनकते हैं
शब्द बजते हैं
आखिर क्या तुक है
यहाँ तक आने का
एकान्त में खिलखिलाने का
पूर्णता पाने की पुलक में खो जाने का
और
कोई खूबसूरत बिम्ब
पलकों में बन्दकर
ख़ामोश हो जाने का ।

शब्द मृगया : आग-आग होती जिजीविषा

मैं–
मेरा नाम केवल शब्द नहीं
स्फुरण है–
आदिम सत्य-संदीपन का
क्षण है–
चेतना की फड़कन का
हरिण है वाङ्मय अरण्य का
जो निरन्तर अपनी नाभि के भीतर
गमकते स्वर की तलाश में
भागता रहता है प्रान्तर-प्रान्तर
और जब कभी
किसी वृक्ष के तने से सटकर
खड़े-खड़े आँखें मूँदे होता है
तब मैं उसके होने की दिशा में होता हूँ

उसकी टोह लेता हूँ
कोई शब्द, संज्ञा, सर्वनाम ओढ़कर
आहट पाकर पता नहीं—
शब्द या हरिण भागता है
या भागता है कोई सुगंध-लिखा क्षण
देखते-देखते
दृष्टि के परिदृश्य में शब्द या क्षण
मैं या हरिण छलाँगें भरता हुआ
गति के छन्द रचता हुआ
अद्वयता के अन्तहीन विवर में खो गया

तो क्या—
नीले कमल की पंखुड़ियों पर
हिम-विन्दु जैसे ठहरे शब्द के भीतर से
रोशनी या कविता में आना व्यर्थ है
ज़रूर कोई अर्थ है
शब्द के केन्द्र में थिरकती तरंगों का
अचीन्हे रंगों का
जो 'मैं' और मेरे नाम के बीच
उभरता है, छलाँगें भरता है

तैरता है—
आँखों में कस्तूरी गन्ध-सा
ओठों पर छन्द-सा
कविता में रचा-बसा
स्वरविद्ध अनाम अविराम जैसा
जिससे खुलती रहती है होते रहने की दिशा
और दहकती रहती है
शब्द-मृगया के आलोक में
आग-आग होती जिजीविषा ।

बीसवीं सदी के धृतराष्ट्रों के नाम

पता नहीं–
पृथ्वी की वह पहली सुबह कैसी होगी
जब हो चुका होगा आणविक महायुद्ध
सूरज अपने सातों घोड़ों की रास थामे
क्षण भर के लिए रुक गया होगा
आकाश कुछ और झुक गया होगा
यदि हम में से कोई उस समय
इस अद्भुत घटना का चश्मदीद गवाह
कहीं ज़िन्दा बच गया होगा
तो सोच रहा होगा–

नए महाभारत के 'स्त्री पर्व' में
शायद यही कुछ इस तरह ही हुआ होगा
जैसे किसी विद्युतजिह्व संजय के
विवरण के अनुसार
लोहे के नक़ली भीमों को
सीने से दबोचकर
तोड़ने की साजिश के शिकार
खुली आँखों वाले सही सलामत
बीसवीं सदी के कई-कई धृतराष्ट्र
अपने-अपने आत्मीय विदुरों-बिरादरों को
अन्धे मुखौटों में देखकर
उलझ गए होंगे–
जीवन के अर्थ की व्यर्थता
और मृत्यु के अनर्थ की सार्थकता के संवाद–
जाल में

तब तक आँखों पर बँधी
पट्टियाँ खोलती हुई गान्धरियों की चीख़
नित्य नंगी होती हुई
स्वयंवरा पतिवरा पांचालियों की एकान्त
प्रार्थना
अपने समय की
विश्व सुन्दरियों के नेत्रों के नरगिसी बाँकपन
और उनके नितम्बों
स्तनाग्रों का सुडौलपन
यह सब कुछ विलीन हो गया होगा
कृष्ण-विवर की अतलता में
गहराव की अनन्तता में
उड़ गई होंगी–

अक्षरों शब्दों भाषाओं के पिंजड़ों को तोड़कर
असंख्य छन्द गाथाएँ— कविताएँ
आकाश गंगाओं के उस पार
नील सरस्वती के आँगन में
अँगूठा चूसते किलकते
किसी आदि कवि की तलाश में

इस पार
अशान्ति दूतों के दरबों से
निकले कबूतरों के कई-कई झुण्ड
मसूर के दानों जैसे परमाणु बमों को
अपनी अपनी चोंचों से
फोड़ रहे होंगे

कुछ अत्याधुनिक अन्धे
युद्धोपरान्त सन्नाटे को
नया नाम, नया मोड़ दे रहे होंगे
ऐसे में शायद ही किसी को अहसास हुआ
होगा—
धृतराष्ट्र के अनसुने
असंसदीय शब्दों की भीड़ में दब कर
न जाने कब मर गया होगा
अमन की आग़ोश में तड़प कर
टें, टें करता हुआ
कृष्ण द्वैपायन का तोता

काश! ऐसा कुछ नहीं होता
और इन घटनाओं के आईनेमें झाँकता
ज़िन्दा बचा हुआ कोई भी
इस तरह कुछ नहीं सोच रहा होता ।

किसी शब्द की अकाल मृत्यु पर

अभी-अभी जिस सरकटे शब्द का शव
ख़ून से लथपथ
उत्तर आधुनिक 'बाईपास' के
हरे हाशिए पर मिला है—
किसी मीडिया-पटु लम्पट के अनुसार
न जाने किस उपभोक्ता अर्थवान शब्द ने
उसकी हत्या कर दी
पता नहीं—
इस ग़रीब शब्द ने किसका क्या बिगाड़ा था
वह बेचारा जो भी रहा हो
नाम उपनाम सर्वनाम
उसकी माँ को नहीं रहा होगा मालूम

शब्द को गर्भकोष में सहेजने-सँजोने
और—
नाम देने की कोशिश में
ऐसा ही कुछ होगा अंजाम
माँ की आँखों से झाँकती
प्रश्नाकुलता की तरंगों के वृत्त में
वह न किसी छन्द का चरण छू सका
न किसी अर्थ-लय की सुगन्ध बन सका
मरा भी तो ऐसे
न काम आए कन्धे न रिश्ते
काश!
प्रतीक, बिम्ब किसी न किसी से जुड़कर
बाँस और बाँसुरी की तरह बजता
कुछ रचता-सिरजता
ज़रूर नहीं रही होगी कोई सार्थकता
बचे रहने की
लगता है—
वह पृथ्वी के गिरते स्वास्थ्य की चिन्ता में
अनमन अ-सहज हो गया था
यानी उसे न होने जैसा कुछ हो गया था
कारण और व्याकरण
दोनों की रोशनी में शिनाख़्त मुश्किल है
आख़िर वह कौन था
किस क़बीले का
कुलभूषण या कुलांगार था
क्या था, जन, जाति, जनपद का पता
वह अनाम अकिंचन
जिस भाषा में जन्मा था
वह किसी भी अंचल की रही होगी

किसी प्रान्त प्रदेश देश
या महादेश की रही होगी–
कोई नहीं जानता
सब कुछ अजीबोग़रीब
किच-किच में कुछ सुनाई नहीं पड़ता
अचानक कुछ कामकाजी
और बड़ी तादाद में जुटे
अकाजी शब्दों की लम्बी क़तार छँटते-छँटते
जंजाल-संजाल बुनने के चक्कर में विचरते
शब्दों के कुछ रद्दीफ़रोश छोकरे
'खगोलीकृत इलेक्ट्रानिक' खटोले पर
शब्द-शब्द खटाखट रखकर
जिस सत्य का उद्घोष करते हुए
नटखट 'नेटनागर' के संकेत पर
जिस किसी भी दिशा की ओर मुड़े हैं
उसे नाम देने वाले शक्तिमान शरारती शब्द
ख़ुद अपने अपने रचे बुने मकड़जालों में जकड़े हैं
ज़ाहिर है–
समय और इतिहास के ख़तरनाक मोड़ पर
पंच परमेश्वरों की चौपाल में
किसी शब्द की अकाल मृत्यु पर
जाँच-आयोग की नियुक्ति हास्यास्पद है
ऐसे में–
कौन बतलाएगा
'साइबर स्पेस' की गिरफ़्त में
शब्द-संस्कृति
अर्थात् कविता की संस्कृति का 'वेबसाइट'
कितना निरापद है ।

तुम्हें नाम देता भी तो क्या देता

मैं एक शाश्वत वर्तमान की मौजूदगी में
तुम्हारी अनन्तरूपता के अनगिनत बिन्दुओं
और कम्पनों के बावजूद
नहीं रच पाया था कोई शब्द
सचमुच नहीं बच पाया था
तुम्हारे होने के पहले
कोई ध्वनि-संकेत कोई छन्द
ओ!
मेरी विवशता, अ-सहजता
मेरी अस्मिता!
तुम्हें नाम देता भी
तो क्या देता?

लगता है प्रकृति के ओठों पर
थरथराई होगी पहली बार
शब्द और अर्थ की अद्वयता
तुम्हारे होते रहने की अमूर्त्तता
आखिर क्या नाम देता—
'अदिति अनामिका
अखण्डिता,
या फिर यंत्रणा की भूमिका'
इसके अलावा और क्या कहता

क्या पता—
छन्द पुरुष की 'अमृता आत्मनः कला' का
कोई काव्य बीज
भीतर ही भीतर
तुम्हें निरन्तर
निचोड़ता रहा होगा
और
सनातन क्षणों के साक्ष्य में
तुम्हारे गर्भ-कोष से फूटकर
भोर के उजाले की तरह
खिलखिलाई होगी कविता
और दिक्काल की आँखों में उभरकर
छितरा गई होगी
एक अदृश्य अनिवार्य सार्वजनीन कवि-चिन्ता
ओ,
मेरी विवशता अ-सहजता
मेरी अस्मिता!
तुम्हें नाम देता भी
तो क्या देता।

और इस तरह माँ की याद आई है

मेरी कवि-चिन्ता में
जब भी प्राइमरी स्कूल से लौटे
किसी बालक का चित्र उभरा है
दहलीज़ पर टुकुर-टुकुर ताकता
प्रतीक्षा करता एक वत्सल बिम्ब
मेरे मन की गहराई तक लहरा है
फिर तो न जाने कब आँख भर आई है
और इस तरह
माँ की याद आई है–

याद आते हैं वे दिन
जब 'रामसिंगार' के साथ
कभी-कभी झरबेरी खाने
काँख में बस्ता दबाए
स्कूल न जाकर
'मेजा की पहरी' पर चले जाते
और सूरज डूबने के बाद घर आते

यह बात माँ के कानों तक पहुँच गई
एक दिन
माँ ढिबरी की रोशनी में
घर के सामने चबूतरे पर दादी की छड़ी लिए खड़ी थी
कुछ कुछ याद है
छोटी बहन 'बिट्टी' सहमी-सहमी
दरवाज़े के पास खड़ी थी

कुछ देर बाद
माँ का गुस्सा रसोई तक आते-आते
पिघल चुका था
इस बीच छोटा भाई
कई झरबेरियाँ निगल चुका था

सुबह जब मैं आँखें मलते उठा
तब सूरज निकल चुका.था
आकाश में छलांग भरती मेरी दृष्टि
अपने होते रहने के प्रस्थान बिन्दु पर ठिठक गई
और मेरे अबोध कच्चे-कोरे
मन के एकान्त में
लिख गई
एक अदृश्य कावेरी जैसी जाफ़रानी नदी
तभी से जारी है मेरे भीतर
लहर-दर-लहर
उसकी ख़ुशबू का होते रहना
जहाँ माँ कविता
और नदी के बीच का रिश्ता बेहद गहरा है
मेरे अन्तरंग क्षण जब भी वहाँ होते हैं
शब्द बजने लगते हैं

अभी कुछ देर पहले
सुबह-सुबह पड़ोस में कोई गाय रँभाई है
आँखों से ओठों तक तने
बारीक रेशों पर एक परिचित आवाज़ थरथराई है
आँखों में माँ का वनपलाशी चेहरा उभरा है
लगा है अभी-अभी
आग की नदी में नहाकर आई है
और इस तरह माँ की याद आई है ।

बन्द गलियों में

कुछ ऐसे लम्हों में / जब मेरे भीतर
मेरा वस्तुमुखी 'मैं' नहीं होता है
तब मैदान की हरी दूब पर लेटा हुआ
आकाश की अनन्तता

और उसकी नीली गहरी रिक्तता में
खो गया होता हूँ
और तुम्हारा होना महसूस करते हुए
देख रहा होता हूँ
अपने सामने तैरते हुए तुम्हें
एक मुजस्सम ख्वाब की तरह
अपनी साँसों में उतरते हुए

कोमल गान्धार मुस्कराहट के साथ
ओठों पर उभरी ऊष्मा के साथ

तभी—
न जाने कहाँ से बेतहाशा भागता हुआ
मेरा वस्तुमुखी मैं
मुझमें वापस आ गया होता है
अचानक सन्नाटे में थरथराते हुए
तन्मयता के तार-तार / तोड़ गया होता है

और—
शोर-शराबे, हाया-पाई
मस्ती-मौज / गाली-गलौज़ की
बन्द गलियों में आ गया होता है ।

जानना ज़रूरी लगता है

हम जी रहे हैं एक ऐसे ख़तरनाक़ समय में
जहाँ शब्दों की एक लम्बी भीड़ / लगती है अजनबी
सम्वेदना के रेशे-रेशे उधेड़ती / विखण्डन की यह सदी
क्या रचती-बुनती है किसके लिए
नहीं जानते उसके नेट-नागर तक भी
तब भी यह जानना ज़रूरी लगता है–
आख़िर इस माँ जैसी धरती की कोख में
बारूद छितराना है या बादाम उगाना है
हमें यह भी जानना ज़रूरी लगता है–
क्या उसका धानी जाफ़रानी आँचल
आतंक के रेशों से बुना गया है
उसके दुध-मुहे अन्नों के स्पन्दनों को
तोपों, टैंकों, जंगी-विमानों, बमों की डरावनी आवाज़ों में न
जाने क्यों सुना गया है
हम नहीं जानते, इतिहास
न जाने किस लाइलाज बीमारी का शिकार है
जिसके कारण उसे मृत घोषित किया गया है
हमें यह जानना ज़्यादा ज़रूरी लगता है
आदमी से आदमी के रिश्तों की जड़ें काटते
वातानुकूलित कक्षों में नाचते-थिरकते
ग्लोबल खेटक-खिलौने वरदीधारी बदहवास बौने
अपने हिस्से की ज़मीन को
और सब के हिस्से के आसमान को
किस बिन्दु तक बाँटते हुए रचना-बचाना चाहते हैं
यह जानना हमें बेहद ज़रूरी लगता है
आख़िर इस माँ जैसी धरती की कोख में
बारूद छितराना है या बादाम उगाना है ।

माफ़ कीजिए

मुझे लगता है–
कविता ही
अपने पाँव के नीचे की
खिसकती ज़मीन

और अपने ज़मीर को
सही सलामत रख सकती है
या कुछ इस तरह कहा जाए
तो कविता तभी इन्क़लाब का
कोई नुस्ख़ा बन सकती है
जब वह दिल से दिमाग़ तक
हमें स्पन्दित करे
हमारी समझ और समय को संवेदित करे
जनाब, माफ़ कीजिए–
कविता कोई जमालगोटे का बीज नहीं है
जो किसी मुल्क के लोगों के
क़ब्ज़ और नब्ज़ को
एक साथ ठीक रख सके
उसे न समझना, न सहेजना
एक क़ौमी साज़िश है
एक सियासती शरारत है
संसद में पीठ पर कुर्सियाँ लादे
चीखते चिल्लाते लोगों के लिए
वह एक फुसफुसी चीज़ है
गले में लटकाए रखने का
महज़ एक तावीज़ है
जी हाँ–
उजाले में अँधेरा दिखाने वालों को
क्या पता
आदमी को ज़िन्दा रखने की
शिनाख़्त है कविता–
वह न तो चीज़ है, न तावीज़ है
रोशनी की तहज़ीब है, तमीज़ है ।

जीने की परिभाषा

साथियो, क्रान्ति के लिए
ख़ून और पसीने की ज़रूरत है
सचमुच यह जुमला
बेहद ख़ूबसूरत है
ज़ाहिर है–
ख़ून से नयी पौध उगती है
पसीने से धरती खिलती है
फ़सल फलती है
लेकिन–
अनपे मुल्क के रहनुमाओं की क़सम
हमारी नसों में न तो ख़ून है
और न चेहरों पर पसीना है
पौध उगेगी कैसे
धरती खिलेगी कैसे
फ़सल फलेगी कैसे
जहाँ रोटियों की तलाश में
और भीड़ रचने के जुर्म में
पिटते-पिटते
मर जाने का नाम जीना है ।

शब्द आईने हैं

शब्द बच्चे हैं शब्द खिलौने हैं
शब्द सुन्दर हैं– सलोने हैं
विराट है बौने हैं
हमारे अपने हैं
आओ, इनके साथ खेलें
इन्हें दुलार दें
सहलाएँ प्यार दें
इन्हें ठुकराएँ नहीं, झुठलाएँ नहीं
शब्दों को अन्तरात्मा की गहराई तक बूझें
इनके होने और होते रहने के लिए
इनसे ही लड़ें जूझें
और अपने समय की भूमिका में
परमसत्ता और आत्मसत्ता के बीच
एक अदृश्य सेतु समझें
आओ इन्हें सँवारे सहेजें
इसलिए कि–
जो है, जो नहीं है
या जो जैसा भी है
उसे प्रतिबिम्बित करते हुए
शब्द बच्चे हैं, शब्द खिलौने हैं
सुन्दर हैं, सलोने हैं
विराट हैं, बौने हैं
हमारे अपने हैं ।

तुम्हारा होना

मेरी तलाश की सार्थकता है–
मेरे भीतर क़ैद
एक 'मैं' के मुक्त होने की
द्वन्द्वात्मकता

अन्तर्मानस पर पसरे
घने अँधेरे को तरल करती हुई
तुम्हारी मुस्कराहट की काव्यात्म आदिमता
अनायास तुम्हारे ओठों पर स्पन्दित
प्यार की पहली कविता है
देहगन्ध से परे
अनंगरंगता की मद्धिम रोशनी में
धीरे-धीरे चटकते
धारावाहिक बोध की छिटकती
आत्मदीप्ति के साथ
तुम्हारा खुलना-खिलखिलाना
असहज का सहज होना है
यानी तुम्हारा होना–
मेरा होना है ।

अस्तित्व : सच की लिपि

किसी कली का खुलना
किसी फूल का खिलना
ख़ुशबू बिखेरना
बाँटना
सच है या सिर्फ़ एक घटना है
अगर यह सच नहीं
तो क्या सपना है—
यह जिस सच की लिपि है
जिस अर्थ की
जिस नाम की जिस रूप की व्यंजना है
और जिस अज्ञात की रचना है
उसे हम ख़ुद
अपने होने के सच की तरह
न महसूस कर पाएँ
न पढ़ पाएँ
तो फिर
एक मुहज़्ज़ब बेहूदगी है
अस्तित्व की भाषातीत थरथराहट को
नज़रअन्दाज़ करना है
शब्दातीत का अपमान करना है ।

अपने अपने होने का अर्थ तलाशते हुए

एक रात
लोकल ट्रेन से घर की ओर आते हुए
रोज़ की तरह खिड़की से
झाँककर देखा
आकाश आईने की तरह साफ़ सुथरा था
तभी एक उज्ज्वल तारा
अनन्त की गहराई से ऊपर उठता हुआ
मेरी ओर एकटक ताकता-सा दिखा
तुम्हारे ललाट पर झलकते
गोल चन्दनी टीके जैसा

मुझे लगा
हम तुम आमने-सामने हैं
और दोनों की आँखों में तैरते हुए
एक दूसरे के बिम्बों में
अपने-अपने होने का अर्थ तलाश रहे हैं

आहिस्ता-आहिस्ता सरकते समय की
शर्तबन्द निगरानी में
धरती से आकाश तक थरथराते
फ़ासले को तय करते हुए
ओठों पर थिरकते
कुछ अक्षरों की रोशनी से
हम अलग-अलग
प्यार की एक अपरिभाषित मूर्ति तराश रहे हैं।

रोशनी का दरिया और काँच का घर

दोस्तो,
अपनी सुविधा के लिए
मूल्यों को इतना कसो मत
टूट जाने का डर है
दरअसल आदमी होने की कोशिश में
मूल्य एक अनुभव है
अँधेरे में प्रकाश का स्फुरण है
और रचना का वह क्षण है
जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी जिया जाता है
मूल्य के नाम पर
जो लिया दिया जता है
वह तो लेन-देन है तोड़-जोड़ है
एक तिजारती दस्तूर है, दर है
मूल्यों को इतना कसो मत
टूट जाने का डर है

अपनी पहचान उकेरने के लिए
फूलों की तरह हँसो
दिल से दिमाग़ तक बसो
ताज़ा कविता की तरह दिखो
आदमी से आदमी के बीच प्यार लिखो
ख़ुशबू का केन्द्र
बाहर नहीं भीतर है
आदमी तो रोशनी का दरिया है
जिसकी धार टूटती नहीं
जो टूटता है–
वह काँच का घर है
दोस्तो,
अपनी सुविधा के लिए
मूल्यों को इतना कसो मत
टूट जाने का डर है ।

घटना क्रम

मेरे दूध के एक दाँत का टूटना
एक मामूली घटना है
और ऐसी कई घटनाएँ
कभी भी कहीं भी घट सकती हैं
जो न तो–
किसी क़लम के नोक पर ठहरती हैं
न उन पर अख़बार नवीसों की
नज़रें पड़ती हैं
न जाने क्यों मेरे ज़ेहन में
कुछ इस तरह उभरती हैं–
'देशरत्न ठाकुर की दुधारू मुर्रा भैंस को
पड़ोस में उगे

नागफनी की झाड़ी का
ज़हरीला साँप डस गया
पंडित की गाभिन गाय
नई चेतना की उत्तर आधुनिक घास
चरते-चरते
पाँड़े के खँडहर वाले बड़े कुएँ में गिर गई
देखते-देखते दोनों की खाल उधेड़ी लाश
पाँच बीघे वाले चक में
चमरपिल्लों की जमात से घिर गई
और नोंच-खसोट के संकुल युद्ध स्तर पर
शुरू हो गई शक्ति परीक्षा—
मांस के लोथड़ों को लपकने की
अपने-अपने हिस्से की हड्डियाँ चूसने की
सूरज डूबते-डूबते पंचबीघा क्षेत्र को
पंचसितारा जन-सेवालय समझ कर
उसके तौर-तरीक़ों को ध्यान में रखकर
मुखर हो गई आसमान से उतरे
दूरदेशी दूरदर्शी चमरगिद्धों की शानदार दावत

आज़ादी की पचासवीं सालगिरह के अवसर पर
लगता है एक पूरा देश
शब्दों की ऐंठती शिराओं के चक्रव्यूह
में फँस गया है
दुखीराम के स्वप्न-महल का
तीन चौथाई हिस्सा
ज़मीन में धँस गया है

ठाकुर ने नई भूरी भैंस ख़रीद ली है
पंडित ने गाय की जगह बछड़ा पाल लिया है
और चौपाल चर्चा में शामिल

बूढ़े देश को परिभाषित करने वाले कुछ लोग
लाठियाँ भाँजते हुए–
संसद की ओर जा रहे हैं
कुंछ लोग लालटेन लेकर
कुतुबमीनार ढूँढ़ रहे हैं
कुछ लोग एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हुए
मना रहे हैं ताण्डवोत्सव
क़ानून की मोटी भोथरी खुरदरी ज़बान पर नून मलते हुए

ताज्जुब है–
अपनी-अपनी डफली बजाने के आलम में
किसी को पता नहीं
सामने रखी संविधान की पोथी
सरकारी कुर्सी चाट रही है
या चुनावी चक्कर की चुहिया कुतर रही है

सत्तालोभी लोमड़े
लोकतंत्र के मुखौटों में
लकड़बग्घों की तरह घूम रहे हैं
सरेआम
दूर-दूर तक दिख रहा है
साफ़-साफ़ इन के ख़िलाफ़
एकजुट होता हुआ अवाम

ऐसे ख़तरनाक समय में
नये शब्दों के जुलूस के साथ
कविता को विप्लव की भाषा में
मुखर हो जाना चाहिए
किताब महल और पाठघर से निकलकर
मैदान में उतर आना चाहिए ।

शब्दों का लिबास

तार-तार हो चुका है–
शब्दों का लिबास
भाषाएँ नंगेपन की हद तक
हो चुकी हैं लाचार
भोथरे हो चुके हैं तमाम औज़ार
उन्हें तेज़ करने के लिए
ज़रूरत है किसी ऐसी आग की
जिसकी सनसनाहट से
शब्द गर्म हो सकें
जिसके ताप से भाषाएँ पिघलकर
कोई नया अर्थ रच सकें
जिसकी आँच पर
कविता खुले, रोटियाँ फूलें पकें
तभी शायद तमाम अख़बार
गढ़ सकते हैं–
सुकून दिलाने वाली कोई सुर्ख़ी
कोई सुखद समाचार

शब्दलोक की हमारी तमाम यात्राएँ
ढेर सारी कविताएँ
टंकारती भाषाएँ हो चुकी हैं बेकार
करते-करते इन्तिज़ार
उन कबूतरों की वापसी का–
उड़ाए गये जो अमन की दिशा में
अब तो–
चिन्तन की मुद्राएँ
और चीख़ने का अन्दाज़
खो चुके हैं सार्थकता का एहसास
तार-तार हो चुका है शब्दों का लिबास ।

धूप और माँ

धूप किसी भी ऋतु की हो
नरम-गरम सुषम
जैसी भी होती है
वह माँ जैसी होती है
दूब के पातों पर पसरी
सुनहली हरीतिमा जैसी होती है
खेत में हो मैदान में हो
चाहे आँगन में हो या सीवान में हो
धूप जब भी जहाँ भी होती है
माँ जैसी होती है
वह न किसी देश की होती है
न किसी धर्म की होती है
न किसी मज़हब की होती है
वह हम सब की होती है
नरम गरम सुषम
जैसी भी होती है
माँ जैसी होती है ।

शब्द बेहद नटखट होते हैं

शब्द बेहद नटखट होते हैं
वे जब नाराज़ हो जाते हैं
तब उन्हें लॉलीपॉप या
सुनहले क्लिप वाला क़लम देकर भी
ख़ुश नहीं किया जा सकता
हाँ, शब्द बेहद नटखट होते हैं
ख़बरदार !
उन्हें आँख दिखाना
चाँटा लगाना मना है
वे जन्म से ही आज़ाद और बाग़ी होते हैं
हो सकता है
कोई बात हो
या कोई बात न भी हो
या ऐसी कोई बात हो
तो वे सामने पड़ते ही
चुपचाप
हैरत भरी नज़रों से घूरते हुए
तुम्हारी आँख में
तुम्हारा ही क़लम खोंसकर
भाग जा सकते हैं
शब्द बेहद नटखट होते हैं ।

किधर है हमारे घर का दरवाज़ा

राजा !
ज़रा यह तो बताओ
किधर है हमारे घर का दरवाज़ा
हम नहीं जानते
तुम्हारी उँगली जिस ओर उठ रही है
वह किसका घर है ?

एक ब्रह्माण्ड किरण
कानों से टकराती है
शब्द की तरंगों पर
तैरने लगता है एक प्रार्थना घर
जो यहाँ रहकर भी – नहीं रहते
वे कहते हैं मन्दिर है
जो यहाँ रहकर भी – कहीं और रहते हैं
वे कहते हैं – मस्जिद है
लेकिन कई-कई लोगों का कहना है
जिसे वहाँ रहना है
वह लापता है
वह तो सिर्फ़ एक पता है
जिस पते पर
मत-पत्र फरफराते हैं ।

होना और होते रहना

तुम एक गोल घेरे के भीतर हो
मैं उस घेरे से बाहर हूँ
तुम्हारे होते रहने में
और मेरे होने में
बस इतना ही अन्तर है

जहाँ कुछ नहीं है
वह मेरा घर है
उसी का अक्स तुम्हारा प्रार्थना घर है
मेरे यहाँ जो घटता है
वह महज़ घटना है
तुम्हारे यहाँ की घटना
एक टूटती हुई संरचना है

तुम्हारे इर्द-गिर्द जो है – नश्वर है
मेरे आस-पास
न बाहर है, न भीतर है
जो है–
स्वर है, अक्षर है ।

एक विन्दु को निवेदित हों

आओ,
हम सब समवेत
एक विन्दु को निवेदित हों,
असंख्य डिम्बाशयों में बन्दी हुए
अनगिनत सूर्यों की
मुक्ति के लिए
अपना सर्वस्व लिए-दिए
भीतर की एक संदीप्ति के लिए
स्वयं वन्दित हों, स्वयं पूजित हों
एक विन्दु को निवेदित हों ।

प्रार्थनाएँ—
बहुत-बहुत-सी प्रार्थनाएँ
किन्तु इतना संविभ्रम
इतनी दुविधाएँ

आओ—
हम सब
अकाम, अन्तःस्फूर्त्त, सचेत
सूर्यो से सूर्यों के बीच की दूरी तक
अभिवन्दित हों
एक विन्दु को निवेदति हों ।

स्पर्श

(अपने जन्म दिन पर)

कितना स्नेहमय स्पर्श है
पूसी धूप की सुकोमल, सुनहली ऊष्मा का
टिक गया हो हाथ जैसे माथे पर
ममतामयी माँ का

सामने घास पर जमी ओस की बूँदें
न जाने आज क्यों – कब
मेरे अनाम संवेदनों की डोर थामे
छलक पड़ीं आँखों से
लगता है–
मेरे भीतर तैर रही है प्यार की खुशबू ।

चाहता हूँ
उसे बाँट दूँ
अपनी असहज होती हुई सदी के हित में
आखिर करूँ क्या–
प्रकृति की इस सहज भंगिमा का
जो हर साल कर जाती है
मुझे कुछ और अ-सहज
पता नहीं–
यह स्नेहमय स्पर्श
पूसी धूप की ऊष्मा का है
या फिर माँ का है ।

बन्द गली के आख़िरी छोर पर

ऊबड़-खाबड़ हो चुके हैं
हमारे सभी रास्ते रिश्ते
बढ़ गई है हमारे दिमाग़ों में
उन्माद की तरंगाकुलता
तथ्यों की तलाश में हम
विचारहीनता–
यानी मूढ़ता के शिकार हो चुके हैं
सर्जनात्मक विध्वंस की ओर
मुड़ गई है हमारी समय-यात्रा
हम जो रच रहे हैं
उससे उजागर हो रही है
सिर्फ़ अपने को बचाए रखने की विवेक शून्यता
तमाम संचार माध्यमों के बावजूद
ख़तरे में है,
हमारी विरासत, हमारा वजूद
संवाद की भूमिका में
निरर्थक हो गई है सम्प्रेषणीयता
हम किसी बन्द गली के आख़िरी छोर पर
ध्वंस और हिंसा की समानान्तर लय के साथ
वापसी की गुहार लगा रहे हैं
और एक एहसान फ़रामोश दुनिया को
प्यार करने की घोषणा कर रहे हैं
पता नहीं–
हम किन भरोसेमन्द शब्दों की निगरानी में
ख़ुद पर या दुनिया पर
भरोसा कर रहे हैं ।

गीत-नवगीत

पावस गीत - 1 (लोक पक्ष)

आज गगन पर घन उमड़े री !

पावस की रानी मतवाली
आई लेकर मधु की प्याली
छटा निराली, घटा निराली
दूर पिया इस ऋतु में आली !
सचमुच साजन निठुर बड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

इन्द्रधनुष का हार सजाकर
हाँ, सोलह शृंगार रचाकर
आई मेघ-वधू इठलाकर
रुनुक-झुनुक मंजीर बजाकर
विद्युत-टीका भाल जड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

उनये नये-नये घन काले
रीते भूरे-भरे निराले
दिग-दिगन्त में डेरा डाले
बहक रहे हैं क्यों मतवाले
रिमझिम-रिमझिम बूँद पड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

पवन-पंख पर उड़कर आई
मेरी बैरिन बनकर आई
आई तो आई हरजाई
दूजे संग लिए पुरवाई
फरफर आँचर मोर उड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

पावस गीत - 2 (लोकोत्तर पक्ष)

आज गगन पर घन उमड़े री!

प्रेमसुधा की भरी गगरिया
आई लेकर मस्त बदरिया
छेंक रहे हैं व्यर्थ डगरिया
मेरे बालम देख गुजरिया
नभ-पनघट पर मौन खड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री!

मैंने कितनी बार पुकारा
तनिक न मेरी ओर निहारा
मेरा साजन जग से न्यारा
किसने उसको जादू मारा
किस 'कुब्जा' से नैन लड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

घनबाला मुस्काती आई
किन्तु न प्रिय की पाती लाई
वह क्या जाने पीर पराई
किससे जाकर करूँ दुहाई
लोक-लाज से पग जकड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

एक ओर है मन की पीड़ा
एक ओर यौवन की क्रीड़ा
इधर-उधर की धुन में व्रीड़ा
उठा न पाती जीवन-बीड़ा
असमंजस में घर उजड़े री
आज गगन पर घन उमड़े री ।

ग्राम-वधू

(1)

कितनी सुन्दर ग्राम वधू है
गागर भरने चली अकेली ।

रूप नया है, नाज़ नया है
चाल नई अन्दाज़ नया है
सहम-सहम कर उग भरती है
शायद तीरन्दाज़ नया है

क्या फबती है काली चूनर
ज्यों बदली में चाँद छिपा हो
गाल गुलाबी आँखें नीली
यौवन का उन्माद नया है

रुनझुन रुनझुन पग नूपुर
जब बजता स्वर भर मधुर-मधुर
तब चौंक चकित तिरछे-तिरछे
देखती ठिठक आगे-पीछे

शायद हँसने की आहट कुछ
आ गई सलोने सुघर-पिया की
झटपट घूँघट काढ़ चली
जैसे लौ उठती सिहर दिया की

चली कुआँ पर भीड़ लगी है
जुटी गाँव की सभी सखी हैं
बारी-बारी से भर गागर
गईं सभी अपने-अपने घर
फिर सिर पर अपना मटका रख
चली रूप की परी नवेली
गागर भरने चली अकेली
कितनी सुन्दर ग्राम वधू है ।

(2)

पनघट से पानी भर लाई
चली रसोई में अलबेली
आग जलाई, आटा गूँधा
साग बनाया, दाल पकाई
रोटी सेंकी आग बुझाई
मुन्ना रोया झटपट आई

ननद खा चुकी सास खा चुकी
अब प्रियतम की बाट जोहती
खेतों से जब आए प्रियतम
भोजन परसा थाल बढ़ाई

सब से पीछे वह खा पीकर
फिर मुन्ना को दूध पिलाकर
हाँ, झूले पर उसे झुलाकर
चौका करके बर्तन धोकर

अँगिया सीने लगी सुन्दरी
छोटी ननद बुलाने आई
चलो, चलें चक्की पीसें
भाभी का दिल बहलाने आई

चक्की लगीं पीसने दोनों
गीत लगीं फिर गाने दोनों
गेहूँ पीसा तीन सेर तक
धान कूटती रहीं देर तक

फिर हँसी, खुशी से बैठाया
जब आई उसकी नई सहेली
गागर भरने चली अकेली
कितनी सुन्दर ग्राम वधू है ।

(3)

काम-काज कर चुकी सलोनी
वह फिर मुन्ना के सँग खेली
दूध पिलाया बाल सँवारा
फिर झूले पर उसे सुलाकर

खेत देखने चली अकेली
अपने प्रिय की आँख बचाकर
घर के पीछे खेत कई हैं
मकई बोई ज्वार पका है

चली उड़ाने चिड़ियों को वह
मुख पर नूतन हास खिला है
ताली पीट उड़ाती पक्षी
जैसे चोर भगाए रक्षी

कुछ क्षण बैठी रही मेड़ पर
शोर मचाते बिहग पेड़ पर
घर की ओर चली जल्दी
मुस्काती कुछ गाती आती

वह सपनों के राजमहल की
मन ही मन रानी बन जाती

चोर न कोई काट सका है
डर है चुग जाएँगे नभचर
रखवाली करती है डटकर
दो दाना ही उसे चाहिए

नहीं चाहिए स्वर्ण हवेली
गागर भरने चली अकेली
कितनी सुन्दर ग्राम वधू है ।

(4)

मुन्ने को आकर चूम लिया
ममता की मदिरा ख़ूब उड़ेली
सूरज डूबा शाम हो गई
दिया जलाकर शीश नवाया

धीरे-धीरे पूनम का शशि
प्राची प्रांगण में मुसकाया
ख़ूब सजी है नयी वधू-सी
हँसती आई रजनी-रानी
बूटेदार पहनकर चूनर
तारों की है– खूब सुहानी
सब खाए, बन गई रसोई
पीछे खा-पीकर वह सोई

हुआ सवेरा शाम हो गई
यों ही उम्र तमाम हो गई
युग से नूतन प्यार उमड़कर
बहता आया है घर-घर में
लाज भरी मुस्कानों ने कब
टीस न भर दी किस अन्तर में ।

कवि ने अपनी क़लम तोड़ दी
भागा-रोया
आँख फोड़ ली
लिखा न कैसा रूप वधू का
चुप रह गया कहा केवल यह
नारी एक अजीब पहेली
गागर भरने चली अकेली
कितनी सुन्दर ग्राम वधू है ।

कृषक-बाला

(1)

जा रही है कृषक-बाला
रूप की चिनगारियों से
अधखिला यौवन सजाकर

केश काले, गुँथी वेणी
जान पड़ती मधुप-श्रेणी
लाल चूनर में कढ़े हैं
बेल-बूटे
फूल-पत्ते
वेश उसका देखकर हैं भौंकते
कुछ नए कुत्ते
सहम कर फिर ठिठक जाती
पुनः ढेले से भगाती–

बढ़ी आगे–
बाँसुरी की धुन कहीं से आ रही है

दो नए मासूम मुजरिम हैं अभी
वह मुस्कराई देखकर–
कंचुकी के क़ैदखाने में तुले हैं
जो बगावत की तुला पर
जा रही है कृषक-बाला ।

(2)

देखने आई अकेली
ज्वार के गुच्छे पके हैं
रह गया है खेत अब वह
और बाक़ी
कट चुके हैं

कुछ देर रहकर घर चली
सुलझा रही है
पर न सुलझी–
क्यों आज उसकी रूह काँपी तान सुनकर बाँसुरी की

ज़िन्दगी है–
एक मुश्किल-सी पहेली
किस अनागत की प्रतीक्षा में
कँपी कौमार्य की कच्ची हवेली
आ गया फिर
हवा का सुकुमार झोंका
उड़ा लेकिन झट सँभाला
फिर न आँचल तनिक खिसका
रुक गई है कुछ लजाकर
जा रही है कृषक-बाला
रूप की चिनगारियों से
अधखिला यौवन सजाकर ।

ज़िन्दगी की एक तस्वीर

एक रोटी...एक रोटी
भूख का मारा हुआ
इन्सान है शायद मरा !

ज़िन्दगी की हार देखो
पेट का संसार देखो
मिल गया तो खा लिया
या बिना खाए कहीं सोया
कहीं पाया कहीं खोया
कहीं गाया, कहीं रोया

दानवीरों के महल के पास ही
यह मौत का साथी
हमेशा हाथ फैलाए रहा
एक दाने के लिए
मोहताज, मुँह बाए रहा
क्या ज़रूरत है कि महफ़िल छोड़कर वे
लाल परियों की उठें
क्या ज़रूरत है कि वे मरहम लगाने के लिए
इस दिलजले के घाव पर–
नरम तकियों, मसनदों की छोड़कर
माया उठें

मस्त हैं वे सोचकर यह
मर रहा है कहीं कोई
जी रहा है कहीं कोई
देश चाहे भाड़ में चाहे जहन्नुम में भले ही जाय
पर कमी खाने की कहाँ
है फ़िक्र उनको धन कमाने की कहाँ

बाप-दादों की कमाई से भरा है कोष उनका
किन्तु भूखों के लिए
कब एक कौड़ी मिल सकी–
बेकसी की, बेबसी की
कब ग़रीबों की कराहें काँपती-सी अरे
सुनकर कान की नस हिल सकी

भगवान मन्दिर में कहाँ
रहमान मस्जिद में कहाँ
वह छोड़कर वैभव पराक्रम
ख़ाक दर-दर छानता था
माँगता था भीख केवल
पेट की ज्वाला बुझाने के लिए
किन्तु कोई दे सका क्या
एक दाना
और क्या इस दीनता
के देवता को
घूँट दो पानी पिलाकर
बचा पाया–

नहीं कोई–
बन गया वह मौत का बेढब निशाना
चीथड़ों की पर्त में लिपटा हुआ
यह लक्ष्मी से रूठकर
तन जलाकर मन जलाकर
क्षीर-सागर को सुखाकर

लूटवीरों के महल्ले में घिनौना-सा पड़ा
भगवान है शायद मरा
इन्सान है शायद मरा
एक रोटी...एक रोटी
भूख का मारा हुआ ।

मैंने तुमको प्यार किया है

तुम आओगे–
आज किरण ने सारा पंथ बुहार दिया है
धूप ज़रा-सी आहट पाकर
दरवाज़े से खिसक गई है
चन्दन-वन की हवा कुँआरी
भर आँगन कुछ छिड़क गई है
मौसम ने अपनी आँखों से–
ख़ुद को आज निहार लिया है

सुबह-शाम के बीच तुम्हारा
एक सुनहरा नाम दिखा है
आज ओठ पर कहीं नहीं
अभियोग प्यार के नाम लिखा है
मन ने शील-स्वभाव व्यथा का
थोड़ा-बहुत सुधार लिया है
सारा पंथ बुहार दिया है ।

एक बहुत मनचाहा सपना
आँखों में तिर-तिर जाता है
मुजरिम-सा जीवन का हर क्षण
यादों से घिर-घिर जाता है
बरबस ओठों पर टिक जाता
मैंने तुमको प्यार किया है
सारा पंथ बुहार दिया है ।

वन-वन भटके घायल हिरना

किसने मारा तीर
वन-वन भटके घायल हिरना

प्यार कहीं कस्तूरी जैसा
आस-पास ही गमक रहा है
गन्ध गीत का गाँव ढूँढ़ती
जहाँ-तहाँ मन ठमक रहा है
प्यासा प्राण अधीर
वन-वन भटके घायल हिरना ।

पग-पग धरती नपी-तुली है
पोर-पोर आकाश बँधा है
अधरों की याचना अभागिन
प्यास मरी विश्वास बिंधा है
घात-घाव गम्भीर
वन-वन भटके घायल हिरना ।

कण-कण, किरण-किरण कुंठित है
जीवन का दरपन धुँधलाया
तन की घाटी रही असींची
सारा नन्दन-वन कुम्हलाया
आँख उलीचे नीर,
वन-वन भटके घायल हिरना ।

अपनी परछाईं से

चाँदनी रात में
तुम बग़ल से प्रिये!
अब क़दम से क़दम तो सटाकर चलो मत ।

युगों से तुम्हें जानता हूँ कि
तुम साथ मेरे रही हो रहोगी सदा
किन्तु जाने न क्यों
आज बरबस उठी है हृदय चीरकर एक पुरग़म सदा[1]
हर नगर हर गली हर डगर में हमेशा
कभी साथ मेरा न तुम छोड़ती हो
कुचलकर सभी राह की मुश्किलें
तुम न मुँह मोड़ती हो

---

1. आवाज़

न दिल तोड़ती हो
यही ऐब है–
सिर्फ़ तुम मूक-सी
साथ मेरे प्रिये रात-दिन डोलती हो
इसी से तुम्हें चाहता हूँ बहुत कम
न कुछ बोलती हो, न मुँह खोलती हो
मगर चाँद जब
आसमां पर हँसे–
तब अधिक दर्द दिल में जुटाकर चलो मत
क़दम से क़दम तुम सटाकर चलो मत ।

प्यार में आदमी सिर्फ़ यह चाहता है
कि साथी उसे एक वह चाहिए
कि जिसको हृदय खोलकर वह दिखा दे
छिपाए न कुछ मीत वह चाहिए
कहूँ बात दिल की
न समझोगी कुछ भी
प्रिये! तुम स्वयं को न पहचानती हो
सभी ख़्वाहिशें मर चुकी हैं तड़प कर
तुम्हारी क़सम तुम नहीं जानती हो

मिली हो तुम्हीं हमसफ़र एक मुझको
मगर मंत्र वह फूँक सकती नहीं हो
कि अरमान जिससे उठे खिलखिला
मौत को ज़िन्दगी बख़्श सकती नहीं हो
भाग्य से ही बचे
दर्द के कुछ मधुर क्षण
प्रिये, तुम उन्हें भी लुटाकर चलो मत
क़दम से क़दम
तुम सटाकर चलो मत ।

लाशों की तिजारत

(1)
तुम आज फूल की बस्ती में अंगार न बेचो दीवानो!
मत करो तिजारत लाशों की
युग का बाज़ार अमन का है !

अभी भोर की दुलहन किरणों के रथ पर चढ़कर आई है
सजकर नई बहार प्यार की अभी बाग़ के घर आई है
अभी दूध के दाँत न टूटे अभी सृजन की हँसी न बिखरी-
अभी न घासों के माथे की शबनम-सी बिन्दी ही निखरी

मत ख़ून ख़रीदों फूलों का
लोहू का मोल न आँको तुम

फूलों का महल जलाओ मत–
चूड़ियाँ न कलियों की फोड़ो
मत करो तिजारत लाशों की.......

(2)

दूकान न खोलो लाशों की तस्वीर घृणा की मत बेचो
हैवानी अक़्लों के हाथों जागीर प्यार की मत बेचो
अपनों का मत ख़ून पियो अपने दिमाग़ की नसें चबाकर
और तमाशा मत देखो तुम, अपना ही घर-बार जलाकर

हाँ बड़ा नशीला होता है
सुनते हैं, ख़ून ग़रीबों का
धरती से नभ तक लौ उठती
जब आग ख़ून में लगती है
मत करो तिजारत लाशों की......

(3)

तुम रोज़ धरा के आँगन में, फैलाते जाते चिनगारी
रोज़ नई फ़स्लों के मुँह पर मार रहे विष की पिचकारी
धरती के बेटे लानत है, तुम पर तेरी करतूतों पर
धरती को बड़ा भरोसा है, अब भी इन नए सपूतों पर
है पनपी जिनकी अक़्ल अभी
जो अभी हवा के घर में हैं

पूरब की नई छटा देखो
पश्चिम की नई घटा देखो–
घर-घर अमन चैन तुम बाँटो
अब करो तिजारत साँसों की
मत करो तिजारत लाशों की
युग का बाज़ार अमन का है ।

आँधियों के बीच तिनका

(1)

एक दिन एक तिनका तुनक कर उड़ा
गिर पड़ा फिर वहाँ
था खड़ा–
आँधियों का जहाँ कारवाँ ।

खिलखिलाई उसे देखकर आँधियाँ
फूल के कान की सब नसें हिल गईं
देखता ही रहा आँधियों का बदन
आँख से आँख की डोरियाँ मिल गईं

रेत की साँस चलने लगी ज़ोर से
धूल के पाँव भी डगमगाने लगे
बाग़ की दास्तां ख़त्म-सी हो गई
सब परिन्दे उड़े, पर फुलाने लगे

एक कण ने कहा दोस्त आए कहाँ
भूलकर आँधियों की क़ैद में यहाँ
किन्तु तिनका उठा-जोर से हँस पड़ा
क्या बताऊँ कि मैं हूँ कहाँ का कहाँ
तुम जहाँ, मैं वहाँ
गिर पड़ा फिर वहाँ
था खड़ा......

(2)

आँधियों ने उसे घेर कर फिर कहा
छोड़कर तुम अमन और आबादियाँ
आ गए क्या यहाँ देखने भूलकर
ध्वंस के राज की क्रुद्ध बरबादियाँ

उड़ा दें कहो तो अभी धज्जियाँ
या मिटा दें कहो तो अभी बस्तियाँ
हिला दें कलेजा चमन का कहो तो
उलट दें कहो तो अभी किश्तियाँ

सोख लें–
शंखध्वनि या अज़ानें अभी
हाँ, चला दें
अगर हम ज़ुबानें अभी
जोश में हो गया मौन तिनका खड़ा
देखता हूँ यहाँ–
हार होगी कहाँ ?
सत्य होगा जहाँ!
गिर पड़ा फिर वहाँ
था खड़ा.....

(3)

चढ़ गईं त्योरियाँ आँधियों की तुरत
जंगली ख़्वाहिशें, बुदबुदाने लगीं
फिर हवाई क़िले की सभी रानियाँ
नाश का गीत भी गुनगुनाने लगीं

ईंगुरी बिन्दियों को कहो तो उड़ा दें
कहो तो पिन्हा दें नई पायलें

जानती हैं, हवा की सभी बेटियाँ
हाँ, सृजन-नाश की सब नई मंज़िलें

धड़कता रहा खौफ़ से दिल गगन का
न बोला न डोला
रहा मौन तिनका—

खीझकर नाश की बात पर ही अड़ा
शान्ति की रोटियाँ
चाहता है मगर सर्वहारा जहाँ
गिर पड़ा फिर वहाँ
था खड़ा.....

रुको, आँधियो! बाँधने मैं चला हूँ
समय की नई शृंखला में तुम्हें
प्रेम के मन्दिरों में कहो ले चलूँ
या अमन के नए कर्बला में तुम्हें

है सृजन से मुहब्बत अगर कुछ तुम्हें
तो हृदय की नरम उँगलियों से छुओ
यह कफ़न से ढँकी लाश हँसकर उठे
मौत की साँस पीकर जिलाओ, जिओ

चुप हुई आँधियाँ फूल गाने लगे
फिर हवा के नए स्वर बुलाने लगे
मुस्कराता रहा मौन तिनका खड़ा
हँस पड़ा बाग़बां
था जहाँ से उड़ा
गिर पड़ा फिर वहाँ
एक दिन एक तिनका तुनककर उड़ा
था खड़ा आँधियों का जहाँ कारवाँ ।

नफ़रत का पोथा

(1)

मत सींचो नफ़रत का पोधा
इसकी जड़ें
सूख जाने दो ।

सींचो चमन प्यार का अपना
सींचो जन-जीवन की धरती

ऐसी बहे प्रेम की धारा–
हरी-भरी हो जाए जिससे
पथरीले भावों की धरती

फूलों की नई दुलहिनों का
तुम मत लूटो शृंगार सुहाना
गाली देगा
बुरा कहेगा
आने वाला नया ज़माना

भू की नवपरिणीता बेटी
अभी सृजन के बेटे को भर आँख निहार नहीं पाई
रुको अभी मत करो ध्वंस से
जीवन और मरण का सौदा
मत सींचो नफ़रत का पौधा
इसकी जड़ें सूख जाने दो ।

(2)

दूरबीन से तुम मत देखो
आसमान के स्वर की धारा
लेखा-जोखा करो न साथी
आँख-मूँदकर, कान बन्द कर
ऊपर नीचे करके पारा
मिट्टी का सुहाग मत छीनो
वह है नई सुबह की थाती
दानव नहीं
देव बनकर तुम चीरो अन्धकार की छाती

शैतान बन्दरों के सपूत
तुम रौंदो मिट्टी के सपने
मिट्टी भी बदला ले लेगी ।

जिसने मिट्टी को रौंदा है
मिट्टी ने उसे ख़ूब है रौंदा
मत सींचो नफ़रत का पौधा
इसकी जड़ें
सूख जाने दो !

(3)

दूध भरे आँचल का वैभव
और कंगनों की आशाएँ
ज़हर न छिड़को सूख न जाएँ–
नई-नई फ़स्लें मुरझाएँ
ऐसी कोई बात न सोचो
समझो ज़रा गौर से पढ़कर
मौन आँगनों की भाषाएँ

खेती करो अमन की साथी
खाओ अमन चैन के दाने
नई पीढ़ियों की दौलत को
नई पौध भी जाने-माने
नई रोशनी बुला रही है
नव रचना के परिचित स्वर में
मेल-जोल की भाषा रचकर
नए-नए स्वर सँवर रहे हैं

झाँक रहा है नया आदमी
बिगड़े नहीं नवीन घरौंदा
मत सींचो नफ़रत का पौधा
इसकी जड़ें सूख जाने दो ।

शान्ति की कबूतरी

(1)

उड़ रही है शान्ति की कबूतरी डरी-डरी
उजड़ न जाय माँग प्यार से कहीं भरी-भरी

सिंदूर की लकीर को चिता न छीन ले कहीं
सिंगार के नए कुसुम मरण न बीन ले कहीं
कहीं नवीन ज्योति को
निगल न जाय यामिनी
सितार का लुटे न स्वर कहीं लुटे न रागिनी
मिटे न आश फूल की
बढ़े न प्यास धूल की

अभी जवान है चमन, जवान फूल-पाँखुरी
उड़ रही है.......

(2)

बुन रहे हैं जाल नाश का बहेलिए सभी
बिछा न दें उसे कहीं सुबह हुई अभी-अभी
मगर सुलग रहीं कहीं हसीन सब्ज़ झाड़ियाँ
धुआँ उगल रहीं–
सफ़ेद बर्फ़ की पहाड़ियाँ

उड़ी कबूतरी तलाश में नए पहाड़ की
जहाँ न गोश्तख़ोर हों–
जहाँ न खोज हाड़ की
वहीं विराम हो, जहाँ कि घाटियाँ हरी-हरी
उड़ रही है शान्तिकी कबूतरी डरी-डरी ।

मेहँदी लेपी हथेलियों के सपने

आँसू के टटके फूलों से
सुधि का किया सिंगार
कि मेरा राही लौटेगा

बिथुरी साधों को सहेजती उखड़ी-उखड़ी साँस री
लय-तालों से वंचित जैसे
चरवाहे की बाँसुरी
भर-भर आँचल अनुगूँजों का
जी भर किया दुलार
कि मेरा राही लौटेगा

बेमौसम चूड़ियाँ चिटकतीं चढ़ी धूप के रंग-सी
फीकी हुई चुनरिया धानी, उमगी हुई तरंग-सी
क्षण-क्षण के ताने-बाने पर
सपने बुने हज़ार
कि मेरा राही लौटेगा

मेहँदी लेपी हथेलियों के सपने उड़ते रात भर
सुबह सिमट कर टिक जाते हैं
हरी दूब के पात पर
आँख-आँख भर आँसू बोए
अँजुरी-अँजुरी प्यार
कि मेरा राही लौटेगा ।

मुझे बहुत अच्छा लगता है

माथे जड़ी सुनहरी बिंदिया और पगों का लाल महावर
मुझे बहुत अच्छा लगता है

किसके लिए रोज़ करती हो यह मोहक शृंगार
किसको देने तुम आती हो यौवन का उपहार
किसके जीवन में उड़ेलने आती हो मधु प्यार
किसे फूल देने आती हो और किसे अंगार

आती हो फ़ाल्सई रंग की चूनर में जब रूप सजाकर
मुझे बहुत अच्छा लगता है

रोज़ सुनहली सुबह दिवा की ननद सजाती-वेश
सात रंग की आभा-कंघी से सुलझाती केश
और चली जाती है सुलझाकर गीतों के देश
पात-पात पर लिखकर स्वर का किरण रँगा संदेश

वेणी तेरी चूम-चूम कर चल देता जब रोज़ दिवाकर
मुझे बहुत अच्छा लगता है

गुँथे प्रभा के फूल तुम्हारे जूड़े में ख़ुशरंग
सिर से पैरों तक उड़ता है मधुर फ़ाख्ताई रंग
उठीं तरंगें रंग-बिरंगी, तिरती नई उमंग
धरती का धीरज गदराया फड़के नभ के अंग

धीरे से मुसका देती हो जब घूँघट की ओट लजाकर
मुझे बहुत अच्छा लगता है ।

ऐसी कोई किरण छुओ तुम

पीड़ा जहाँ प्यार बन जाए
ऐसी कोई
किरण छुओ तुम ।

जीवन के निस्पृह आमुख को
अंगुल-अंगुल निगल गया तम
अंकुर-अंकुर की आकुलता पी-पी कर गदराई शवनम
प्यार कहीं गहरे पैठा है
यौवन पहले पर बैठा है
छलना जहाँ प्यार बन जाए
ऐसी कोई
शरण छुओ तुम ।

प्यार नहीं पर्याय पंथ के
परिचय के मधु विश्वासों का
प्यार प्राण की सहज भूमिका मिलन अनागन्धित साँसों का
प्यार जहाँ प्रतिदान नहीं है
ध्यान प्रधान, विधान नहीं है
पूजा जहाँ प्यार बन जाए
ऐसा कोई
चरण छुओ तुम ।

प्यार न दूरी का अनुगामी
प्यार नहीं बन्दी पल-छिन का
प्यार रूप-रस का सौरभ है, शुद्ध सार माटी-कंचन का
प्यार जहाँ परिवेश नहीं है
वर्ण न कोई वेश नहीं है
मिट्टी जहाँ प्यार बन जाए
ऐसा कोई
मरण छुओ तुम ।

पाँव के छाले कहीं फूटे नहीं

लाँघते ही गए सारे
ग्रह-ग्रहान्तर
पाँव के छाले कहीं फूटे नहीं

तैरता है,
पुतलियों में मृत्युकामी नील अम्बर
साँस की निर्लक्ष्य यात्रा
स्वप्न के अधिसंख्य विषधर
पार कितने कर चुके हैं
वन-वनान्तर
गीत के साथी कहीं छूटे नहीं

हर दिशा के
चिर ऋणी हैं पंखधारी याद के पर
प्यार की निर्धूम ज्वाला
उड़े पी-पीकर निरन्तर
मुट्ठियाँ में बाँधकर
युग का बवण्डर
चेतना के स्वर कहीं टूटे नहीं
पाँव के छाले कहीं फूटे नहीं ।

सोनाली-सोनाली अगहन की धूप

यादों के पहिचाने क्षण तेरे जैसे
सोनाली-सोनाली
अगहन की धूप

ऋतुवन्ती धरती-सी धारणा सहेजे कुछ
गन्ध डोर से बंधे मधुर संदेश भेजे कुछ
पुरइन के पात-पात
लिखी सिर्फ़ एक बात
सपनों के अनजाने स्वर उभरे जैसे
नये-नये अँखुओं के
बचपन का रूप

कुहरे के माथे पर किरणों के पाँव टिके
गीत कहीं गहरे संवेदन के गाँव बिके
खेत-खेत रंग-राग
फ़स्लों की भरी माँग
साधों के सिरहाने मन निखरे जैसे
माटी की नव श्यामा
दुलहन अपरूप
यादों के पहिचाने क्षण तेरे जैसे
सोनाली-सोनाली
अगहन की धूप ।

शर-सन्धान कहीं चूका है

लगता ऐसा टूट गई है, विश्वासों की नव प्रत्यंचा
शर-सन्धान कहीं चूका है
लक्ष्य दृष्टि के पास नहीं है ।

उड़ा चेतना का पंछी युग का सारा जीवन कुरेद कर
वापस लौटा तीर दिगन्तों की सारी ऐंठन समेटकर
रेशम जैसे सपनों की हर किरण-कथा की कड़ियाँ टूटीं
उलझ गया है स्वर का धागा
गीतों का बन्धन सहेज कर
आहत प्राण तृषित साधों की
सुधि के गाँव न छेड़ो चर्चा
कुछ व्यवधान कहीं बैठा है
सम्मुख पानी प्यास नहीं है
लक्ष्य दृष्टि के पास नहीं है ।

पथ की निष्प्रदीप दूरी ने सारा रक्त निचोड़ लिया है
घाट-घाट, घाटी-घाटी के सम्बल ने मुँह मोड़ लिया है
चन्दन-वन की हवा किसी की चिता-व्यथा छू कर आती है

भूले बिसरे आधारों ने
मन का पंख मरोड़ दिया है
निथर गया सौरभ का अन्तस्
पँखुरी उड़ा ले गई झंझा
ज्ञान-ध्यान सब ने सूँघा है
बासी सुमन सुवास नहीं है
लक्ष्य दृष्टि के पास नहीं है ।

प्यार अँधेरे की पाती है, और उजाले की गीता है
पंथ प्यार का उज्ज्वल माना, मंज़िल पथ की परिणीता है
लेकिन किसी धूपछाँही कुण्ठा की छाया अर्थहीन है
पंथी को आभास न मिलता
कहाँ-कहाँ हारा-जीता है

निगल रहा है धुआँ रूप का
प्रणयलोक का चप्पा-चप्पा
तन का संविधान धोखा है
मानस-मृग मृत साँस नहीं है
लक्ष्य दृष्टि के पास नहीं है ।

शिरा-शिरा निस्पन्द भोर की कंठ साँझ का रुँधा-रुँधा-सा
आस-पास के खुले आयतन पर लेटा है घना कुहाए
काल-विहंगम गुम-सुम बैठा
है उदास हर वातायन पर
चीख़ रहा है बार-बार अस्तित्व अकेला बँधा-बिंधा-सा
फाड़ रहा है आँख मूँदकर
क्षितिज साँस का नीला पर्चा
आसमान शायद रूठा है
धरती को विश्वास नहीं है
लक्ष्य दृष्टि के पास नहीं है ।

अँजुरी भर आकाश

बस इतनी सी साध कि
मैं दूँ
अँजुरी भर आकाश तुम्हें ।

लाख जतन से रख पाया हूँ
इतना-सा मधुमय रीतापन
जहाँ न सपनों का तनाव है, जहाँ न टीसों का तीखापन
धूप जहाँ पुखराजी स्वर की
चुप-चुप तन से मन तक सरकी
बस इतनी-सी साध कि
मैं दूँ–
कुछ आहत अवकाश तुम्हें ।

लाल कनेरी हँसी तुम्हारी
भर न सकी उभरा सूनापन
टूट-टूट कर दूरी सिमटी अखरा पीड़ा का बौनापन
जागा गीतों का बंजारा
रत्ती भर बाक़ी अँधियारा
बस इतनी-सी साध कि
मैं दूँ
मधुर महीन प्रकाश तुम्हें
अँजुरी भर आकाश तुम्हें ।

गीत पथराने लगे हैं

रोशनी के पाँव काँपे
प्यार पथ की छाँव नापे
इत्रगन्धी याद ठिठुरी, गीत पथराने लगे हैं ।

धूप के आवेश का हर तन्तु तम का मुखापेक्षी
टूटते परिवेश की संचेतना बीमार-सी है
रूप की हर पंखुड़ी पर युगक्षयी उन्माद उभरा
चेतना आकाशचुम्बी ढह रही मीनार-सी है
अजगरी आयाम सरके
मोल सिमटे घाट-घर के
बुलबुलें हो गईं बहरी, फूल घबराने लगे हैं
गीत पथराने लगे हैं ।

हर अँजोरी प्रार्थना का एक भी अक्षर न छन्दित
संविधाएँ नाश के विश्वास को स्वीकारती हैं
नीलमी सपने किसी के रोज़ गुमसुम लौट आते
कुनमुनाती ड्योढ़ियाँ हर साँस को दुत्कारती हैं
मृगदृगी आकुल प्रतीक्षा
फिर रही देती परीक्षा
लगन की यात्रा अधूरी, नयन बदराने लगे हैं
गीत पथराने लगे हैं ।

प्राण को दुलरा रही है कामना बारूदगन्धी
जाफ़रानी घाटियों में काल-कुहरा टिक गया है
फरफराते पंख की अनगिन कथाएँ चीख़ती हैं
वेदना के हाथ हर रेशा सुनहरा बिक गया है
मौत देती है चुनौती
अमन की सहमी कपोती
तय हुई दूरी न पूरी, बाज़ मँडराने लगे हैं
गीत पथराने लगे हैं ।

सिर्फ़ जीने का बहाना

तीनताशी चमत्कारों से समय का चिपक जाना
कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, सिर्फ़ जीने का बहाना

नये गुलबूटे किरण के काढ़ती-सी नई सुबहें
फ्रेम में मढ़ दी गई-सी शाम तक पसरी रहें
या किसी ज्वालामुखी सँग
उबल जाएँ कहीं टग बग

और कुछ की प्राप्ति में
भुनता हुआ अस्तित्व कातर
बेकफ़न उपलब्धियों-सी चेतना का उभर आना
कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, सिर्फ़ जीने का बहाना ।

प्रसव-पीड़ा-सी टभकती अर्थवत्ता धूपछाँही
कारख़ानों चिमनियों के प्यार की सच्ची गवाही
अनलिखी-सी है अभी तक
कुछ नहीं से कुछ नहीं तक
किसी ग्रह-पथ पर पिए
बारूद युग भी धुत्त है
आज की तो बात ही क्या, कुछ नहीं कल का ठिकाना
कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, सिर्फ़ जीने का बहाना ।

प्यार क्यों प्रस्तुत नहीं है

कल न सूरज दिखे
ऐसे किसी क्षण के लिए मेरा
प्यार क्यों प्रस्तुत नहीं है ।

प्यार की ख़ातिर कहीं भी सिर्फ़ जीना और जीना
श्रेय से जुड़ता नहीं है, प्रेय का ऋण-सा अखरना
व्यर्थ है सारा उलहना
मर गई होगी कहीं कोई प्रतीक्षा प्रणयलीना
सर हथेली पर रखे
कल न सूरज दिखे
ऐसे किसी क्षण के लिए मेरा
प्यार क्यों प्रस्तुत नहीं है ।

धँस गई-सी मौन धरती का उभर आना मुबारक
कहीं भी तो निखरता आकाश-सा टूटा हुआ मन
स्वरप्रतिम निर्बन्ध जीवन
किरण के सँग साँस उड़कर फिर न लौटे देहरी तक
युग पराजित-सा पलातक
क्या उकेरे क्या लिखे
कल न सूरज दिखे
ऐसे किसी क्षण के लिए मेरा
प्यार क्यों प्रस्तुत नहीं है ।

दूर-दूर तुम

दूर दूर तुम
निथर गया है प्रत्याशी मन मौन अकिंचन
कहाँ सहेजे इतनी ऐंठन, जोड़े कैसे टूटन-टूटन ।

रात-रात का नन्हा सपना कल की नियति नहीं बन पाया
जीवन की चिकनी सतहों पर
भोर-भोर क्या-क्या उग आया
दृष्टि नहीं टिक पाती क्षण भर ग्रस लेता है बेगानापन
फीकी-फीकी हँसी उभर कर
पी जाती स्वर का ताज़ापन
ओठ लगा हर गीत प्यार का
लगता है क्यों बासी जूठन
जोड़े कैसे टूटन-टूटन ।

ख़ुद को नोच-खसोट रहा है आस-पास से सन्दर्भित क्षण
अर्थहीन परिवेश रूप का
कहीं न प्रच्छद और आवरण
सिर्फ़ दिखावा और छलावा निचुड़े अर्थों का आलिम्पन
बन्दी समय कहाँ तक ढोए
इतना सारा 'गाजन-बाजन'
मुझ तक आकर ठिठक गया है
अभिशंकित-सा वन्दन-पूजन
जोड़े कैसे टूटन-टूटन ।

हे जननी, हे जन्मभूमि

हे जननी, हे जन्मभूमि ! तुम अन्धकार के पाँव पड़ो मत
अनगिन बूँद रक्त की देंगे
चाहे जितने दीप जलाओ

मन्दिर के कोने-कोने में सजग खड़ी हैं रक्तऋचाएँ
ड्योढ़ी-ड्योढ़ी खींच चुके हैं, रक्त चन्दनी स्वर रेखाएँ
रेंग रहा है धीरे-धीरे, ज्वालामुखी छुए तो कोई
तनी तनी तेरे माथे की
हिमस्नाता श्वेताभ शिराएँ
दूध-रक्त की शपथ तुम्हारे
खाकर हमने शीश उतारे

अनगिन शीश कुसुम धर देंगे, चाहे जितने अर्घ्य चढ़ाओ
चाहे जितने दीप चलाओ ।
किरण-किरण आँगन-आँगन की निगले काली कुटिल लकीरें
हम प्रकाश के प्रथम प्रचेता आओ अन्धकार को चीरें
हम तो बिना बहाए लोहू
बात न लोहे की सुनते हैं
घर-घर चलो बाँट दें फिर हम अमन-अहिंसा की जागीरें
लाखों रक्त कमल लो आओ
कैसी चिन्ता हाथ बढ़ाओ
अनगिन प्राण-दीप धर देंगे, चाहे जितने थाल सजाओ ।

शंखनाद गूँजा गीतों का बजते हैं छन्दों के मादल
घिरे सर्वप्लावी हिंसा के रक्तमुखी विध्वंसी बादल
बलिदानों के महापर्व पर, दिग्व्यापी पूजा की प्रस्तुति
लो आरती उतार रहे हैं—
कोटि-कोटि बलिदानी आँचल

लाखों रक्त बीज लो स्वाहा
तम का हर प्रतीक लो स्वाहा
अनगिन नीलकंठ जन्मे हैं, चाहे जितना गरल पिलाओ
चाहे जितने दीप जलाओ ।

चलो जवान जंग पर
(भारत-चीन युद्ध 1962)

चलो जवान जंग पर
हिमाद्रि तुंग श्रृंग पर, विजय-निशान गाड़ दो
नृसिंह लक्ष्य हो कि शत्रु-वक्ष चीर-फाड़ दो

लहू-रँगे सँदेश हो, स्वदेश के प्रतीक तुम
पराक्रमी प्रवाह हो, परम्परा की लीक तुम

मातृभूमि के सपूत
दीप्तिवन्त शौर्य हो
शहीद-पंक्तियों में जन्मकाल से शरीक तुम
प्रमाद आसुरी बढ़ा विनाश बीच पंथ में
निदर्शनों को लाँघता न धर्म में न ग्रंथ में
बढ़ो विषाक्त डंक पर
मनुष्य के कलंक पर विजय-निशान गाड़ दो ।

कबूतरी डरी-डरी कुरेदती न कंकड़ी
भविष्य बाँचती उदास-सी फ़सल खड़ी-खड़ी
तुम्हें पुकारते सभी
पहाड़ खेत घाटियाँ
अधीर बुलबुलें हुईं, विरक्त पात-पंखुड़ी
बढ़ो कि ख़ून बो न दें पिशाच दिल-दिमाग़ में
उगल न दें ज़हर कहीं हसीन सब्ज़ बाग़ में

विरूप रक्तरंग पर
अलीक अन्ध ढंग पर विजय निशान गाड़ दो
नृसिंह लक्ष्य हो....

प्रबुद्ध दूध-दीप की अमर शिखा बढ़ो-बढ़ो
शपथ सहेज कर बढ़ो कि कुछ नया गढ़ो-गढ़ो
तुम्हें न पाँचजन्य
और पंचशील रोकते
चलो तुम्हें पुकारते, शिखर-शिखर चढ़ो-चढ़ो
बढ़ो कि जाफ़रान और धान के प्रदेश की
लुटे न लाज राम और कृष्ण के सुदेश की

समुद्र की तरंग पर
अमित्र की उमंग पर, विजय निशान गाड़ दो
नृसिंह लक्ष्य हो कि वक्ष चीर-फाड़ दो ।

घिर गई है रक्त शाम
(भारत-पाक युद्ध)

घिर गई है रक्त शाम
बढ़ चलो न लो विराम
देश के सपूत तेज़ तीर की तरह चलो
रक्त सोखते हुए समीर की तरह चलो ।

युद्ध प्रश्न पर जुड़ा मरण अकुंठ मुक्ति से
शत्रु-पक्ष टूटता अकूत शौर्य शक्ति से

मृत्यु व्यर्थ है हुई न जो स्वदेश के लिए
मृत्यु कामना बड़ी कहीं न देश-भक्ति से
कंठ-कंठ युद्ध गान
वज्र-घोष के समान
देश के सपूत तेज़ तीर की तरह चलो ।

विपक्ष की चुनौतियाँ बढ़ो सहर्ष झेल लो
चलो कि एक बार रक्त स्नात खेल खेल लो
लहू रँगी सुबह तुम्हें पुकारती सिवान से
चलो कि पर्त-पर्त अन्धकार की उकेल लो
काँप जाय आसमान
तुम बढ़ो लहूलुहान
देश के सपूत तेज़ तीर की तरह चलो ।

शपथ हज़ार बार गर्म रक्त के उफान की
लुटे न लाज घाटियों पहाड़ खेत खान की
बढ़ो कि बर्फ़ से ढँके हुए शिवत्व की शपथ
भटक न जाय भूल से सुगन्ध जाफ़रान की
तार-तार को उधेड़
अग्निबीन छेड़-छेड़
देश के सपूत तेज़ तीर की तरह चलो ।

वतन के वास्ते अमनपसन्द हमवतन बढ़ो
कि बाग़ से गुलाब के नए-नए सुमन बढ़ो
तीर-तोप टैंक बम सहेजते हुए निडर
शिवा-प्रताप के महान देश के रतन बढ़ो
निगल न जाय काल व्याल
लोकतंत्र का सवाल
देश के सपूत तेज़ तीर की तरह चलो
रक्त सोखते हुए समीर की तरह चलो ।

किसी फूल के नाम से

पिछली यादों का अभिनन्दन कर लूँ
प्यार-प्रणाम से
याद नहीं कब तुम्हें बुलाया
किसी फूल के नाम से ।

काम-काज की भाग-दौड़ में कोई नाम फिसल जाता है
कोई गन्ध पकड़ लूँ तब तक
पूरा साल निकल जाता है
मुझको तो लगता है शायद जहाँ न कोई गन्ध ठहरती
शुरू हुआ था सफ़र हमारा
ऐसे किसी मुक़ाम से
किसी फूल के नाम से ।

साँस-साँस में एक अनामा कोई गमक पसरती रहती
भीतर-भीतर गहरे-गहरे
कोई बात उतरती रहती
किसी विसर्जित देह फूल का कोई बिम्ब तैरता रहता
आँखों में उगने लगती है
एक उदासी शाम से
याद नहीं कब तुम्हें बुलाया किसी
फूल के नाम से ।

किरण-ऋचा
(छः माह की बेटी ऋचा के लिए)

कभी-कभी जब मन होता है, आसमान-सा ख़ाली
तब पढ़ता हूँ नन्ही बिटिया, के मुख की वर्णाली

वैसे तो जीवन का हर क्षण, बिना कहे कुछ बीत गया है
ख़ुशबू बाँट-बाँट कर सपना
हरसिंगार-सा रीत गया है
फिर भी समय बेचकर जीने की यंत्रणा नहीं कुछ कम है
किन्तु थके-हारे की ख़ातिर
छोटा-सा घर ही आश्रम है
जहाँ समय भागवत बाँचता
नन्हा-मुन्ना मृग कुलाँचता
दिन भर का श्रम हर लेती है, मूर्तिमती गीताली

सुख की परिभाषा केवल है, मन के अनुकूलन की छाया
उसके कुछ ही क्षण चिन्मय है
बाक़ी सब मृण्मय, माया
पिता अकिंचन जितना भी हो, लगता वह कितना समृद्ध है
जिसके आँगन खिली-खिली कोई मुस्कान अपाप विद्ध है
जहाँ प्यार निष्काम विधा है
वहाँ न द्वन्द्व और दुविधा है
सुबह-शाम स्वागत करती है, किरण-ऋचा सोनाली ।

तीर्थमयी

रक्त-मांस के भीतर भी कुछ होता है इतना पावन
तुम्हें छुआ तो लगा कि जैसे–
कर आया मैं तीरथ बावन ।

देह-छन्द में बँधी तुम्हारी रूप-ऋचा गंगा-जमुनी
ऋतुसंहार कहीं लिखती है
कहीं रेखती रंग फागुनी
जब-जब ऐसी बिम्बवती छवि की चितवन मैं पीता हूँ
तब-तब अपने भीतर का अनलिखा हरापन जीता हूँ
देह और देहान्तर तक
मैं ओढ़े हुए अनगिनत सावन
कर आया मैं तीरथ बावन ।

साँस तुम्हारी वाङ्मयी है, हँसी तुम्हारी मंत्रमयी
जीवन के भागवत क्षणों में लगती हो तुम तीर्थमयी
कनकचम्पई आँचल की पावनता में जब-जब डूबा
तब-तब कुंठा काशी दीखी
तव-तब प्यार प्रयाग लगा
माटी का तन मथुरा दीखा
मन की वृत्ति लगी वृन्दावन
तुम्हें छुआ तो
लगा कि जैसे
कर आया मैं तीरथ बावन ।

प्यार एक तीर्थ है

जीवन आलोक दीप्त यादों का लेखन है
फूल फूल हो जाना
प्यार का निवेदन है ।

अपने को पाने का प्यार एक छन्दन है
अपने ही ज्योतिर्मय प्रत्यय का वन्दन है
प्यार मुक्ति धारा का
अन्तिम मूर्द्धन्य विन्दु
सूंर्य बिम्ब जैसा सन्दीप्त मलय चन्दन है
प्यार स्वयंप्रभ प्रबोध
अनहद अद्वैत बोध
एक किरणदेही स्पन्दन की साक्षी में
प्राणों के सौरभ का
आकुल उद्वेलन है ।

आदिम संवेदन है पँखुरी का खुल जाना
प्यार एक तीर्थ है उजाले में धुल जाना
जीवन तो ग्रन्थिल है
एक जटिल संज्ञा है
प्यार एक नाम और काम, गाँठ सुलझाना
पावन परिकल्प प्यार
जिजीविषा का सिंगार
वस्तुमुखी जीवन के सूने मुक्तांगन में
माटी की महिमा का
चिन्मय सम्मेलन है ।

क्या क्या मैं हाल लिखूँ

(अंशु के लिए)

क्या-क्या
मैं हाल लिखूँ
कमल-खिला ताल लिखूँ
या गुज़रा दौर लिखूँ
या फिर कुछ और लिखूँ

आओ कुछ पास-पास
माथे पर लिख दूँ मैं पूरी कादम्बरी
आकाशी गंगा-सी लहरीली माँग पर
बैठो, तुम लिख दूँ मैं गंगा-गोदावरी
श्यामल या गौर लिखूँ
आमों के बौर लिखूँ
या फिर कुछ और लिखूँ

आओ कुछ और पास
पलकों पर लिख दूँ मैं धानों की मंजरी
हसिया-सा चाँद लिखूँ हँसी-सी गर्दन पर
ओठों पर लिख दूँ मैं कान्हा की बाँसुरी
क्या-क्या कुछ और लिखूँ
तेवर या तौर लिखूँ
या फिर कुछ और लिखूँ

आओ कुछ और पास
आँचल पर लिख दूँ मैं एक रंग तोतई
बैठो तुम लिख दूँ मैं मेहँदिया हथेली पर
गेहूँ की बाली-सी गीतों की सतसई
पीपल की छाँव लिखूँ
'होरी' का गाँव लिखूँ
या फिर कुछ और लिखूँ

आओ कुछ और पास
बिम्बवती कनखी पर वारूँ मैं लेखनी
लहर-लहर बलखाती-सी मृणाल-रेख पर
माटी की ख़ुशबू से लिख दूँ मन्दाकिनी
फूल या पराग लिखूँ
या कोई आग लिखूँ
या फिर कुछ और लिखूँ ।

हिंस्त्र साये तमस के

हिंस्त्र साये तमस के खड़े सामने
कुछ उजाला लिखो
आँगने-आँगने ।

खेत-खलिहान-सीवान सूने हुए
गाँव के घाव गहराए दूने हुए
धान के आँचलों में
किलकते हुए
दुधमुँहे अन्न-शिशुओं का
अपराध क्या
जिनको चुपके से आकर
अभी डस लिया
रक्तबीजों की दहलीज़ के नाग ने
कुछ उजाला लिखो आँगने-आँगने ।

घुग्घू थे वे सब जो घाघ हो गए
बकरी थे कल तक जो बाघ हो गए
ख़ून इन्साफ़ का रोज़ करते हुए
राहबर थे वही जो लुटेरे हुए हैं
पाकदामन फ़रिश्ते अँधेरे हुए हैं
अब कहाँ जाएँ हम रोशनी माँगने
कुछ उजाला लिखो
आँगने आँगने ।

प्यार की उपासना

जीवन का सुर-सिंगार
प्यार की उपासना
कण-कण में अनगाए दर्द को तलाशना,
अपने को पाना ही लक्ष्य–
महत् लक्ष्य है
देखा-अनदेखा सब
प्यार में प्रत्यक्ष है
यही सत्य केवल है
जीवन का
सम्बल है
शेष सब प्रपंच, व्यसन
और वस्तु-वासना
कण-कण में अनगाए दर्द को तलाशना
प्यार की उपासना ।

आग की गहरी नदी

प्यार कोई तट नहीं है, आग की गहरी नदी है
ज़िन्दगी उसको तैर कर,
पार जाने की कला है!

आदमी की बात तो क्या, सूर्य भी कितना अकिंचन
प्यार की ख़ातिर भरमता रोज़ जग भर किरण गिन-गिन
प्यार मन की भंगिमा है
आत्मा की चन्द्रिमा है
प्राण का तपना निरन्तर, रोशनी दर रोशनी है
ज़िन्दगी तो दोस्तो! अंगार खाने की कला है ।

प्यार मन की सुबह भी है, प्यार मन की शाम भी है
प्यार ख़ुशबू बाँटने का, एक प्यारा नाम भी है
जहाँ जो भी अस्मिता है
प्यार की तेजस्विता है
प्यार भीतर की तपन है, तानसेनी रागिनी है
ज़िन्दगी तो उम्र भर मल्हार गाने की कला है ।

प्राण की अन्तिम नियति है, व्यथा पी-पी कर दमकना
प्यार की शाश्वत प्रकृति है, फूल-सा खिलकर गमकना
प्यार रसवन्ती इड़ा है
पिंगला की यंत्रणा है,
प्यार मनु की कामना है, किरणवत कामायनी है
ज़िन्दगी खो कर उसे हर बार पाने की कला है ।

गीत

पात-पात पर–
लिख देता हूँ
पकती हुई फ़स्ल के नाम
याद की किशमिश जैसी शाम ।

क्षण-क्षण में उभरे अपनापन
कहीं न दीखे बेगानापन
टूट जायगा हर सूनापन
जिस दिन तन जाएगा चिन्तन

माथ-माथ पर
लिख देता हूँ–
ठहरी हुई अक़्ल के नाम
साँवली एक कपोती शाम

सागर तट से चन्दन वन तक
धरती की अनलिखी घुटन तक
फ़स्ली गीत वर्ष फागुन तक
नई सुबह के घर-आँगन तक

हाथ-हाथ पर
लिख देता हूँ–
उगती हुई नस्ल के नाम
प्यार की कोहेनूरी शाम ।

हरित स्वाक्षर

पेड़ है–
या चेतना का हरित स्वाक्षर ।

जड़ों से ऊपर तने तक
एक संस्कृति की कथा है
यह प्रकृति के
मर्म की गहरी व्यथा है
बाँचता रहता न जाने क्या लिखा-सा
अनलिखे स्पन्द हैं कुछ
जिन्हें गाता है निरन्तर

पेड़ है–
या चेतना का हरित स्वाक्षर ।

फूल-फल पत्ते टहनियाँ
प्यार के संकेत भाषिक
रच रहा यह
नित्य चुप चुप छन्द मात्रिक
खड़ा है निर्द्वन्द्व निश्चल पहरुए-सा
समय के संस्पर्श से
अस्तित्व का इतिहास लिखकर

पेड़ है–
या चेतना का हरित स्वाक्षर

कविता क्या दहेज में दोगे

मुन्ने की अम्मा कहती है–
'कविवर, सुनो कहानी
कविता क्या दहेज में दोगे ?
बिटिया हुई सयानी!'
–कंकड़ चुनते, सपने बुनते सुबह-शाम के
छंद चुक गये
कविताई कुछ रास न आई, बाली, बाजूबंद बिक गये
दूर-दूर कवि-चिंता दौड़ी
मिली उधार न फूटी कौड़ी
अर्थ बिना क्या बचा सकोगे
क़लमी इज़्ज़त-पानी
बिटिया हुई सयानी ।

–शब्दों को जोड़ते-तोड़ते साठ साल की उमर हो गयी
कुछ पैसे तो जोड़े होते
धनुही जैसी कमर हो गई
कितने बिंब-प्रतीक टटोले
किस दुनिया में भूले भोले!
दिखी न आंगन में बीवी की
साड़ी फटी पुरानी
बिटिया हुई सयानी ।

संकट गहरा है

नई रोशनी से मुँह धो लें
लौट चलें–
या आगे हो लें

पीछे सहज-सहज क्षण ठहरे
आगे-आगे साथी बहरे
पल छिन
चिन्ता चिन्तन उभरे

किसको देखें, किससे बोलें
लौट चलें–
या आगे हो लें ।

स्वीकारें क्या पिछले कल को
या अँकवारें अगले कल को
अपना
समझें किस सम्बल को
किसको टालें, किसे टटोलें
लौट चलें–
या आगे हो लें ।

उधर विलम्बन, इधर त्वरा है
संकट का संकट गहरा है
विगत पंगु
आगत अँधरा है
रचे-बसे को सजा-सँजो लें
लौट चलें–
या आगे हो लें ।

जिए जाने की व्यथा

ज़िन्दगी तो–
जिए जाने की व्यथा है
किसी खुलती हुई
पँखुरी की कथा है

छटपटाहट
तीर-बींधे क्रौञ्च मन के पाँख की
नरगिसीयत है–
किसी की डबडबाई आँख की
प्यार से–
आकाश को जिसने मथा है
किसी खुलती हुई
पँखुरी की कथा है

एक ऐसी
नदी है जिसका नहीं कोई किनारा
ज़िन्दगी है
यंत्रणा की एक अन्तःशील धारा
जो–
सुबकते आँचलों की आस्था है
किसी खुलती हुई
पँखुरी की कथा है
ज़िन्दगी तो–
जिए जाने की व्यथा है ।

छान्दस आकुलता के नाम

सृजनमुखी चेतना सिरजते हैं बादल
प्रेमल आयाम नए–
रचते हैं बादल ।

यक्ष प्रिया धरती का लहराया आँचल
दिग् वधुओं ने आँजा आँखों में काजल
याद कहीं महक गई
मनोव्यथा लहक गई
बीजों की,
छान्दस, आकुलता के नाम
बूँदों से प्रेम-पत्र–
लिखते हैं बादल ।

आसमान बाँट रहा सोनल संवेदन
ओठों पर तैर गए सोंधे आवेदन
जिजीविषा मुखर मगन
खनक गए घर-आँगन
प्रणय मुग्ध
जीवन में जलतरंग छेड़कर
जन-जन की साँसों में
बजते हैं बादल
प्रेमल आयाम नए
रचते हैं बादल ।

देखते ही रहे चुप-चुप

लुट गई–
संवेदना प्यारे! सरे बाज़ार
देखते ही रहे चुप-चुप हम खड़े लाचार ।

हो गए गूँगे
समय के सब सयाने पहरुए
और अन्धे राहबर तो
हाथ मलते रह गए

आँख मूँदे मौन संसद
ढूँढ़ती है–
क़लम-कागद
क्या लिखे, कैसे लिखे इतिहास के पन्ने नए
टँगी हो–
तलवार सर पर जब भरे बाज़ार
हम खड़े लाचार ।

एक पूरी भीड़
भागी जा रही है उधर
खोजते हैं नीड़ पंछी भी डरे
सहमे इधर
गिरी बिजली
उसूलों पर
चढ़ीं भैंसें बबूलों पर
पेड़ गूलर का समझ कर एक ही स्वर-ग्राम पर
खा रहीं–
गपगप मधुर फल वाह रे, बाज़ार
हम खड़े लाचार ।

देखते ही रहे चुप-चुप

लुट गई—
संवेदना प्यारे ! सरे बाज़ार
देखते ही रहे चुप-चुप हम खड़े लाचार ।

हो गए गूँगे
समय के सब सयाने पहरुए
और अन्धे राहबर तो
हाथ मलते रह गए

आँख मूँदे मौन संसद
ढूँढ़ती है—
क़लम-कागद
क्या लिखे, कैसे लिखे इतिहास के पन्ने नए
टँगी हो—
तलवार सर पर जब भरे बाज़ार
हम खड़े लाचार ।

एक पूरी भीड़
भागी जा रही है उधर
खोजते हैं नीड़ पंछी भी डरे
सहमे इधर
गिरी बिजली
उसूलों पर
चढ़ीं भैंसें बबूलों पर
पेड़ गूलर का समझ कर एक ही स्वर-ग्राम पर
खा रहीं—
गपगप मधुर फल वाह रे, बाज़ार
हम खड़े लाचार ।

जो बुनो उसको उधेड़ो

शब्द
जो ध्वनि का पता है
इन दिनों वह लापता है ।

और-
जिनका पता है, वे अजनबी हैं
व्यंजनाएँ सब उन्हीं के मुँह लगी हैं
व्यर्थता को ओढ़ना ही
इस सदी की त्रासदी है
जो बुनो उसको उधेड़ो
सृजन को
इस तरह छेड़ो

अर्थ से क्या वास्ता है
इन दिनों वह लापता है

किसी क़ीमत पर कभी बिकती नहीं है
रोशनी वह
दूर तक दिखती नहीं है
सिलसिला रचती नहीं है
मूल्य रचते अक्षरों का
कहाँ तक खुद को निचोड़ें
किसे तानें
किसे तोड़ें
अंततः क्या रास्ता है
इन दिनों वह लापता है ।

बन्धु कैसी त्रासदी है

बन्धु
कैसी त्रासदी है
देश भूखा
दृष्टि प्यासी
सोच की सूखी नदी है
भूख सत्ता की मगर सौ फ़ीसदी है
बन्धु कैसी त्रासदी है ।

शब्द
बेचारे करें क्या
अर्थ के मारे वरें क्या
समय
असमय ही बुढ़ाया
और
सर पर स्वप्न की गठरी लदी है
सामने नंगी निगोड़ी
एक पगलाई सदी है
बन्धु कैसी त्रासदी है ।

मन गन्धर्व

एक-एक क्षण, जिसके साथ एक पर्व है
लगता है मेरा मन कोई गन्धर्व है ।

रूप का उपासक है आँखों में बसता है
अनलिखी गुलाब गन्ध
ओठों पर लिखता है
प्राणों का संगम है
जीवन का सरगम है
एक तानपूरे-सा अंग-अंग बजता है
यादों का गौरव है, गीतों का गर्व है
कोई गन्धर्व है ।

बन्धन का प्रत्याशी, बन्धन से मुक्त है
काममय समुद्रमन अव्यय अनिरुक्त है
सुख-दुख का स्रष्टा है
एक दिव्य द्रष्टा है
यह जितना विमुख विवश, उतना उन्मुक्त है
सपनों का शिल्पी है, शिवतम है, सर्व है
कोई गन्धर्व है ।

अपने देश के नाम

मेरे भारत पंडित 'पुत्तर'
शान्ति-दूत दुमकटे 'कबुत्तर'
फेंको प्यारे, पोथी-पत्तर
रचो देश का नया 'चरित्तर'

क़ब्ज़ रोग से पीड़ित कविवर
तोड़ रहे जनवादी पत्थर
सूने में गढ़ते-पढ़ते हैं
जन का 'जन्तर' मन का 'मंतर'
बिगड़ गया हाज़्मा यार का
आलू चना चाटकर चखकर

छायावादी प्रगति प्रयोगी
चपरक़नाती चुके चुक़न्दर
ठेले पर ले गए हिमालय
तेरह 'नद्दी' सात 'समुन्दर'
ठूँस गए सारी कविताएँ
पेट 'गद्द' बदहज़्मी का डर

शुद्ध फ़राग़त की तलाश में
फाँक रहे हैं 'इलियट' 'बटलर'
'नाज़िम हिकमत', 'एजरा, पैब्लो'
घोंट रहे हिन्दी की सिल पर
तुलसी सूर कबीर मर गए
कविता राँड़ न छोड़े 'नइहर'

राजनीति के अन्धे-धन्धे
ख़ुद ही ले रेवड़ियाँ फिर-फिर
कहाँ मरे 'फ्रॉयड' 'वात्स्यायन'

गुज़र गई कविता क़दावर
'कोका' 'किन्से' प्रलैट हुए तो
टहल रही है शिविर दर शिविर

वाह-वाह कह कर रहे 'सरौते'
कटी सुपारी थैली भर-भर
सुरती और सुरति के संगी
पिच्च-पिच्च कर रहे निरन्तर
'टेंट-टेंट' टकसाली टेंटें
ऊढ़-मूढ़ रह गए 'दलिद्दर'

तलछट बोधी, मुक्त चिन्तनी
लीपापोती चुक्कड़ चक्कर
अक्कड़-बक्कड़, लाल बुझक्कड़
चालू चर्चित छेद बहत्तर
'हम्पटी-डम्पटी', 'डित्थ डवित्थ'
लिख पढ़ लिख पढ़ लोढ़ा पत्थर

खुँटउपार मरकहे जुझारू
पग्गह-भंजक वृषभ बहादुर
'नादुस-नूदुस' नाद निघन्टु
आगम-निगम निरुक्त निरुत्तर
भाष्य लिख रहे हैं तिलचट्टे
अष्टाध्यायी महाभाष्य पर

पांचजन्य फूँको जनार्दन
कविगण जूझें सड़क-सड़क पर
मेरे भारत पंडित पुत्तर
शान्ति-दूत दुमकटे कबुत्तर
फेंको प्यारे पोथी पत्तर
रचो देश का नया चरित्तर ।

प्रतिध्वनि 2002

प्रतिध्वनि 2002

प्रतिध्वनि

प्रतिध्वनि एक ग़ैर व्यावसायिक साहित्यिक संस्था है, जिसका गठन साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों द्वारा हुआ है । इसके पीछे एक ही उद्देश्य है- प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकारों को प्रकाशन-मंच देना ।

अब तक प्रतिष्ठित रचनाकारों के अलावा अनेक ऐसे रचनाकारों की पुस्तकें भी **प्रतिध्वनि** ने प्रकाशित की हैं, जिनकी पहले एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई ।

63 पुस्तकों के प्रकाशन के साथ **प्रतिध्वनि** ने दो पत्रिकाओं मासिक **साहित्य-बुलेटिन** एवं द्वैमासिक पत्रिका **काव्यम्** का प्रकाशन भी किया है ।

इसके अतिरिक्त **आचार्य कल्याणमल लोढ़ा** एवं **डॉ. प्रतिभा अग्रवाल** के सम्मान में दो बृहद् अभिनन्दन ग्रंथों क्रमशः **एक गौरव यात्रा** एवं **संकल्प कथा** का प्रकाशन भी किया ।

पुस्तकों-पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ-साथ **प्रतिध्वनि** ने गंभीर विषयों पर सेमिनार एवं काव्य गोष्ठियाँ भी आयोजित की हैं, जिनमें हिन्दी के अलावा दूसरी भाषाओं के रचनाकारों ने भी हिस्सा लिया है । इस प्रकार **प्रतिध्वनि** साहित्य संगम भी है ।

प्रतिध्वनि की भावी योजनाओं में **साहित्यकारों की आरोग्य-चिन्ता,** उनके हित, परस्पर सौहार्द, पारस्परिक आदान-प्रदान एवं आर्थिक सुरक्षा भी शामिल हैं ।

प्रतिध्वनि 2002
31, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कोलकाता - 700 007